प्रथम संस्करण, १९५१ : २०००

मूल्य सात रुपये

मुद्रक : श्रीरंजन, सेवा प्रेस, ९८, हिवेट रोड, इलाहाबाद

पूज्य
बउआ और पिताजी को
सादर, समर्पित

प्रकाशकीय

प्रस्तुत पुस्तक प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा डी० फ़िल्० के लिये स्वीकृत प्रबन्ध का परिवर्द्धित रूप है। लेखिका ने आधुनिक हिन्दी साहित्य के एक महत्वपूर्ण विषय को उठाया है और उसकी सम्यक् दृष्टि से समीक्षा की है। सामाजिक प्रगति, संस्कृतिक पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में हिन्दी के कवियों की नारी विषयक धारणा में क्या विकास होता गया इस पर विदुषी लेखिका ने गहन परिश्रम और सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया है।

लेखिका ने जो विषय चुना है वह शास्त्रीय और साहित्यिक महत्व का तो है ही, साथ ही साथ वह हमारी वर्तमान व्यवस्था की एक समस्या पर प्रकाश डालता है। लेखिका इस समय प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापन कार्य कर रही हैं। हिन्दी साहित्य में अभी शोध आलोचना के क्षेत्र में महिलाओं की देन लगभग नहीं के बराबर है। उसे देखते हुए डा० शैलकुमारी की इस पुस्तक का समुचित स्वागत होना चाहिए।

धीरेन्द्र वर्मा
मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष

मई : १९५१

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ.
प्राक्कथन	१—४
भूमिका	१—१२
पूर्वपीठिका	१३—१६
अध्याय १ : आधुनिक हिन्दी काव्य की नारी-भावना में परिवर्तन : कारण और प्रेरणा के स्रोत :	२०—४२
१. प्राचीन के प्रति नवजाग्रत आकर्षण	२०
२. पश्चिमी विचारों और साहित्य का प्रभाव	२२
३. भक्तियुग और रीतियुग की नारी भावना के प्रति विद्रोह	२७
४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव	३५
५. समाज-सुधार की लहर का प्रभाव	३८
६. स्त्री आन्दोलन का प्रभाव	४०
७. इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रभाव	४१
अध्याय २ : संक्रान्ति युग (१६००—१६२०)	४३—६४
अध्याय ३ : परिवर्तन युग (१६२०—१६३७)	६५—७५
युग की प्रमुख भावधाराएँ ।	६५
अध्याय ४ : परिवर्तन युग में नारी का सत् रूप	७६—१०२
अध्याय ५ : विविध संबंधों में सत् रूप का विकास	१०३—१४१
१. प्रेयसी और प्रणयिनी रूप	१०३
२. पत्नी रूप	११७
३. मातृ रूप	१३१
अध्याय ६ : परिवर्तन युग में नारी का असत् रूप	१४२—१४६
अध्याय ७ : परिवर्तन युग में राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार से प्रेरित नारी भावना :	१५०—१७५
१. राष्ट्रीय भावना (नारी का वीर रूप)	१५०
२. समाज-सुधार की भावना (मानवीरूप)	१६०
अध्याय ८ : रूपकात्मक (प्रतीकात्मक) भावना	१७६—१८६
अध्याय ६ : परिवर्तन युग में मध्ययुगीय नारी भावना की परंपरा	१८७—१६४

अध्याय १० : प्रगति युग (१६३७—१६४५) १६५—२०१

अध्याय ११ : प्रगति युग की समाज तथा क्रांतिवादी नारी भावनाएँ २०२—२२०

१. समाजवादी नारी भावना २०२

२. क्रान्तिवादी नारी भावना २१३

अध्याय १२ : प्रगति युग में मनोविश्लेषणवादी तथा छायीरोमांसवादी नारी भावना : २२१—२५४

१. मनोविश्लेषणवादी नारी भावना : २२१

क. विरोध या विद्वेषमयी २२२

ख. अतीव वासनात्मक २३०

ग. संतुलित यथार्थवादी २३६

घ. प्रकृतिवादी उदासीन २४४

२. छायीरोमांसवादी नारी भावना २४७

उपसंहार २५५

संदर्भ-ग्रंथ २५७

प्राक्कथन

बीसवीं शताब्दी की अन्य महत्वपूर्ण समस्याओं में एक विशेष रूप से महत्वपूर्ण समस्या रही है—नारी। जब से जीवन में आध्यात्मिक लाभों से अधिक महत्व वैज्ञानिक उन्नति तथा राष्ट्रीयता को दिया जाने लगा, जब से स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए युद्ध प्रारंभ किया, जाग्रत होकर देश की उन्नति के मार्ग में अपना मूल्य प्रमाणित किया, तथा विभिन्न कार्यक्षेत्रों में प्रवेश करके अपनी सामर्थ्य को सिद्ध किया, तब से समाज और साहित्यकार एक नवीन दृष्टि से उसे देखने लगा। नर्क का द्वार अथवा रूप की पुतली मात्र के रूप में उसे देखते रहना अब असंभव हो गया। व्यक्ति और समाज की इकाई के रूप में वह अब सामने आई। फलतः नारी का इतिहास, उसके जीवन की समस्यायें, आदिकाल से समाज में उसकी अवस्था में विकास, सांस्कृतिक विकास में उसका मूल्य आदि इस शताब्दी के विचार क्षेत्र के प्रमुख विषय हो गए। अंग्रेज़ी में अनेक पुस्तकें इन विषयों पर लिखी गईं। भारतीय विद्वानों ने भी प्राचीन भारत तथा संस्कृत साहित्य को लेकर अंग्रेज़ी में ही इस ढङ्ग की कुछ पुस्तकें लिखीं। किन्तु हिन्दी में ऐसे प्रयास बहुत कम हुए हैं, जो हैं भी वे वैज्ञानिक रीति के कम हैं।

नारी सम्बन्धी युगीय दृष्टिकोण काव्य में कवि की नारी भावना के रूप में अवतरित होता है। किसी कवि की नारी भावना से तात्पर्य यही है कि वह नारी मात्र के सम्बन्ध में किस प्रकार के विचारों को आश्रय देता है, तथा क्या धारणायें स्थिर करता है।

नारी भावना के दृष्टिकोण से हिन्दी में २० वीं शताब्दी के काव्य का विशेष महत्व है। वह अपनी अभूतपूर्व विशेषताओं को लिए हुए हिन्दी काव्य में आधुनिकता का द्योतक है। यों तो हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का प्रारम्भ भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०-१८८५) या उससे भी पहले से माना जाता है, किन्तु सत्य तो यह है कि, गद्य में चाहे जो कुछ भी हुआ हो, काव्य में आधुनिकता का प्रवेश १६०० से पहले नहीं हुआ था। २० वीं शताब्दी के काव्य में पश्चिमी साहित्य तथा सभ्यता के प्रभाव के कारण वैयक्तिकता, मानवतावाद, स्वच्छन्दतावाद आदि की प्रवृत्तियों के साथ संसार, जीवन, धर्म, प्रेम, प्रकृति, राष्ट्र तथा व्यक्ति आदि के सम्बन्ध में जिन नवीन दृष्टिकोणों का विकास हुआ, उन्हें ही हम आधुनिकता की विशेषता मान सकते हैं। मध्ययुगीय साहित्यिक रूढ़ियों और परिपाटियों तथा पिष्टपेषित निरर्थक विचार धाराओं के प्रति विद्रोह का युग यही है। मध्य-युगीय नारी भावना का परित्याग इसी युग में हुआ है। इस कारण २० वीं शताब्दी को ही खोज काल रखा गया है। किन्तु १६४५ आधुनिक काल के अन्त की द्योतक तिथि नहीं समझी जानी चाहिए। आलोचना को अद्यावधि बनाने के लिए ही वह तिथि निश्चित की गई थी, किन्तु अब तो वह भी पुरानी हो गई!

इस शिशु प्रयास को सफल बनाने का श्रेय गुरुवर डा० धीरेन्द्र वर्मा को है जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से मुझे बहुत कुछ सिखाया है। किन्तु गुरुदक्षिणा के समय कठिनाई यह उपस्थित होती है कि हम कलियुगी शिष्यों के पास अकिंचन धन्यवाद के अतिरिक्त और है ही क्या? पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा डा० दीनदयाल गुप्त ने प्रबंध की परीक्षा की तथा अनेक नवीन सुझाव दिए। मैं उन दोनों की अत्यन्त आभारी हूँ। प्रो० सतीश चंद्र देव तथा श्री प्रकाशचंद्र गुप्त की अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिन्होंने समय समय पर बहुमूल्य सहायता की। डा० रामकुमार वर्मा की आभारी हूँ जो अपने सहानुभूति-पूर्ण शब्दों से सदैव प्रोत्साहित करते रहे। विशेष धन्यवाद के पात्र डा० रामानंद तिवारी हैं जिन्होंने सतत सहयोग और निरंतर प्रोत्साहन देकर इस कार्य को संभव बनाया।

शैलकुमारी

इलाहाबाद
जुलाई १९५०

भूमिका

किसान और नागरिक के विना काव्य का काम चल सकता है, किन्तु उसमें से नारी को हटाते ही उसका जीवन नष्ट हो जाता है।[1] मेयर के इस महत्त्वपूर्ण कथन की सत्यता का ज्ञान तव होता है, जब हम देखते हैं कि लगभग सभी भाषाओं के काव्य में सभी युगों में, नारी अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बनाये रही है। विधाता की इस नर-नारीमय सृष्टि में, जहाँ पुरुष नारी में तथा नारी पुरुष में अपनी पूर्ति पाती है, प्रत्यक्ष जीवन के साथ ही किसी न किसी रूप में, काल्पनिक जीवन में भी द्वितीय की प्रतिष्ठा अनिवार्य है। कल्पना-जीवन की यथार्थताओं, आकाँक्षाओं तथा वासनाओं का ही प्रतिविम्ब होती है, अतः स्वाभाविक है कि पुरुष कवियों-द्वारा रचित काव्य में हम नारी की प्रधानता पाते हैं; उसके प्रति अनुरागात्मक अथवा विरागात्मक दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते हैं। कवि की नारी-सम्बन्धी अनुरागात्मक अथवा घृणात्मक भावना तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक परिस्थितियों के आधार पर बनती है; या यों कहना चाहिए कि राजनैतिक, धार्मिक और आर्थिक कारणों से समाज में जो अवस्था नारी की होती है प्रायः उसी का प्रतिविम्ब कवि की नारी-भावना होती है। (विशेष-रूप से धर्म का नारी-भावना से घनिष्ठ-सम्बन्ध है, क्योंकि उसी के आधार पर मनुष्य का संसार, जीवन और प्रेम-सम्बन्धी दृष्टिकोण निर्मित होता है) जिस काल में समाज धर्म (आध्यात्मिकता) की ओर अधिक झुक जाता है, उस काल में वह नारी को घृणा की दृष्टि से देखने लगता है, क्योंकि लगभग सभी धर्मों ने नारी को, काम का प्रतीक होने के कारण, आध्यात्मिक मार्ग की बाधा माना है। जैसे योरोप में ईसाई-धर्म के प्रसार ने नारी को "नर्क का द्वार" सिद्ध कर दिया था। भारतीय संस्कृति का इतिहास भी समाज में स्त्रियों की परिवर्तनशील अवस्था का परिचायक है।

वैदिक-काल[2] में वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था करनेवाले आर्य दार्शनिक और चिन्तनशील होते हुए भी भौतिक-जीवन से विमुख नहीं थे। चार आश्रमों की व्यवस्था करते हुए उन्होंने गृहस्थाश्रम को, जो अन्य तीनों आश्रमों का पोषक माना गया, विशेष महत्त्व दिया। गृहस्थ-जीवन का केन्द्र स्त्री है, जिसकी सृजन और पालन-शक्तियों के कारण उसे प्रचुर आदर प्रदान किया गया। साथ ही उसके रूप की पूजा भी की गई। "वास्तव में नारी का सौन्दर्य और व्यक्तित्व वेदकालीन मस्तिष्क को अनिवार्यतः आकर्षित करता है। उसके चरित्र के गुणगान के पश्चात् उसके रूपानुराग की ओर बढ़ते हुए हम देखते हैं कि वैदिक वेदी का ढाँचा भी स्त्री के रूप पर ही ढाला गया था," वेदी पश्चिम में चौड़ी हो,

---

[1] Poetry can do without the husbandman and the burgher, but take away woman and you cut its very life away

मेयर—मेकसुअल लाइफ इन एनशियंट इन्डिया, प्रथम पोथी, पृ० ६

[2] अल्टेकर ने वैदिक-काल २५०० ई० पू० से १५०० ई० पू० तक माना है।

मध्य में कृश और पूर्व में पुनः चौड़ी, क्योंकि इसी बनावट के कारण स्त्री की प्रशंसा की जाती है। और इस प्रकार वेदी देवताओं को भी आनन्दप्रद होगी।[1] (वास्तव में प्राचीन ऋषियों को नारी का विचार किसी न किसी प्रकार की प्रेरणा अवश्य देता है। नारी का सौन्दर्य और गौरव उनके हृदय में अनुराग के भाव को उत्पन्न करता है उसके प्रेम में आनंदातिरेक होता है। नारी का सौन्दर्य ऋषियों की भावुकता को पूर्णतया अधिकृत करता हुआ उनके नेत्रों के सम्मुख चमकते हुए सोम में भी पूर्ण नारी का स्वरूप उपस्थित करता है।[2]) वैदिक ऋषियों की इस प्रकार की नारी-भावना का कारण यह था कि समाज में भी नारी की अवस्था बहुत उन्नत थी। उन्हें शिक्षा का पूर्ण अवकाश था; विवाह १६, १७ वर्ष की आयु से पूर्व प्रायः नहीं होता था; वर के व्यक्तिगत चुनाव का अधिकार था; सामाजिक और धार्मिक सभाओं में भाग लेने में कोई बाधा नहीं थी, वे धर्म के मार्ग की बाधा नहीं मानी जाती थीं; वे पुरुष-सम्पत्ति के समान नहीं थी। नारी की इस सामाजिक दशा का प्रमुख कारण यह था कि वैदिक-काल में आर्य भारतवर्ष में फैल रहे थे और खेती के लिए नए-नए देश जीतने की चिन्ता में थे। पुरुषों के युद्धरत होने के कारण जीवन के अन्य कार्य-क्षेत्रों का तथा पारिवारिक-जीवन का सम्पूर्ण भार नारी ही पर था। ऐसी दशा में नारी विश्वसनीय रीति से सिद्ध कर देती है कि वह परावलम्बिनी नहीं है, वरन् समाज की उपयोगी सदस्य है, और युद्ध में विजय तथा शान्ति में सम्पन्नता को प्राप्त करने के लिए उसका सहयोग आवश्यक है। साथ ही आर्यों को अपनी संख्या बढ़ाने की भी चिन्ता थी; युद्धार्थ शूरों की आवश्यकता ने स्त्रियों को स्वतंत्रता प्रदान की।

किन्तु धीरे-धीरे परिस्थितियाँ बदलती गईं। गंगा के उपजाऊ मैदानों में पहुँचकर आर्य शान्ति-पूर्वक रहने लगे। उनकी जन-संख्या काफ़ी बढ़ गई थी। सामाजिक-व्यवस्था में विकास हुआ और साथ ही जटिलतायें भी बढ़ीं। अनार्यों के संसर्ग में आने से अन्तर्जातीय-विवाह प्रारम्भ हुए। धर्म के व्यवस्थापक पुरोहित, जो यों ही शान्ति-काल में धार्मिक प्रपंचों को बढ़ा रहे थे, आर्य-कन्याओं की भाँति दस्यु-कन्याओं को धार्मिक क्रियाओं में दीक्षित करना अस्वीकार करते थे, इसीलिए हम सुनते हैं "कृष्णवर्णा या रामा रमणायैव न धर्माय न धर्मायेति वशिष्ठ धर्मशास्त्र १८, १८)। जब भूपति अपनी प्रिय रानी को ही, चाहे वह किसी भी वर्ण और जाति की हो, यज्ञ में सहयोगी बनाने का आग्रह करने लगे तब पुरोहितों ने समस्त नारी-जाति को ही धार्मिक अध्ययन और कर्तव्यों का अनधिकारी कह दिया। साथ ही धार्मिक प्रक्रियायें इतनी जटिल होती जा रही थीं कि स्त्रियों के लिए उन्हें पूर्ण रूप से समझना असम्भव था, जब तक वह २२ या २५ वर्ष की आयु तक अविवाहित न रहें। दूसरी ओर शान्तिमय-जीवन में विलासिता की वृद्धि विवाह-आयु को नीचे घसीट रही थी। २०० ई० शताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते लड़कियों के लिए उपनयन का स्थान विवाह ने ले लिया। उपनयन १० वर्ष की अवस्था में हुआ करता था। फलतः स्त्रियों के शिक्षा

---

[1] शतपथ ब्राह्मण १, २, ५, १६

[2] अल्टेकर-पोजिशन आव विमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन।

के अवकाश, विवाह में व्यक्तिगत चुनाव के अवसर नष्ट हो गए। शीघ्र विवाह कर देने की चिन्ता में कभी-कभी माता-पिता उचित वर नहीं ढूँढ़ पाते थे, और स्त्रियों को अयोग्य सहगामी के साथ ही जीवन व्यतीत करना पड़ता था। फलतः पतिव्रत को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा।

साथ ही लोगों का ध्यान भौतिक आवश्यकताओं से हटकर धार्मिक अनुष्ठानों की ओर झुकने लगा। पुत्र की आवश्यकता युद्ध-विजय के स्थान पर धार्मिक दृष्टिकोण से हो गई। बताया गया कि मनुष्य संसार में तीन ऋणों को लेकर आता है, जिनमें पितृ-ऋण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इससे उद्धार तभी हो सकता है जब वह पुत्र को जन्म दे। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए यौवन-प्राप्त कन्या से विवाह करना भर पर्याप्त है। फलतः विवाह-आयु तो नीचे आ ही गई, साथ ही नारी के व्यक्तिगत मूल्य को गहरा धक्का लगा।

अब वह पुत्र उत्पन्न करने का साधन भर रह गई। साथ ही लघु-वयस्का तथा अनुभवहीन पत्नी पति के सभी कार्यों में भाग लेने में असमर्थ होकर केवल हरम की वस्तु हो गई और उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यों में अपनी आवाज़ खो बैठी।

एक तो वैदिक-धर्म में भी लोग मुक्ति की ओर अधिक आकृष्ट होने लगे थे (षट्दर्शनों का निर्माण इसी प्रवृत्ति का परिचायक है), बौद्ध और जैन-धर्मों के प्रचार से संन्यास का प्रचार प्रबल रीति से होने लगा। २०० ई० पू० भारत की राजनैतिक परिस्थिति भी कुछ ऐसी ही थी कि कौटिल्य के यह कहने पर भी —

"पुत्रदारम् प्रतिविधाय प्रव्रजतः पूर्वः साहस दंड :।
लुप्तव्यवायः प्रव्रजते" (२, १)

मनुष्य संन्यास और मोक्ष में ही आकर्षण पाने लगे। ग्रीक, सिथियन, पारथियन तथा कुशान-आक्रमणों के विनाश-दृश्यों ने जीवन को विषादपूर्ण कर दिया। ऐसी परिस्थिति में जब संन्यास, संसार-त्याग ही एक आदर्श हो गया तो स्त्री, जो परिवार की सहस्रों समस्याओं को लिए हुए उसमें बाधा-स्वरूप है, अनादर की दृष्टि से देखी जाने लगी, उसके चरित्र के सम्बन्ध में बहुत से घृणात्मक सिद्धान्त बनाये जाने लगे। यद्यपि वाराहमिहिर-आदि कुछ विद्वानों ने संन्यासियों का मनोविश्लेषण करते हुए दुर्बलता उन्हीं के अन्दर सिद्ध की, फिर भी पुराणों और स्मृतियों के काल[1] तक पहुँचते-पहुँचते नारी-सम्बन्धी घृणात्मक-भावना का प्रचुर-प्रचार हो गया था। संन्यास और पतिव्रत-धर्म पर विशेष बल देने के कारण विधवा-विवाह के अवकाश नष्ट हो गए थे और सती-प्रथा का भी प्रारम्भ हो गया। समाज में स्त्रियों की ऐसी दशा होने के कारण हम धर्म-सूत्रों, स्मृतियों तथा पुराणों, रामायण और महाभारत में नारी-सम्बन्धी अत्यन्त अनादर और घृणा-सूचक शब्द पाते हैं। भारतीय-समाज पर इस साहित्य का प्रभाव स्थायी हुआ।

विरक्ति और मोक्ष की भावनाएँ प्रबल से प्रबलतर होती गईं और मनु आदि-द्वारा निर्मित धर्म-सूत्रों के सिद्धान्त नियमों के रूप में माने जाने लगे। ६०० ई० के लगभग से

---

[1] अल्टेकर ने पुराणों और स्मृतियों का काल ५०० ई० पू० से ५०० ई० तक माना है।

मुस्लिमों ने भारत की राजनैतिक और सामाजिक-व्यवस्था में एक विशृंखलता उत्पन्न कर दी साथ ही हिन्दू-धर्म का एक विदेशी धर्म से अभूतपूर्व संघर्ष हुआ। पुरोहितों ने अपने धर्म की रक्षा के लिए अनेक नियमों के रूप में क़िले बनाये। स्त्रियों की विवाह की आयु ८ वर्ष सर्वोत्तम मानी जाने लगी, विधवा-विवाह बिल्कुल बंद हो गए, सती-प्रथा अत्यन्त प्रचलित हो गई। पर्दे का भी प्रचार होने लगा। बहु-विवाह खूब प्रचलित था।

स्त्रियाँ शूद्रों से समानता पाने लगीं। मुसलमानों के भय के कारण कन्या अवाञ्छ-नीय मानी जाने लगी और शिशु-हत्या की प्रथा का प्रारम्भ हो गया। स्त्रियाँ भी स्वयं अशिक्षित और ज्ञान हीन होने के कारण अंधविश्वासों आदि का घर हो गईं, पर्दे ने उन्हें बाहरी दुनिया से सर्वथा अंधा कर दिया। समाज की स्त्रियों के प्रति असहिष्णुता और अनु-दारता का कारण यह भी था कि स्वयं पुरुषों में भी शिक्षा और ज्ञान की मात्रा कम हो रही थी। शिक्षा और ज्ञान का सबसे महत्त्वपूर्ण साधन धर्म-ग्रंथ ही समझे जाने लगे थे। मुद्रण-कला तो थी नहीं, लोग 'कथक' या 'पौराणिक' से सुनकर ही पौराणिक-कथाओं का ज्ञान प्राप्त करते थे। इस प्रकार पुरुषों का भी ज्ञान और दृष्टिकोण सीमित हो गया था।

ऐसी परिस्थितियों में हिन्दी-काव्य का जन्म हुआ। हिन्दी का प्रारम्भिक काव्य वीर गाथाओं और धार्मिक उपदेशों के रूप में मिलता है। वीर-गाथाओं की रचना राज-स्थान में हुई, जहाँ यवन आक्रमण-कारियों से युद्ध करने के अतिरिक्त घरेलू युद्ध भी प्रतिदिन की वस्तु थे। चारणों-द्वारा रचित वीर-गाथाओं में सबसे पहली बात तो हम यह देखते हैं कि देश और जाति की रक्षा के समय में भी नारी में किसी प्रकार की जाग्रति नहीं दिखाई पड़ती। वह वीर-माता, या वीर-पत्नी के रूप में नहीं आती। इसके विपरीत पुरुष की धन-संपत्ति और भोग्या के रूप में आती है। अधिकाश काव्य किसी राजकुमारी के बलात् हरण या विवाह की कथा को लेकर चलते हैं, प्रायः युद्ध का कारण भी यही होता है। इनमें राजकुमारी के शारीरिक सौन्दर्य-वर्णन और नख-शिख का ही प्राधान्य पाया जाता है। राजा एक राजकुमारी से सन्तुष्ट होते नहीं देखे जाते; दूत से प्रत्येक आनेवाली परिणीता के रूप का वर्णन वे ताजे उत्साह से सुनते हैं।[1] पत्नी केवल भोग का साधन मात्र रहती है, वह अपने वीर पति के कार्यों में भाग लेती नहीं देखी जाती। भोग्या के रूप में आकर वह पुरुष की पाँव की बेड़ी भी सिद्ध होती है। 'बारह बरस की गोरड़ी' नहीं जानती कि वह किस प्रकार अपने पति को प्रसन्न रखे। उसने यदि जाना है तो एक ही साधन—रति। फलतः रति को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में वह पति के सहयोग की कल्पना भी नहीं कर पाती और इसलिए वह उसे अपने पास बाँधकर रखने के लिए अनेक चरित्र करती है।[2] वह रूप और सौन्दर्य के द्वारा पुरुष को बाँधनेवाली शृंखला के समान हो जाती है, जो स्वतः संकुचित क्षेत्र में रहती हुई उसे भी पुरुषोचित कर्त्तव्य से विमुख करना चाहती है।

ऐसी अवस्था में प्रकृति से ही महत्त्वाकांक्षी पुरुष का नारी की उपेक्षा करना स्वा-

---

[1] पृथ्वीराज रासो—१४वां समय—७१२; १६वां समय ४-६ आदि।

[2] परमार-देव रासो—२ सर्ग, पृ० ३८।

भाविक ही है। फल यह होता है कि स्त्री उस निजी धन[1] के समान हो जाती है, जिसकी रक्षा का भार पुरुष पर है—वह स्वतः आत्म-रक्षा की शक्ति नहीं रखती, जिसका एकांत उपभोग पुरुष करता है और जिसे वह विरक्त होने पर मूल्य-हीन वस्तु के समान त्याग भी देता है। नारी-भावना में हम ऐन्द्रिकता का प्राधान्य पाते हैं।

इस काल का धार्मिक-काव्य सिद्धों और जैन-आचार्यों द्वारा रचित है। यह काव्य विरक्ति प्रधान है, और ऐसे काव्य में नारी के परित्याग का उपदेश और उसकी निन्दा स्वाभाविक है।

गोरखनाथ ने कहा है:—

"पास बैठी सोमे नहीं साथ रमाई भुंडि।
गोरख कहै असतरी कहा सलई कहै मुंडि॥"
बामे अंगे सोइबा जमचा
भोग बा संगे न पीणा पाणी।

किन्तु वाममार्गी सिद्धों ने पंचमकारों को महत्त्व देते हुए "महासुखवाद" का प्रति पादन किया, जिसमें सिद्धि के लिए शक्ति, योगिनी या महामुद्रा; जो लौकिक डोमिन, चमारिन या धोबिन ही होती थी, का योग अनिवार्य माना।

जैन-काव्य में भी,

"एइ जम्मु नग्गहु गिड भडसिरि खग्गु न भग्गु।
तिक्खां तुरियँ न माणियां गौरी गले न लग्गु॥" (मेरुतुंग)

जैसे दोहे मिल जाते हैं। दोनों ही प्रकार की नारी-भावना निन्दात्मक और उपभोगा-त्मक — यद्यपि देखने में पृथक्-पृथक् लगती है, किन्तु दोनों के मूल में एक ही भाव है - नारी को योनि-मात्र समझना। संन्यासी नारी का कोई अन्य मूल्य न समझकर उससे दूर भागते हैं और विलासी उसका मूल्य केवल शारीरिक उपभोग में ही गिनते हैं।

यद्यपि आदिकाल में विरक्ति अथवा विलास से प्रेरित निन्दात्मक अथवा उपभोगा-त्मक नारी-भावना की प्रधानता पाई जाती है, फिर भी कवि के मस्तिष्क में ऐसी नारी का सर्वथा अभाव नहीं है जो युद्ध-क्षेत्र में पति की वीरगति का समाचार सुनकर कह सके —

"भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कंतु।
लज्जे जन्तु वयसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥" (हेमचन्द्र)

इसी युग में दरबारी वातावरण में पले हुए अमीर खुसरो ने साहित्य को जीवन के संघर्षों और नियमों से मुक्तकर स्वतंत्र आनन्द और विनोद का वातारण प्रदान किया जिसने प्रत्येक वस्तु को हल्का-रूप दे दिया। प्रेम और स्त्री भी सस्ते रूप में उपस्थित हुए।

इस प्रकार भक्ति-काल और रीतिकाल में पनपनेवाली विरक्ति और विलास-जनित नारी-भावना का बीज हमें आदि-कालीन काव्य में मिल जाता है। वास्तव में दोनों भाव-नायें विरोधी होते हुए भी सदैव साथ-साथ चलती हैं; परिस्थितियों का सहारा पाकर किसी युग में एक, तो किसी में दूसरी प्रबल हो उठती है। मनुष्य में काम-प्रवृत्ति अत्यन्त शक्ति-

---

[1]धन शब्द स्त्री के पर्यायवाची के रूप में भी प्रयुक्त हुआ है।

शाली है। इस लोक से परे किसी सुख की कल्पना में लीन पुरुष उस प्रवृत्ति का दमन करना चाहता है। काम के दमन से नारी के प्रति विरक्ति की भावना और उसकी अस्वस्थ प्रबलता से भोग की भावना का जन्म होता है। भक्ति-काल और रीति-काल में हम क्रमशः इन दोनों का विकास देखते हैं।

भक्तिकाल में, जैसा कि उसके नाम ही से प्रकट है, अधिकांशतः धार्मिक काव्य की रचना हुई। प्रायः ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग का अनिवार्य सम्बन्ध इह लोक से वैराग्य से माना जाता रहा है, तथा काम और उसके साधन स्त्री से घृणा या पलायन उसका अनिवार्य फल रहा है। ऐसा भारत में ही नहीं, सभी देशों में हुआ है। योरोप में ईसाई-धर्म के प्रसार ने नारी को अत्यन्त हीन बना दिया था; 'ईसाई-धर्म में शरीर ही दोषों का मूल माना गया, जो भौतिक आकर्षणों से मनुष्य को भ्रष्ट करता है। संतों का आदर्श तो ऐन्द्रिक सुखों का पूर्ण परित्याग था। इस मार्ग में स्त्री सबसे बड़ी बाधा मानी गई। फलतः स्त्री को निन्दनीय माना जाने लगा, उसे नर्क का द्वार कहा जाने लगा।'[1] भारत में वासनाओं के दमन के लिए सर्व-प्रथम काम का दमन अनिवार्य माना गया (काम क्रोध, मद-लोभ, मोह)। काम की लक्ष्य स्त्री से दूर रहने के लिए संतों ने स्त्री की निन्दा की।[2] लगभग २०० ई० पू० से ही इस भावना का प्रसार हो रहा था और पारिवारिक जीवन, जिसका केन्द्र स्त्री है, हेय समझा जाने लगा था।[3] अनुकूल परिस्थितियाँ पाकर ईसा की १४वीं - १६वीं शताब्दी में यह भावना खूब फली-फूली। इस समय तक मुसलमान भारत को विजय कर चुके थे और उनके राज्य का प्रसार हो गया था। पराजय के कारण अवसाद भारतवासियों पर छा गया था, और देशी राजाओं की तलवार को कुंठित देखकर वे भगवान् का आश्रय ग्रहण कर रहे थे। जनता की प्रवृत्ति निराशावादी और विरक्त हो उठी थी। साथ ही एक और भी महत्त्वपूर्ण बात थी; राजाओं के लिए राज्य और भूमि की रक्षा महत्त्वपूर्ण होती है, किन्तु जनता के लिए धर्म सबसे अधिक महत्त्व रखता है। मुसलमानों के द्वारा हिन्दू-धर्म पर आघात होते देखकर हिन्दू जनता विचलित हो उठी। उसी समय दक्षिण से आई भक्ति की धारा का सहारा उन्हें मिला और तपश्चर्या की ओर झुकी हुई जनता की वाणी कबीर तुलसी और सूर-आदि के शब्दों में फूट पड़ी।

अस्तु, भक्तिकाल में हमें चार धारायें मिलती हैं। (१) निर्गुणोपासक संतों की जिनमें कबीर, दादू आदि आते हैं, (२) रामोपासक भक्तों की जिसके प्रतिनिधि कवि तुलसी हैं,

---

[1] वाइ एम रीग हिंदर वुमन, अध्याय ३।

[2] लछिमन देखहु काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह के जग लीका॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहितें उबर सुभट सोइ भारी॥
(तुलसी-रामचरित मानस, तृतीय सोपान, दोहा ३८)।

[3] यस्य स्त्री तस्य भोगेच्छा निस्त्रीकस्य क्व भोग भूः।
स्त्रियं त्यक्त्वा जगत्त्यक्तं जगत् त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥
(योग वाशिष्ठ, १, २१, ३५।)

(३) कृष्णोपासक भक्तों की, जिसके प्रमुख कवि सूर हैं और (४) प्रेममार्गियों की, जिसके प्रमुख कवि जायसी हैं। साम्प्रदायिक-दृष्टि से इन चारों में चाहे जो भी भेद रहा हो; किन्तु नारी के सम्बन्ध में इन सबका दृष्टिकोण एक ही है।

(भक्ति-युग की सभी धाराओं में नारी के दो रूप दिखाई पड़ते हैं; सामान्य तथा विशेष। प्रथम रूप लौकिक तथा यथार्थ है और द्वितीय काल्पनिक, पारलौकिक तथा आदर्श। प्रथम रूप में नारी निन्दनीय है, दुर्गुणों की खान है, माया का प्रतीक है, और द्वितीय रूप में वह ग्राह्य तथा आदरणीय है।)

नारी के सामान्य या यथार्थ रूप के सम्बन्ध में सभी भक्त-कवि एक स्वर से घृणात्मक-भावना की अभिव्यंजना करते हैं। यह भावना क्रोध और हिंसा से भरी हुई है। भक्त-कवियों ने नारी को आध्यात्मिक मार्ग की बाधा के रूप में देखा है।[1] इसीलिए उसे भ्रष्ट करनेवाली माया का ही साक्षात् रूप माना है।[2] उसमें तीव्र आकर्षण है, किन्तु सन्त को उससे दूर रहने के लिए इन कवियों ने बार-बार चेतावनी दी है।[3] फलतः भक्त-कवियों ने नारी को 'सर्पिणी', 'बाघिनी', 'पैनी छुरी', 'विष की बेलि' आदि विशेषण दिए हैं। भक्त-कवियों का विश्वास है कि स्त्री में काम-प्रवृत्ति अत्यन्त प्रबल होती है,[4] इसलिए वृद्धा तथा जननी पर भी विश्वास करना वे उचित नहीं समझते[5] और छोटी-मोटी कामिनी सब ही को विष की बेलि कहते हैं।[6] प्रेम के क्षेत्र में भी नारी को अस्थिर तथा छलपूर्ण माना गया है।[7] भक्त-कवि नारी को अत्यन्त नीच तथा कपटी मानते हैं, जो अपनी नीच इच्छाओं की पूर्ति के लिए सब कुछ कर सकती है।[8] यहाँ उसकी शक्तियाँ अदम्य हैं, पुरुष उसको समझ पाने में असमर्थ रहता है।[9] नारी को इतना दुर्गुणों से युक्त और अविश्वसनीय मानते हुए कवि ढोल-गँवार और पशु तक से उसकी तुलना कर देता है और ताड़ना का सहज अधिकारी बता देता है।[10]

---

[1] सूरदास—सूरसुधा: "काम क्रोध··· ···और" पद १७, पृ० ८।
वही— 'बौरेमन·····बौराना" पद १-२, पृ० ३१।
कबीर—"चलौं-चलौं ·····दोय," स० वा० सं० भाग १, दोहा १, पृ० ५८।
वही— 'नारी-नसावे··कोय", दोहा ८ पृ० ५८।

[2] तुलसी—रामचरित मानस, तृतीय सोपान दोहा ७६-७७ पृ० ३२०।

[3] वही—दोहा ८० पृ० ३२१।

[4] वही—"भ्राता·····बिलोकी", दोहा २९, पृ० २९९।

[5] पलटू—सं० वा० सं० भाग १, दोहा १-२, पृ० २२३।

[6] कबीर—सं० वा० सं० भाग १, दोहा १४ पृ० ५९।

[7] सूरदास—सूरसागर, नवम स्कंध, पद ४४६।

[8] तुलसी—रामचरित मानस, द्वितीय सोपान, दोहा ४८, पृ० १७६।

[9] वही—"यद्यपि··अवगाहू" दोहा २८, पृ० १६४।

[10] वही—पाँचवाँ सोपान, पृ० ३६६।

भक्त कवियों की इस प्रकार की नारी-भावना का कारण यह है कि उन्होंने नारी को केवल 'कामिनी' रूप में देखा है। इसका फल यह हुआ है कि कवि नारी में प्रेम और कर्त्तव्य का सामंजस्य न देख सके। नारी को विलास के ही क्षेत्र में देखते हुए कर्त्तव्य-पूर्ण क्रियाशीलता का संयोग न हो सका। इसी कारण 'पद्मावत' में देखते हैं कि बादल की पत्नी अपने रणोद्यत पति को रति-विलास का लालच दिखाकर कर्त्तव्यच्युत करना चाहती है।[१] नारी के गृहिणी रूप और मातृ-रूप का भी आदर भक्त-कवियों ने नहीं किया। स्त्री के जननात्मक कार्य को भी, जिसका भारत में प्राचीन-काल से बहुत आदर रहा था सन्तों ने महत्त्व की दृष्टि से नहीं देखा। इसके विपरीत दुःख और ताप से पूर्ण संसार में लाने वाली माता की वे निन्दा ही करते हैं। माता का यदि कुछ मूल्य है तो इसी में कि उसका पुत्र धार्मिक हो।[२] गृहिणी भी धर्म के आगे त्याज्य है।[३]

वैराग्यमूलक इस प्रकार की नारी-भावना का सहज फल है नारी का अनादर और उपेक्षा। राम का "नारि हानि विशेष छति नाहीं"[४] और रतनसेन का 'तुम्ह तिरिया मति हीन तुम्हारी'[५] आदि कहना इसी भाव का द्योतक है। स्वयं नारी में भी कोई आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की भावना नहीं दिखाई पड़ती, इसके विपरीत आत्म-दैन्य की सीमा ही मानस की अहल्या,[६] शबरी,[७] अनुसूया,[८] के शब्दों से ध्वनित होती है।

(इस प्रकार स्पष्ट है कि भक्त-कवि नारी के सामान्य रूप को अनादर की दृष्टि से देखते थे। उनकी भावना पर स्मृतियों तथा पुराणों के शब्दों का स्पष्ट प्रभाव है। भक्तों का विशिष्ट नारी-रूप कबीर की 'पतिव्रता-विरहिणी', सूर की गोपियों, तुलसी की सीता, पार्वती तथा कौशल्या तथा जायसी की पद्मावती आदि में मिलता है। विशिष्ट रूप लौकिक न होकर अलौकिक है और आध्यात्मिक मार्ग की वस्तु है। आध्यात्मिक प्रेम के क्षेत्र में परमात्मा और आत्मा का प्रेमी-प्रेमिका या पति-पत्नी का सम्बन्ध व्यक्त किया गया है) आध्यात्मिक रति का यह सिद्धान्त सभी धर्मों में स्वीकार किया गया है और भारत में इस आदर्श का समस्त भक्ति सम्प्रदायों में आदर हुआ। इसका आधार यह है 'तद्यथा प्रियया स्त्रिया संपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नांतरमेव मेवायं पुरुष प्राज्ञेनात्मा सपरिष्वक्तो न बाह्यं किंचन वेद नान्तरम्।[९] इस आदर्श को लेकर कबीर ने आत्मा

---

[१] जायसी—पद्मावत : गोरा बादल युद्ध यात्रा खंड पृ० ३२१, ३२२।

[२] जिहि-कुल पुत्र न ज्ञान विचारी,
साईं विधवा क्यों न भई महतारी। (कबीर)

[३] धरनीदास जी—प० बा० सं० भाग १, दोहा २, पृ० ११६।

[४] तुलसी—रामचरित मानस: षष्ठ सोपान पृ. ३६८।

[५] जायसी - पद्मावत: जोगी खण्ड पृ० ६२।

[६] "मैं नारी अपावन" (तुलसी-रामचरित मानस, प्रथम सोपान, पृ० ९२।

[७] "अधम तें अधम, अधम अतिनारी" (वही, तृतीय सोपान पृ० ३१५)

[८] "सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहै" वही, तृतीय सोपान पृ. २८९।

[९] बृहदारण्यक उपनिषद् ४, ३, २१।

को विरह-विह्वला पतिव्रता के रूप में उपस्थित किया सूर ने प्रेममयी गोपियों के गीत गाये तथा जायसी ने पद्मावती की प्रशंसा के पुल बाँधे।

रामभक्त तुलसी माधुर्य-भाव को छोड़ सेव्य-सेवक-भाव की भक्ति को लेकर चले थे। इसलिए उन्होंने अपने राम की माता कौशल्या, पत्नी सीता तथा भक्त-पत्नी पार्वती को आदर्श नारियों के रूप में उपस्थित किया है। उनकी यह विशिष्ट नारी भावना सामान्य नारी-भावना से बिल्कुल मेल नहीं खाती। जो कवि स्त्रियों के सम्बन्ध में इतने असहिष्णु हों वही अपनी आध्यात्मिक अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए नारी को साधन-स्वरूप बनायें, यह विचित्र तो है ही, साथ ही उन कवियों की दुर्बलता भी कही जायगी। लौकिक भूमि पर नारी-आकर्षण को रुद्ध करने के ही कारण संभवतः आध्यात्मिक-क्षेत्र में भक्त कवियों की नारी-कल्पना तीव्रतर हो गई। इससे उनकी नारी भावना में दुरंगापन उत्पन्न हो गया है। वे सामान्य और विशिष्ट नारी-रूपों में सामंजस्य न स्थापित कर पाये, यथार्थ और आदर्श को एक न कर पाये।

मुग़ल काल में भारत की परिस्थितियों में एक परिवर्तन हुआ। अन्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा मुग़ल अधिक उदार और सहिष्णु थे। उनके राज्य काल में शांति का वातावरण छा गया और उनकी कला-प्रियता तथा विलास प्रियता ने अनेक देशी राजाओं को भी प्रभावित किया। धीरे धीरे कविता जनता की वस्तु न रह कर दरबारों की चीज़ हो गई। राजाओं के आश्रय में रहनेवाले कवियों ने अपने आश्रयदाता की तथा निजी विलासी प्रकृति की तृप्ति के लिए शृंगार-काव्य की रचना की। नाट्य-शास्त्र के नायिका-भेद का पुनरावर्तन बड़े विस्तार के साथ हुआ। अस्तु, नारी कविता का केन्द्र-बिन्दु हो गई। भक्ति-युग के निवृत्तिमार्गी दृष्टिकोण के विपरीत रीतिकालीन कवियों का दृष्टिकोण प्रवृत्तिपरक हो गया। "जोग हू ते कठिन संजोग पर नारी को" देखने और प्राप्त करने का प्रयत्न महानतम हो गया। साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्तों की विवेचना के बहाने कवियों ने काम-शास्त्र की सूक्ष्म व्याख्या की और अपने दुस्साहस को छिपाने के लिए आड़ ले ली राधा-गोविंद की। पुष्टिमार्गी तथा राधावल्लभी संप्रदाय के कृष्ण-भक्त कवियों ने भी राधाकृष्ण की शृंगारमयी लीलाओं का चित्रण किया था। उन्हीं को और भी सूक्ष्म और भेद-विभेदमयी व्याख्या रीतिकालीन कवियों ने की। किन्तु अन्तर छिपा न रहा; भक्त कवियों का दृष्टिकोण दार्शनिक था और इन दरबारी कवियों का घोर लौकिक। इनकी नायिका राधा नाम रखकर भी भक्त-कवियों की राधा के गूढ़ गम्भीर प्रेम, एकान्त निष्ठा, पूर्ण आत्म-समर्पण और शील तथा संकोच से हीन है। यह रूप की खान अवश्य है, किन्तु उस रूप में हृदय की विशालता और भाव की स्वच्छता की सुगंध नहीं, वासना की दुर्गन्ध है। जब राजा गण अप्रस्फुटित कलियों से ही बंधने लगे थे[1], जब वृद्ध भी बालिकाओं से बाबा

---

[1]नहिं पराग नहि मधुर मधु नहिं विकास इहिं काल।
अली कली ही सों बिंधो आगे कौन हवाल॥ (बिहारी)

नहीं सुनना चाहते थे[1], जब समाज की काम-प्रेरणा इस सीमा पर पहुँच गई थी, तब तत्कालीन काव्य के अंतर्गत नारी की ऐसी रूप रेखा मिलना स्वाभाविक ही है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से भक्तियुग के काम-दमन (Suex-Sppression) की प्रतिक्रिया रीतिकालीन अति काम था। रीति-काल की नारी भावना भक्ति-काल के यौन नियमों की कठोरता के विरुद्ध विद्रोह थी। इसके अतिरिक्त युद्ध और जाग्रति के अभाव में जब समाज पर अपरिवर्तनशील जड़ता छा जाती है तो समाज स्त्रैण हो जाता है, स्त्री भोग का साधन हो जाती है। उसके शारीरिक सौन्दर्य तक ही कवियों की दृष्टि जाती है। यही रीतिकाल में हुआ। हम देखते हैं कि रीतिकालीन काव्य में स्त्री केलिगृह की सीमा में आबद्ध है। उसके बाहर उसका कार्यक्षेत्र नहीं देखा जाता। मतिराम ग्रन्थावली की भूमिका में कृष्णबिहारी शुक्ल लिखते हैं "यथासंभव नायक के समान गुणवाली रमणी नायिका कहलाती है। ऊपर दिए गए नायक के अन्य सभी गुणों (त्यागी, वृती, कुलीन, समृद्धिमान, रूप यौवनोत्साही, दक्ष, लोकरंजक, तेजस्वी, विदग्ध और सुशील) में समान होते हुए भी उसमें उत्साह, दक्षता, तेज आदि कई गुणों के मानने में आचार्यों को झिझक है इसी कारण उसके लक्षण में यथासंभव शब्द को स्थान मिला है।"[2] (इससे स्पष्ट है कि एकमात्र शृंगार के क्षेत्र में नारी को देखनेवाले इन कवियों की दृष्टि नारी के गुणों आदि के सम्बन्ध में संकुचित है। "रीतिकालीन कवियों ने नायिका भेद द्वारा स्त्री के विचारों भावों एवं इच्छाओं का विश्लेषण करने का प्रयत्न किया था, किन्तु वह विश्लेषण बाह्यतम भावनाओं, विलास-वासनाओं और शारीरिक सौन्दर्य तथा हाव-भाव तक ही सीमित रह गया था। अन्तरतम में बसने वाले हृदय को वे कवि कभी भी पूर्णतया नहीं छू सके। उन कवियों के लिए नारी-हृदय एक खिलवाड़ तथा मनोविनोद की वस्तु थी")[3] इसके अतिरिक्त रीतिकालीन कवियों ने नारी को विशिष्ट रूपों (types) की परिभाषाओं में आबद्ध करके देखा। "वासक सज्जा," "अभिसारिका", "प्रोषितपतिका" आदि आठ-दस नामों की सीमाओं में उन्होंने नारी को बाँध दिया। यह शास्त्रीय सीमायें कवि के व्यक्तिगत दृष्टिकोण के विकास के लिए अवकाश नहीं छोड़ती शृंगार-रस के क्षेत्र में विविध नायिकाओं के हाव-भावों में ही तृप्ति पाने वाले इन कवियों ने इन सीमाओं से बाहर जाने की चिन्ता भी न की। रीतिकालीन नारी भावना की संकुचितता[1] का अनुमान तो वहाँ होता है, जहाँ वीर-रस पूर्ण काव्य में भी नारी को कोई स्थान नहीं मिलता भूषण, जैसे उत्साहपूर्ण कवि भी नारी भावना में कोई नवीनता न उत्पन्न कर सके। शिवाजी के आश्रय में रहकर भी उनकी दृष्टि शिवाजी के निर्माण की मूल कारण माता जीजाबाई के उत्तेजना भरे उपदेशों पर न गई। भूषण ने शत्रु-पक्ष की स्त्रियों का उपहास तो किया, पर यह न बता सके कि मरहटों

---

[1] केशव केसनि असि करी बैरिहु जसि न कराहिं।
चंद्रबदनि मृगलोचनि बाबा कहि-कहि जाहिं॥ (केशव)

[2] मतिराम ग्रंथावलि : भूमिका पृ० ४८।

[3] गोपालशरणसिंह मानवी : प्राक्कथन पृ० २।

की विजयों में कितना सहयोग उनकी स्त्रियों का था। एक स्थान पर मीना बाजार का वर्णन करते हुए भी वे उस वीर राजपूतानी को भूल गए जिससे शाहंशाह अकबर को भी प्राणों की भीख मांगनी पड़ी थी।[1] वे भी अधिक से अधिक "रति संगर" में नारी की वीरता देख सके।[2]

रीतिकाल में नीति काव्य की भी रचना हुई। इस काव्य के अन्तर्गत नारी भावना इसी ढंग की है जैसी हम भक्तिकाल के धार्मिक काव्य में देख चुके हैं। नीति की दृष्टि से रहीम लिखते हैं –

"उरग तुरंग, नारी नृपति, नीच जाति हथियार।
रहिमन इन्हें संभारिए, पलटत लगे न बार॥"[3]

भक्तिकालीन-वैराग्य मूलक भावना भी इस युग में बनी रही। आश्चर्य तो तब होता है जब बिहारी जैसे कामिनी रूपासक्त शृंगारी कवि को कहते हुए सुनते हैं:

"या भवसागर कौं उलंघि पार को जाइ।
तिय छवि छाया ग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ॥"[4]

यह भाव विपर्यय यही स्पष्ट करता है कि रीतिकालीन कवियों के नारी रूपानुराग में सच्चापन नहीं था। उन्होंने नारी को खिलौने मात्र के रूप में देखा जिसका वास्तविक मूल्य कुछ भी नहीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मध्य युग में नारी भावना की एक सीमा भक्तिकाल के वैराग्य काव्य में मिलती है तथा दूसरी रीतिकाल के विलासमय काव्य में। प्रथम का आधार प्रमुखतः स्मृतियों और पुराणों के वे वाक्य हैं जो प्रायः नारी की निंदा करते हैं, तथा द्वितीय का संस्कृत काव्य-शास्त्र। अगर गहन दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि दोनों विरोधी सीमायें होने पर भी केन्द्र में एक ही हैं। गौरवमयी नारी भावना का दोनों में अभाव है। एक ओर संत कवि काम को त्याज्य मानकर स्त्री से दूर भागते हैं तो दूसरी ओर शृंगारी कवि काम के प्रति एक लीला और विनोद का भाव लिए हुए स्त्री को सस्ता खिलौना बना लेते हैं। गंभीर और विवेचनात्मक दृष्टिकोण का दोनों ही में अभाव है। पुरुष के ऐन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त मानसिक जीवन में नारी का क्या स्थान है, नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है, देश और जाति के जीवन में नारी का क्या मूल्य है, यह सब देखने का प्रयत्न मध्ययुगीय कवियों ने नहीं किया। उनका दृष्टिकोण संकुचित रहा।

१९ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में परिस्थितियों में परिवर्तन हुआ। लगभग पूरे भारत पर अँग्रेज़ी शासन स्थापित हो चुका था। ईस्टइंडिया कंपनी अँग्रेज़ी क़ानून और अँग्रेज़ी शिक्षा का प्रचार करने का प्रयत्न कर रही थी। किन्तु भारतीय और यूरोपीय

---

[1] भूषण ग्रंथावली - फुटकर पद, २८ पृ० ३८७।

[2] वही, ५७, पृ० ४१८—४१९।

[3] रहीम रत्नावली : दोहावली, १४, पृ० २।

[4] बिहारी रत्नाकर : ४३३, पृ० १७८।

सभ्यता में कोई साम्य न होने के कारण जनता में नए शासन के प्रति अविश्वास बना रहा जो सन् १८५७ के ग़दर के रूप में फूट पड़ा। यों तो ग़दर न तो सगठित राष्ट्रीय भावना से प्रेरित था और न सफल हुआ, किन्तु वह भारत में नव जागृति के प्रभात की सूचना थी। यद्यपि उसके बाद ही सम्पूर्ण भारत अँग्रेज़ों के हाथों में चला गया और उसने दासता की नई बेड़ियाँ पहनी; किन्तु शिक्षा के प्रसार (जिसका श्रेय अँग्रेज़ी शासन को है) तथा विदेशी साहित्य और सभ्यता के प्रभाव से वह तभी अपने को पहचानने मे प्रयत्नशील हुआ और युग-युग से छाई जड़ता को दूर करने के लिए सजग हुआ।

साथ ही अँग्रेज़ी शासन ने राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों में भी उथल-पुथल कर दी। शताब्दियों से चले आते हुए सामंतवादी शासन का स्थान प्रजातन्त्रवादी व्यवस्था ने लिया जिसमे भारतवासियों मे नए दृष्टिकोण बनने प्रारंभ हुए। अँग्रेज़ों की आर्थिक नीति ने भारत की औद्योगिक सम्पन्नता को नष्ट करके बेकारी बढ़ा दी जिसने असतोष को जन्म दिया। अँग्रेज़ी क़ानून ने भारतवासियों के धार्मिक विश्वासों तथा धर्मसूत्रों की भावनाओं पर प्रचण्ड आघात करके मानसिक द्वन्द्व का सूत्रपात किया।

इस प्रकार की उथल-पुथल के मध्य भारतीय साहित्यकार अपनी गतिहीन स्थिरता त्यागने लगा। (१९ वीं शताब्दी में गद्य-साहित्य का विशेष विकास हुआ और काव्य में अनेक प्रकार के विषयों का समावेश होने लगा। नारी को लेकर सुधार भावना से प्रेरित होकर कुछ कवियों ने उनकी शिक्षा आदि की आवश्यकता की ओर लक्ष्य किया[1]।) किन्तु नारी सबन्धी उदार भाव इस युग में कम ही मिलते हैं क्योंकि पुरानी विचार धारा समाज में तथा काव्य में अब भी प्रबल थी। विधवा विवाह और पर्दा खडन के विरुद्ध अनेक व्यंगपूर्ण कवितायें हम पाते हैं[2], तथा रीतिकालीन परंपरा के काव्य की रचना प्रचुर रूप से होती रही। नारी को विशिष्ट रूपों में देखने की आदत से कवि छुटकारा न पा सके।

२० वीं शताब्दी नारी भावना में नवयुग का संदेश लेकर आई। इस युग में नारी भावना में परिवर्तन की गति स्पष्ट दिखाई पड़ने लगी। कुछ विशिष्ट कारणों से जिनका विवेचन प्रथम अध्याय में किया जायगा, काव्य ने अपनी परिपाटी को छोड़कर नवीन भावनायें, नवीन दृष्टिकोण और अभूत पूर्व विचार विकसित किए, और नए विचारों ने नारी भावना में भी नवीनता उत्पन्न की।

---

[1]जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोइ शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष, या मैं कछु न विभक्ति॥
सीता अनुसूया सती, अरु अरुंधती अनुहारि।
शील लाज विद्यादि गुण, लहौ सकल जग नारि॥
वीर प्रसविनी बुध वधू, होइ दीनता खोय।
नारि नर अरधंग की, सांचेहि स्वामिनि होय॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : बाला बोधिनी।

[2]बालमुकुन्द गुप्त—स्फुट कविता पृ० ११०, पृ० १३४।

पूर्व पीठिका

जैसा कि पहले भूमिका में संकेत किया जा चुका है, साहित्य की नारी-भावना का विकास नारी की समाजगत अवस्था पर निर्भर रहता है, नारी की सामाजिक दशा देश की राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के आधार पर बनती है। फलतः खोजकाल के काव्य में नारी-भावना किन प्रमुख कारणों से मध्ययुगीय नारी-भावना से संबंध तोड़ बैठी, यह देखने से पूर्व इन परिस्थितियों का अध्ययन करना अनिवार्य है, जो उन कारणों की भूमिका बनाती हैं।

२० वीं शताब्दी के उदय के समय भारत की राजनैतिक परिस्थिति पूर्णतः बदली हुई थी। न तो अब आपस में लड़ने वाले देशी राज्य रह गए थे, और न मुग़ल बादशाहत ही बची थी; संपूर्ण देश ब्रिटिश राज्याधिकार में पहुँच गया था। सन् १७४० और १८५७ के मध्य अंग्रेज़ों ने चातुरी और बल के प्रयोग से भारत की समस्त बिखरी हुई राजनैतिक शक्तियों को कुचल कर या निगल कर, अंत कर दिया था; जो कुछ देशी राज्य बचे भी उनकी अपनी स्वतंत्र सत्ता बहुत कम थी। अंग्रेज़ों की भारत-विजय अन्य पूर्ववर्त्ती विजयों से सर्वथा भिन्न थी। मुसलमान तथा अन्य आक्रमणकारी या तो भारत के कुछ अंशों पर आक्रमण करके धन आदि लूटकर चले गए थे या भारत में ही आकर बस गए थे और अपने राज्य का विस्तार करते रहे। इस प्रकार विजयों ने देश की शासन-विधि में कोई अंतर न किया था। अंग्रेज़ी शासन से पूर्व प्राचीन काल तक भारत राजाओं तथा बादशाहों से शासित होता चला आया था। किन्तु अंग्रेज़ी शासन-व्यवस्था उस व्यवस्था से सर्वथा भिन्न थी। ब्रिटेन एक प्रजातंत्रवादी राष्ट्र था और सामंतशाही का अंत बहुत पहले कर चुका था। अंग्रेज़ों के द्वारा भारत में भी प्रजातंत्र वादी शासन व्यवस्था की स्थापना ने शताब्दियों से चली आती हुई सामंतशाही का अंत कर दिया। ब्रिटिश राज्य ने भारत में शासन-व्यवस्था का एक सर्वथा नवीन रूप विकसित किया और राजनीति को एक वैज्ञानिक तथा व्यवस्थित रूप दिया। देश में अब छोटे-छोटे राज्यों और जागीरों के स्थान पर केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों का निर्माण हुआ, न्याय, मालगुज़ारी आदि के नये सिद्धान्त प्रचलित हुए।

राजनैतिक परिस्थिति के साथ देश की आर्थिक परिस्थिति भी बदली हुई थी। पूर्व-वर्ती आक्रमणकारियों ने भारत की आत्म निर्भर ग्राम-व्यवस्था को नहीं तोड़ा था, इसलिए भारत की सम्पन्नता तथा संतोष पर विशेष आघात नहीं हुआ था। किन्तु अंग्रेज़ों की नीति आर्थिक शोषण की थी। फलतः आत्म निर्भर ग्राम-व्यवस्था ध्वस्त हो चुकी थी। हस्त-कलाओं और देशी उद्योगों को नष्ट कर दिया गया था। लगभग समस्त बड़े-बड़े उद्योगों और व्यापारों के अधिकारी विदेशी थे, जो भारत में कमाया हुआ धन ले जाकर विलायत

में खर्च करते थे। विदेशी माल के आने से देश का धन नदी की भाँति बाहर की ओर बह रहा था। बड़े-बड़े पदों पर मोटे वेतन पाने वाले अँग्रेज़ थे जो भारत को धन एकत्र करने का स्थान समझते थे और उसको ले जाकर विलायत में बड़ी-बड़ी रियासतें खरीदते थे। इन कारणों से भारत की आर्थिक दशा निरन्तर गिरती जा रही थी। उसको समय-समय पर आने वाले अकालों तथा भूकंपों ने और भी नीचे ढकेल दिया।

इस प्रकार भारत की नवीन रूप-रेखा उसके मध्ययुगीय स्वरूप से सर्वथा भिन्न हो गई थी। इन बदलती हुई राजनैतिक और आर्थिक परिस्थितियों में भारतवासियों के मस्तिष्क की बनावट वही न रह सकी, जो मध्युयग में थी। एक ओर तो आर्थिक-संकट ने लोगों को जीवन की यथार्थताओं के प्रति आकर्षित किया और दूसरी ओर प्रजातन्त्रवादी शासन की स्थापना ने उनमें ऐक्य, राष्ट्रीयता, समाजोद्धार, व्यक्ति-स्वातंत्र्य आदि की भावनाओं को उत्पन्न किया। वे अब व्यक्ति, समाज और देश को नई दृष्टि से देखने लगे, साथ ही भारत में सामंतवादी व्यवस्था नष्ट हो चुकी थी. और अब पूँजीवादी व्यवस्था की स्थापना हो रही थी। विचारों की उदारता उदीयमान पूँजीवाद की प्रमुख विशेषता है। पूँजीवाद व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य तथा समानता को भी स्वीकार करता है। ये नये प्रभाव, तथा नए विचार भारतीय मस्तिष्क को मध्ययुगीय विचार धाराओं से मुक्त करने लगे, विचारों के परिवर्तन में विशेष रूप से सहायक हुई अंग्रेज़ी शिक्षा जिसने २० वीं शताब्दी में अपने निश्चित विकास को स्पष्ट किया।

अंग्रेज़ों के भारत में आने से पूर्व पाठशालाओं और मकतबों की शिक्षा संस्कृत और अरबी साहित्य के संकुचित क्षेत्र तक ही सीमित रहती थी। विज्ञान, राजनीति, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि के लिए वहाँ कोई स्थान न था। चार्ल्स, ग्रांट जो १७७३—९० तक ईस्ट इन्डिया कम्पनी का सिविलियन रहा था, ने जनहितैषी भावों से प्रेरित होकर भारत के सामाजिक दोषों और कुप्रथाओं विशेष रूप से स्त्रियों की दशा तथा उनके दलित जीवन का वर्णन करते हुए अंग्रेज़ी सरकार का ध्यान अँग्रेज़ी शिक्षा की अनिवार्यता की ओर आकर्षित किया, जो उनके विचार में, भारतवासियों के सम्मुख नवीन विचारों का भंडार खोल देगी तथा उनके दोषों को दूर कर देगी। ग्रांट की कल्पना सार्थक होने में काफी समय लगा क्योंकि अँग्रेज़ी सरकार ने १८३५ से पूर्व अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार पर विशेष ध्यान नहीं दिया। १८५४ में सर चार्ल्स वुड ने शिक्षा-संबंधी एक महत्त्वपूर्ण योजना बनाई जिसका पालन लगभग अबतक हो रहा है। इस योजना में स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया गया तथा उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों की स्थापना का निश्चय किया गया। फलत: १८५७ और १८८७ के मध्य पाँच प्रमुख विश्वविद्यालयों—कलकत्ता बंबई, मद्रास लाहौर और प्रयाग, की स्थापना हुई। २० वीं शताब्दी के प्रत्यूष-काल में देश अँग्रेज़ी शिक्षा को ग्रहण करने के लिए प्रस्तुत हो गया था। ६ जनवरी १९१२ को जार्ज पंचम ने कलकत्ते में कहा "मेरी इच्छा है कि देश भर में स्कूल और कालिजों का जाल बिछ जाय, जिनसे राज्य भक्त पौरुषी, उपयोगी नागरिक निकलें, जो अपने उद्योग-धंधे कृषि तथा व्यवसायों को स्वयं सँभाल सकें। यह भी मेरी इच्छा है कि मेरी भारतीय प्रजा के घर, ज्ञान के प्रसार तथा उसके

फलों, उच्च विचार, सुख तथा स्वास्थ्य से, उज्ज्वल तथा मधुर हो जायँ। मेरी इच्छा की पूर्ति शिक्षा प्रसार से ही होगी।" इसके अनन्तर २१ फर्वरी तथा २४ अप्रैल १९१३ को भारतीय सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र का निरीक्षण और बादशाह द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के आधार पर शिक्षा-नीति को निश्चित करते हुए प्रस्ताव पास किये। इनके अनुसार शिक्षा को सामाजिक शक्ति बनाया गया स्वास्थ्य-विज्ञान, शारीरिक शिक्षा, तथा चरित्र-निर्माण शिक्षा के प्रथम ध्येय निश्चित किए गए, धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा का महत्त्व स्वीकार किया गया, शिक्षा-प्रसार का कार्यक्रम निश्चित किया गया तथा विश्वविद्यालयों में नवीन विचारों के विकास के लिए अवकाश दिया गया। अस्तु, २० वीं शताब्दी में अधिकांश भारतीय अपने रूढ़िबद्धता के कारण शिक्षा-विरोधी विचारों को छोड़ कर नवीन शिक्षा की ओर झुकने लगे। विद्यार्थियों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि तथा १९१६ १९२६ के मध्य १३ नए विश्वविद्यालयों की स्थापना इसका प्रमाण है।

भारत में अँग्रेज़ी-शिक्षा के प्रचार ने वास्तव में, ग्रांट के शब्दों में, नवीन विचारों का भंडार भारतीयों के सम्मुख खोल दिया। परम्परागत रूढ़ियों को तोड़कर ये नए विचार ग्रहण करने और उदार तथा संस्कृत दृष्टिकोण का निर्माण करने लगे। अन्य देशों के संपर्क में आने से उनके ज्ञान में अधिकाधिक वृद्धि हुई तथा अपने देश तथा समाज की पतित दशा का ज्ञान हुआ। फल यह हुआ कि भारतवासी अपने को उन्नत तथा शक्ति संपन्न बनाने में प्रत्नशील हुए।

भारतीय उन्नति के मार्ग में एक बड़ी बाधा थी नारी जो शताब्दियों से पर्दे के पीछे अपने दलित जीवन को व्यतीत करती हुई किसी क्रियाशील उपयोग की न रह गई थी। प्रत्येक देशी आंदोलन ने स्त्रियों को सामाजिक अवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया तथा सरकारी क़ानूनों द्वारा भी इस दिशा में प्रचुर प्रयत्न किए गए। इस प्रकार के प्रयत्नों का प्रारंभ तो राजा राममोहन राय (१७७२-१८३३) से हो गया था, किन्तु १९ वीं शताब्दी सुधारवादी आंदोलनों का विशेष फल न देख सकी। भारतीय समाज अपनी परम्पराओं को छोड़ने में तनिक अनुदार रहा है, इसलिए, उन सुधारों को व्यावहारिक रूप लेने में समय लगा। २०वीं शताब्दी में जब स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार हुआ तथा वे स्वयं अपने अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति सचेत हुईं, तभी देश की सामाजिक परिस्थितियों में निश्चित परिवर्तन हो सका।

२० वीं शताब्दी में स्त्री-शिक्षा का प्रसार तीव्रता से होने लगा। भारत में अंग्रेज़ों के आने से पूर्व स्त्रियों के लिए शिक्षा का कोई अवकाश न था तत्कालीन शिक्षा पद्धति की रिपोर्ट में विलियम आडम ने लिखा है कि स्त्रियों को पढ़ाना उनके विधवा होने की भविष्य वाणी समझी जाती थी, तथा लोगों की धारणा थी कि स्त्रियों का स्वभावगत कपट लिपि ज्ञान से वृद्धि पाता है। १९ वीं शताब्दी तक अँग्रेज़ी सरकार ने भी स्त्री-शिक्षा की ओर ध्यान न दिया। मई, १८४९ में कलकत्ते में प्रथम बालिका-विद्यालय की स्थापना की गई। चार्ल्स वुड शिक्षा-योजना में इस ओर विशेष ध्यान दिया गया, किन्तु ग़दर के बाद लार्ड कैनिंग ने इस चिन्ता में कि भारतवासी यह न समझें कि सरकार उनकी समाज व्यवस्था में क्रान्ति

चाहती है, घोषणा कर दी कि कन्या-पाठशालायें व्यक्तिगत सहायता से ही चलें। लार्ड रिपन जो उदार दल के थे, के समय एजूकेशन कमिशन (Education Commission) (१८८२) ने सलाह दी कि स्त्री-शिक्षा को विशेष प्रोत्साहन देना चाहिए। तदनन्तर कन्या पाठशालाओं को सरकारी आर्थिक सहायता उदारता के साथ दी जाने लगी। किन्तु भारत-वासियों में नवीन विचारों का प्रसार धीरे-धीरे हो रहा था। पर्दा, बाल-विवाह, आदि अनेक कारण अधिकांश लड़कियों को शिक्षा से वंचित रखते थे। २० वीं शताब्दी में कई कारणों से स्त्री शिक्षा का विशेष प्रचार हुआ; प्रधानतम कारण था राष्ट्रीय जागृति जो स्त्रियों को घर की संकुचित दीवारों से बाहर निकाल लाई। देशीय चेतना ने स्त्रियों को शिक्षा की ओर प्रेरित किया। जहाँ सन् १९०० में शिक्षा ग्रहण करनेवाली लड़कियों की संख्या ४००००० थी, वो १९२१ में १२३०६६८ और १० वर्ष बाद २८९०२४६। इन संख्याओं को देखकर अनुमान किया जा सकता है कि शिक्षा प्रचार कितनी तीव्रता से हो रहा था। २० वीं शताब्दी में सह-शिक्षा भी प्रचुर रूप से प्रचलित हुई। स्त्रियों की शिक्षा-पद्धति ध्यान का प्रमुख विषय हो गया।

शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियों ने एक नवीन दृष्टिकोण लेकर जीवन में प्रवेश करना प्रारंभ किया। अब उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य जैसे-तैसे विवाह करके यातना पूर्ण जीवन व्यतीत करना न रह गया। उन्होंने विविध व्यवसायों—डाक्टरी, वकालत अध्यापन आदि को अपनाना प्रारंभ कर दिया। उनके ऐसा करने में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह तो था ही साथ ही स्त्रियों की सामर्थ्य तथा बुद्धि का प्रमाण भी था। इतना ही नहीं स्त्रियाँ सार्वजनिक कार्य क्षेत्र में भी उत्साह के साथ उतरीं। प्रारंभ में तो स्त्रियों की निजी समस्यायें पर्दा, विवाह आदि शिक्षित स्त्रियों के ध्यान का केन्द्र रहीं, किन्तु शीघ्र ही देश कार्य उनका प्रमुख ध्येय हो गया। २० वीं शताब्दी की अत्यन्त महत्त्व पूर्ण घटना है स्त्रियों का राजनैतिक क्षेत्र में अवतरण। मिसिज़ ऐनी बेसेंट के भारत में जागृति फूकने के समय (१९१४) से तथा उनके कांग्रेस की सभापति होने (१९१७) से भारतीय स्त्रियों मे राजनैतिक चेतना जाग्रत हुई। १९१७ की कलकत्ता कांग्रेस में ३ स्त्रियाँ-मिसिज़ एनी बेसेंट, सरोजनी नायडू तथा बेगम अम्मन बीबी महत्त्व पूर्ण पदों पर स्थित थीं। भारत के सामाजिक तथा राजनैतिक इतिहास में ये तीन नारियां नव युग के प्रारम्भ की सूचना थीं। इसके बाद भारतीय नारी मातृभूमि की स्वतंत्रता के लिए पुरुष के साथ परिश्रम करने को निकल आई; १९२१-२३ के असहयोग आंदोलन में हज़ारों स्त्रियाँ वोट देने तथा आंदोलन में भाग लेने के लिए आईं। १९२६ से स्त्रियां व्यवस्थापक मंडल (Legislative Council) की सदस्य होने लगीं। डा० मुथु लक्ष्मी रेड्डी ऐसी प्रथम महिला थीं। लगभग इसी समय स्त्रियां म्युनिसिपल कौंसिल (Municipal Council) की भी सदस्य होने लगीं। १९२९-३२ के सविनय अवज्ञा आंदोलन के दिनों में भारतीय स्त्रियों में राजनैतिक चेतना और जागृति अत्यंत व्यापक रीति से फैली। देश की ३ हज़ार से अधिक स्त्रियाँ ने पुरुषों के साथ जलूसों में गईं, शराब और विदेशी माल की दुकानों पर पिकेट बनीं, लाठी प्रहार सहीं, न्यायालयों में खड़ी हुईं, जेल की कड़ी सजायें भुगतीं तथा धार्मिक और जाति संबंधी बंधनों को तोड़ कर देश के चरणों

पर बलि हुई। देश-सेवा के लक्ष्य के सम्मुख तथा गांधी के नेतृत्व में समस्त बाधा-बंधन नष्ट हो गए। इस युग की प्रमुख नारियाँ थीं—सरोजिनी नायडू, कमला देवी चट्टोपाध्याय, रुक्मनी लक्ष्मीपति, हंसा मेहता, कस्तूरबा गांधी, मीरा बेन, नेली सेनगुप्त, सत्यवती देवी, तथा जाफ़र अली आदि। उस समय गांधी के आह्वान को सुनकर गर्भवती मातायें, देवदासियाँ, श्वेत केशोंवाली मातामही तथा रूढ़िवादिनी ब्राह्मणियाँ भारत की स्वतंत्रता के लिए जेल की यातनायें सहने को प्रस्तुत हो गईं। इस आंदोलन के पश्चात् १६३६ के चुनावों के लिए स्त्रियों में बहुत उत्साह था। लगभग ५० लाख स्त्रियाँ वोट देने आईं। वे अपने मताधिकार तथा उत्तरदायित्व के प्रति सचेत थीं। इन चुनावों में व्यवस्थापक-मण्डल की सदस्यता के लिए अनेक स्त्रियाँ भी खड़ी हुईं। जिन स्थानों में स्त्री-पुरुष की प्रतिद्वन्द्विता थी वहाँ स्त्री ही सफल हुई। ८० स्त्रियाँ भारतीय व्यवस्थापक-मंडल में स्थान पा सकीं। १६४१ में राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों के स्थान की दृष्टि से भारत का स्थान तीसरा था। प्रथम अमरीका का तथा द्वितीय रूस का। १६४२ के आंदोलन में स्त्रियों का सहयोग पहिले से भी अधिक था। और आज भारत की स्त्रियाँ न केवल राष्ट्रीय राजनीति में भाग ले रही हैं, वरन् अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की प्रमुख स्तंभ हैं।

शिक्षा के प्रचार तथा स्त्रियों की इस उन्नति में विशेष रूप से सहायक हुआ विवाह आयु का बढ़ जाना। २० वीं शताब्दी के प्रारंभ में प्लेग के भयंकर आर्थिक फलों के कारण लड़कियों की विवाह-वयस १२, १३ वर्ष हो गई। शहरों में तो आर्थिक कारणों से ही १६, १७ पर पहुँच गई। १६३० के शारदा एक्ट के द्वारा सरकार ने लड़कियों की लघुतम विवाह वयस १४ निश्चित कर दी। इस एक्ट का व्यावहारिक क्षेत्र में काफ़ी प्रभाव पड़ा। शिक्षा के प्रसार ने उसको और भी बढ़ा दिया। साथ ही शिक्षा के प्रसार से जब लड़कियाँ विविध व्यवसायों के मार्ग खुले पाने लगीं, तो वे आर्थिक दृष्टि से भी स्वतंत्र तथा स्वावलंबी होने लगीं। भारत में बाल-विवाह के कारण स्त्रियों की आर्थिक परतंत्रता उनकी दुर्दशा का एक प्रमुख कारण रही थी। आधुनिक युग में स्त्री को व्यक्तिगत आर्थिक अधिकार देने के प्रयत्न हुए हैं तथा हो रहे हैं। १६३६ में डा० देशमुख के प्रयत्न से केन्द्रीय व्यवस्थापक-मण्डल में कन्या तथा विधवा के उत्तराधिकार को लेकर एक प्रस्ताव रक्खा गया। किन्तु अत्यधिक विरोध के कारण वह पास न हो सका। [illegible]६३७ के हिन्दू विमेंस राइट टु प्रापर्टी एक्ट (Hindu Womens, Right to Property Act) के अनुसार दायभाग के नियम को प्रचलित किया गया जो अभी तक केवल बंगाल में ही माना जाता था। इस प्रकार समाज स्त्रियों के संपत्ति-संबन्धी अधिकारों के प्रति अधिक उदार हो रहा है।

उल्लिखित कारणों से समाज में स्त्रियों की अवस्था में उन्नति होने लगी। इन सब कारणों से अधिक महत्त्वपूर्ण कारण था भारतीय पुरुषों का शिक्षित होना तथा विविध उन्नति देशों के संपर्क में आकर उनके दृष्टिकोण का विकास। पहले भूमिका में हम लिख चुके हैं कि मध्ययुग में पुरुषवर्ग का ज्ञान भी बहुत संकुचित रह गया था, किन्तु जब भारत में शिक्षा-प्रसार हुआ और भारतीय पुरुष इंगलैंड आदि देशों के संपर्क में आये, जहाँ स्त्रियों को भारतीय स्त्रियों से अधिक स्वतंत्रता थी, तो उनका ध्यान अपने देश की स्त्रियों की अव-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

करना तथा यंत्र की तरह शिशुओं को जन्म देना है। अब भी अनेक पुरुष उन्हें हीन समझते हैं तथा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं।

किन्तु इसमें परिवर्तन, चाहे वह व्यापक न हो, का मूल्य कम नहीं होता। अस्तु, जब देश की राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों में अंतर हुआ तो कवि के मस्तिष्क ने भी नवीन मार्ग को अपनाया। समाज में जब स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए आन्दोलन हुआ तथा उनकी परिस्थितियों में उन्नति हुई, तो कवियों ने भी मध्ययुगीय संकुचित नारी-भावना का परित्याग करके नवीन उदार-भावना का विकास किया। यह अत्यंत स्वाभाविक था।

अध्याय १

आधुनिक हिन्दी-काव्य की नारी भावना में परिवर्तन

कारण और प्रेरणा के स्रोत

पूर्वपीठिका में हम उन परिस्थितियों को देख चुके हैं, जो हिन्दी के आधुनिक कवि के मस्तिष्क के निर्माण की भूमिका रही हैं। इस भूमिका में कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कारण उदय हुए जो कवि को नवीन प्रकार की नारी-भावना के निर्माण की ओर ले गए। इन कारणों और प्रेरणा स्रोतों को हम सात छोटे-छोटे शीर्षकों में देख सकते हैं।

१. प्राचीन के प्रति नव-जाग्रत आकर्षण :- जब कोई देश पुनरुत्थान के पथ पर अग्रसर होता है तो अपने अतीत गौरव के पृष्ठ पलटता है। उसका प्राचीन सांस्कृतिक-वैभव आगे बढ़ने के लिए उसका संबल हो जाता है। यही नव जागृति की किरणों को ग्रहण करते हुए भारत में भी हुआ। प्रारम्भ में तो पश्चिमी विद्वानों ने प्राचीन भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक सम्पत्ति की खोज प्रारम्भ की थी और इस संबंध में बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी का जन्म (सन् १७८४)[1] एक महत्त्वपूर्ण घटना है, किन्तु राष्ट्रीय भावना और सुधार-भावना के विकास के साथ भारतीय विद्वानों का ध्यान भी भारत की प्राचीन संस्कृति तथा साहित्य की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। स्वतंत्रता की प्रेरणा ने भारत और भारतीय वस्तुओं के प्रति भारतीयों में प्रेम जाग्रत किया। इस संबंध में महत्त्वपूर्ण कार्य आर्य-समाज ने किया, जिसके आदर्श वैदिक थे और जिसने "वेदों की ओर लौटो" का प्रबल संदेश भारत में गुँजा दिया। प्राचीन भारतीय संस्कृति और साहित्य की ओर

---

1. Thus there has been an almost general awakening of the Indian mind leading in most cases to a revival and adaptation of the past literary tradition of India, which have been and are being harmonised with all that the West and the wide world has brought and is still bringing to the doors of India.........This cultural renaissance has also necessarily created in Modern India a spirit of enquiry into the past history and antiquities of the country, The foundation of the Asiatic Society of Bengal in 1784 was a landmark in the history of India from this standpoint, and since then the researches of number of prominent European Scholars like Charles Williams, Sir William Jones, Henry Thamas Colebrooke, Alexander Hamilton, Fredrich Schegal, Froz Bopp, F. Rosen, Rudolf Roth, F Max Mular, Theodor Autrecht Barnoff lassen, T. W. Rlys Davids. George Bublar, A. A Macdonell, Keith, Jolly, M Winterniky and Tucci) have unfolded India's intellectual pasto ints manifold aspects.

दत्त और मजूमदार—ऐडवान्स्ड बुक ऑव माडर्न इंडियन हिस्ट्री,

२, ३, पृ० २३३-२३४.

आकर्षण का फल यह हुआ कि द्विवेदीजी ने 'नैषध-चरित-चर्चा' (१६००), 'विक्रमांकदेव चरित-चर्चा' (१६०७), 'कालिदास की निरंकुशता' (१६१२), 'प्राचीन पंडित और कवि' (१६१६), 'सुकवि संकीर्तन' (१६२४ आदि लिखकर संस्कृत-साहित्य-सागर में से हिन्दी के लिए रत्न खोजने का प्रयत्न किया साथ ही रामदहिन मिश्र ने 'मेघदूत-विमर्श' (१६२२), माधवराव सप्रे ने 'महाभारत-मीमांसा' (१६००), भी लिखे। एक ओर यह संस्कृत-साहित्य का अन्वेषण हो रहा था तो दूसरी ओर वेद-वेदांत पुराण आदि का अध्ययन भी चल रहा था । इंद्र वेदालंकार ने 'उपनिषदों की भूमिका' (१६१३), द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी ने 'पौराणिक उपाख्यान' (१६.२), राधा प्रसादशास्त्री ने 'प्राच्य दर्शन' (१६१५), अखिलानंद शर्मा ने 'वैदिक वर्ण-व्यवस्था' (१६१६), भवानीदयाल संन्यासी ने 'वैदिक-धर्म और आर्य सभ्यता' (१६१७), नरदेव शास्त्री ने 'ऋग्वेदालोचन' (१६२८), और गंगानाथ झा ने 'हिन्दू धर्मशास्त्र' (१६३१), लिखकर प्राचीन धर्म तथा संस्कृति से लोगों का परिचय कराया। अनेक ऐतिहासिक-ग्रंथ भी प्राचीन आर्य-गौरव का प्रतिपादन करने के हेतु लिखे गए। साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में प्राचीन महान् पुरुषों और दिव्य नारियों के जीवन-चरित भी छपा करते थे। 'सरस्वती' के प्रारंभिक वर्षों में 'कामिनी-कौतूहल' नामक अंश रहता था, जिसमें प्राचीन प्रसिद्ध तथा यशस्वी नारियों के संबंध में लिखा जाता था। विशेष रूप से उल्लेखनीय रानी लक्ष्मी बाई-संबंधी लेख है जो जनवरी १६०४ के अंत में भवभूति के इस कथन :—

"गुणाः पूजास्थानं गुणिषु न च लिंगं न च वयः"

की पुष्टि में छपा था।

फलतः हम अपने कवियों को भी प्राचीन की ओर आकृष्ट पाते हैं। जीवन की उन्नति के लिए प्राचीन संस्कृति को याद रखना अनिवार्य है, यह आज का कवि भलीभांति जानता है।[1] इसलिए भूत को पूत मानता हुआ[2] वह चाहता है :

भारत की प्राचीन प्रभा जग में जग जावे,
गया हुआ धन धाम हमारा फिर मिल जावे।[3]

---

[1] जिन प्राचीन संस्कृतियों के बुझते हुए अंगारों से हमारे नवीन प्रकाश की लौ उठी है, उन्हें हमें सम्मान की दृष्टि से देखना चाहिए। नहीं तो हम जीवन के अखंडनीय सत्य को नहीं समझ सकेंगे। (सुमित्रानंदन पंत-ज्योत्स्ना, ३ पृ० ७१।
देखिए, दिनकर-रेणुका मंगल-आह्वान।

[2] अब भूत चाहे भूत है
पर वह बड़ा ही पूत है।

मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा: 'वकसंहार' पृ० ४. ३.

[3] रामचन्द्र शर्मा—राष्ट्रीय-सन्देश: 'भावनाओं से' पृ० ४०.

स्थान पाने लगीं। लार्ड मैकाले ने, जो १८३४ में कमिटी आव पब्लिक इंस्ट्रक्शन के प्रेसिडेंट हुए, अपने मिनिट्स (२ फर्वरी, १८३५) में पाश्चात्य-शिक्षा की शक्तिशाली वकालत की। मैकाले का शिक्षा-संबन्धी यह कार्य भारतीय मस्तिष्क के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। 'मिनिट्स' के फलस्वरूप ७ मार्च १८३५ को सरकार ने एक प्रस्ताव पास किया, जिसके अनुसार सारा सरकारी धन अँग्रेज़ी शिक्षा में लगाया जाने लगा। यह केवल भाषा की शिक्षा देने का प्रश्न नहीं था, वरन् नवीन ज्ञान, नवीन भावनाओं, जीवन, धर्म, राजनीति और शासन के प्रति नवीन दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयत्न था, और यह समस्त बातें मैकाले ने सोच ली थीं। जो कुछ विरोध और अविश्वास भारतीयों के रूढ़िग्रस्त हृदयों में विदेशी सभ्यता और शिक्षा के प्रति था भी वह गदर के बाद घटता गया। नए ग्रेजुएटों की जीवनगत सफलताओं को देख-देख कर पश्चिमी भाव, विचार, और रीति और भी लोकप्रिय हो गई।

पश्चिमी शिक्षा तथा गमनागमन की वैज्ञानिक सुविधाओं के कारण, विदेशी संपर्क के सहारे भारतीय युवक पश्चिमी सभ्यता और साहित्य से परिचित हुए। इंगलैंड-आदि देशों की आश्चर्यजनक उन्नति तथा भारत के वैषम्य में पतनावस्था को देख कर वे उससे प्रभावित भी बहुत अधिक हुए। नवीन प्रभावों से उत्पन्न मस्तिष्क के उदार विकास ने बुद्धिवाद, प्रकृति की भौतिक सत्ता पर विश्वास और अभौतिक पर अविश्वास तथा अवांछित रूढ़ियों के प्रति विद्रोह को जन्म दिया। तर्क-संमत और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने परंपरागत अंधविश्वासों को तोड़ा। फलतः काव्य में भाषा और छंद-संबन्धी परंपराओं के साथ भागवत शृंखलायें भी तोड़ी जाने लगीं। कवियों का नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण भी वह न रह सका, जो भक्तिकाल और रीतिकाल में रहा था। पश्चिम में क्रिश्चियनिटी के प्रसार के साथ नारी के प्रति घृणात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ था (सन् ५००-१२०० ई०), जो भारत में भक्तियुग (लगभग १२००-१६५० ई०) में फैला था; पश्चिम में भी नाइट युग के पश्चात् (सन् १५०० के बाद) वैसी ही नारी-भावना मिलती है जैसी हिन्दी-काव्य में रीतिकाल (लगभग सन् १६५०-१८५० ई०) में पाई जाती है, किन्तु १८ वीं शताब्दी से पश्चिम में संसार, मानवता और जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा। फ्रांस की क्रान्ति ने योरोप के सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिकोण को नई दिशा में अग्रसर किया जिसकी सूचना आडम स्मिथ के 'वेल्थ आव नेशन्स' (१७७६) जैसी पुस्तकों में मिलती है। (१६ वीं शताब्दी में मानवतावादी सिद्धान्तों का भली-भाँति विकास हुआ। प्रत्येक व्यक्ति की स्वाधीनता और अधिकार की भावना ने नारी-आन्दोलन को जन्म दिया। भारत इसके प्रभाव से मुक्त न रह सका और बीसवीं शताब्दी का प्रथम दशाब्द बीतते ही भारत में भी नारी-आंदोलन का सूत्रपात हो गया। (इस विषय को पृथक् रूप से आगे देखा जायगा)। मानवतावाद से प्रेरित होकर जब देश के दीन-दलितों पर नेताओं के साथ कवि की दृष्टि गई, तो वह भारत की शताब्दियों से पीड़ित मानवी को न भुला सका। अंचल ने 'किरण-बेला' में तीन चित्र—पुरुष और नारी, जमींदार और किसान, पूंजीपति और मजदूर को साथ-साथ रखा है; नारी की स्वतंत्रता की आवाज की प्रतिध्वनि पंत ने की है:—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] ।"[1]

[illegible] हिन्दी [illegible] भी [illegible] । [illegible], [illegible] । [illegible] अँग्रेजी [illegible], [illegible] । [illegible] । [illegible] था । [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] । [illegible] साहित्य [illegible], [illegible] नवयुवक उसमें अनुरक्त रह जाते, यह स्वाभाविक था । [illegible] अनुवादों के रूप में हो चुका था, और थोड़ा बहुत जाता था । 'सरस्वती' की प्रारम्भिक वर्षों की प्रतियों में, हम देखते हैं कि, प्रतिमास टायलर, बायरन, वर्ड्सवर्थ आदि की कवितायें अनुवादित रूप में छपती थीं । यह आश्चर्य का विषय है कि जिस सत्ता का राजनैतिक क्षेत्र में हम विरोध कर रहे थे, साहित्य-क्षेत्र में उसी का अनुकरण कर रहे थे, किन्तु ऐसी परिस्थितियों में अस्वाभाविक नहीं । कवि जब अपनी साहित्यिक परम्पराओं के प्रति विद्रोही हो उठे थे तो स्वाभाविक था कि अपनी समीपवर्ती वस्तु का सहारा लेते ।

हिन्दी के आधुनिक कवि सबसे अधिक प्रभावित हुए अँगेज़ी काव्यगत स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) की प्रवृत्ति से । इंगलैंड में इस प्रवृत्ति का जन्म १८ वीं शताब्दी के काव्य की रूढ़िवादिता, इतिवृत्तात्मकता, भावशून्यता, सीमित कल्पना तथा संकुचित सौंदर्यानुभूति के प्रति विद्रोह लेकर हुआ था । १८ वीं शताब्दी का अंग्रेज़ी काव्य समाज के धनिक वर्ग—क्लब, फैशन, दरबार, सभाओं-आदि पर केन्द्रित था और प्रकृति तथा प्राचीन-कालीन जीवन की उपेक्षा करता था । रोमांटिक कवियों ने इस परम्परा को तोड़ा । रोमांटिक कवि का सिद्धान्त है प्रगति, स्वतंत्रता, मौलिकता तथा भविष्य-उपासना । रोमांटिक प्रवृत्ति का मूलाधार है कौतूहल तथा सौन्दर्य-प्रेम । सौंदर्य को रोमांटिक कवि आश्चर्य की दृष्टि से देखता है तथा कल्पना की तीव्रता से प्राचीन वस्तुओं में सौंदर्य खोजता है । उसमें एक रहस्य की भावना भी रहती है । इस भावना से प्रेरित कवि संसार की सामाजिक वस्तुओं से अधिक प्रकृति की ओर आकर्षित है । रूढ़िवादी कविता के विपरीत रोमांटिक काव्य आत्माभि-

---

[1]सुमित्रानंदन पंत-युगवाणी : नारी, पृ. [illegible]

व्यंजक है । यह भावों को प्रभावित करने में अपनी विशेषता रखता है। निराशावाद तथा साथ ही आदर्श संसार की कल्पना रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। रोमांटिक कवियों ने अपनी आदर्श-कल्पना में प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है।

अँग्रेज़ी रोमांटिक काव्य की उल्लिखित विशेषताओं ने आधुनिक कवि को अत्यधिक आकर्षित किया। उसके प्रभाव के फलस्वरूप कवि ने चली आती हुई काव्यगत रूढ़ियों, निश्चित नियमों, सीमित विचारों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। सौंदर्य से वह आकर्षित हुआ, आलंबन या उद्दीपन की रेखाओं को लेकर नहीं, वरन् व्यक्तिगत सहज अनुभूति को लेकर। उसकी अनुभूति में निश्चित वर्णन-प्रणाली के स्थान पर आश्चर्य और कौतूहल मिश्रित प्रेम का उदय हुआ। राजाओं, नायिकाओं और नायकों को छोड़कर वह प्रकृति के अद्भुत विस्तार तथा सामाजिक व्यक्तियों की स्वाभाविक परिस्थितियों से आकर्षित होने लगा। अपनी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह दुःखवादी तो अवश्य बना, किन्तु रचनात्मक आदर्शवाद (Utopian Idealism) भी उसकी विशेषता रही। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव तो था काव्य में व्यक्तिवाद तथा आत्माभिव्यंजना का प्रारम्भ। १६१४-१८ के महायुद्ध-काल में जब अंतर्भावना कविता का माध्यम बन गई, तो कवि ने अपने दुख-सुख का अवलंब मानसी में पाया। जिस प्रकार उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ने एकाकी न रमते हुए अपने को द्विलिंगी अंशों में विभक्त किया था, उसी प्रकार कवि भी अपने भाव-जगत् की यात्रा एकाकी करने में असमर्थ रहता हुआ एक अन्य सहचर की सृष्टि करता है। यह अन्य निज मानस प्रतिभा ही होती है; क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति काम-प्रेरणा के फलस्वरूप शैशव में ही अपने से प्रतिकूल लिंग के व्यक्ति का रूप-निर्माण अंतःकरण में कर लेता है। इस मूर्ति-कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति कलाकार में ही होती है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा:

"शुधु विधातार सृष्टि नह तुमि, नारी।
पुरुष गडिछे तोरे सौंदर्य संचारि।
आपन अन्तर हते।......
पडेछे तोमार परे प्रदीप्त वासना
अर्धेक मानवी तुमि अर्धेक कल्पना।" (मानसी)

और दिनकर ने "अंतर्वासिनी" को निज "सगुण कल्पना" कहा है।[1] कवि द्वितीय की सृष्टि इसलिए करता है कि यदि वह अकेला होगा तो कौन उसके गीत सुनेगा, कौन निःशब्द रूप से स्मित के द्वारा उसमें प्राणों का संचार करेगा।[2] एकाकी मनु ने इसी भाव को व्यक्त किया था :

---

[1] दिनकर—रसवंती : अंतर्वासिनी, पृ० ६८

[2] कथा छिलो एक तरीते केवल तुमि आमि,
जाब अकारणे भेसे केवल भेसे,
त्रिभुवन जानबे ना केउ आमरा तीर्थगामी.



"मुक्त करो नारी को मानव।
चिर वंदिनी नारी को,
युग-युग की बर्बरता से,
जननी सखी, प्यारी को।"[1]

आधुनिक हिन्दी-कवि ने अँग्रेज़ी-साहित्य से भी उल्लेखनीय प्रेरणा ग्रहण की। विश्वविद्यालयों की स्थापना तथा उनमें साहित्य के विशिष्ट अध्ययन, जिस पर गत वर्षों में बहुत अधिक बल दिया जाता रहा है, ने उस नवयुवक वर्ग की वृद्धि की, जो अँग्रेज़ी-काव्य, विशेष रूप से १९ वीं शताब्दी के रोमांटिक काव्य से अत्यधिक प्रभावान्वित था। २० वीं शताब्दी के उदयकाल में समस्त बँगला-साहित्य पश्चिमी प्रभाव को लेकर अपनी रूप-रचना कर रहा था। रवीन्द्रनाथ टाकुर शैली, कीट्स, स्विनबर्न आदि कवियों की भाव-प्रणाली को अपने बँगला गीतों में ढाल रहे थे। साथ ही शिक्षा में प्रचुर समय तक पिछड़ी रहनेवाली मुस्लिम जाति भी साहित्य के क्षेत्र में अब शान्ति से आगे कदम बढ़ा रही थी, और हाली, आज़ाद, अकबर, नज़र, इकबाल-आदि ने उर्दू-काव्य में, प्राचीन को हेय की नज़र से न देखते हुए भी, पश्चिमी काव्य से गृहीत नवीन भावनाओं का समावेश किया। ऐसी अवस्था में जब कि समस्त देश पाश्चात्य शिक्षा में पल रहा था और आचार-व्यवहार के अतिरिक्त साहित्य में भी अँग्रेज़ी की नकल उतारी जा रही थी, तो हिन्दी-भाषी नवयुवक उससे अछूते रह जाते, यह असम्भव था। इस नकल का एक प्रयत्न तो अनुवादों के रूप में हो चुका था, और थोड़ा बहुत जारी था। 'सरस्वती' की प्रारम्भिक वर्षों की प्रतियों में, हम देखते हैं कि, प्रतिमास टायलर, बायरन, वर्ड्स्वर्थ आदि की कवितायें अनुवादित रूप में छपती थीं। यह आश्चर्य का विषय है कि जिस सत्ता का राजनैतिक क्षेत्र में हम विरोध कर रहे थे, साहित्यिक-क्षेत्र में उसी का अनुकरण कर रहे थे, किन्तु ऐसी परिस्थितियों में अस्वाभाविक नहीं। कवि जब अपनी साहित्यिक परम्पराओं के प्रति विद्रोही हो उठे थे तो स्वाभाविक था कि अपनी समीपवर्ती वस्तु का सहारा लेते।

हिन्दी के आधुनिक कवि सबसे अधिक प्रभावित हुए अँग्रेज़ी काव्यगत स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) की प्रवृत्ति से। इंगलैंड में इस प्रवृत्ति का जन्म १८ वीं शताब्दी के काव्य की रूढ़िवादिता, इतिवृत्तात्मकता, भावशून्यता, सीमित कल्पना तथा संकुचित सौंदर्यानुभूति के प्रति विद्रोह लेकर हुआ था। १८ वीं शताब्दी का अँग्रेज़ी काव्य समाज के धनिक वर्ग—क्लब, फैशन, दरबार, सभाओं-आदि पर केन्द्रित था और प्रकृति तथा प्राचीन-कालीन जीवन की उपेक्षा करता था। रोमांटिक कवियों ने इस परम्परा को तोड़ा। रोमांटिक कवि का सिद्धान्त है प्रगति, स्वतन्त्रता, मौलिकता तथा भविष्य-उपासना। रोमांटिक प्रवृत्ति का मूलाधार है कौतूहल तथा सौन्दर्य-प्रेम। सौंदर्य को रोमांटिक कवि आश्चर्य की दृष्टि से देखता है तथा कल्पना की तीव्रता से प्राचीन वस्तुओं में सौंदर्य खोजता है। उसमें एक रहस्य की भावना भी रहती है। इस भावना से प्रेरित कवि संसार की सामाजिक वस्तुओं से अधिक प्रकृति की ओर आकर्षित है। रूढ़िवादी कविता के विपरीत रोमांटिक काव्य आत्माभि-

[1] सुमित्रानंदन पंत-युगवाणी : नारी, पृ. ४८

व्यंजक है । यह भावों को प्रभावित करने में अपनी विशेषता रखता है। निराशावाद तथा साथ ही आदर्श संसार की कल्पना रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। रोमांटिक कवियों ने अपनी आदर्श-कल्पना में प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है।

अँग्रेज़ी रोमांटिक काव्य की उल्लिखित विशेषताओं ने आधुनिक कवि को अत्यधिक आकर्षित किया। उसके प्रभाव के फलस्वरूप कवि ने चली आती हुई काव्यगत रूढ़ियों, निश्चित नियमों, सीमित विचारों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। सौंदर्य से वह आकर्षित हुआ, आलंबन या उद्दीपन की रेखाओं को लेकर नहीं, वरन् व्यक्तिगत सहज अनुभूति को लेकर। उसकी अनुभूति में निश्चित वर्णन-प्रणाली के स्थान पर आश्चर्य और कौतूहल मिश्रित प्रेम का उदय हुआ। राजाओं, नायिकाओं और नायकों को छोड़कर वह प्रकृति के अद्भुत विस्तार तथा सामाजिक व्यक्तियों की स्वाभाविक परिस्थितियों से आकर्षित होने लगा। अपनी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह दुःखवादी तो अवश्य बना, किन्तु रचनात्मक आदर्शवाद (Utopian Idealism) भी उसकी विशेषता रही। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव तो था काव्य में व्यक्तिवाद तथा आत्माभिव्यंजना का प्रारम्भ। १६१४-१८ के महायुद्ध-काल में जब अंतर्भावना कविता का माध्यम बन गई, तो कवि ने अपने दुख-सुख का अवलंब मानसी में पाया। जिस प्रकार उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ने एकाकी न रमते हुए अपने को द्विलिंगी अंशों में विभक्त किया था, उसी प्रकार कवि भी अपने भाव-जगत् की यात्रा एकाकी करने में असमर्थ रहता हुआ एक अन्य सहचर की सृष्टि करता है। यह अन्य निज मानस प्रतिभा ही होती है; क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति काम-प्रेरणा के फलस्वरूप शैशव में ही अपने से प्रतिकूल लिंग के व्यक्ति का रूप-निर्माण अंतःकरण में कर लेता है। इस मूर्ति-कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति कलाकार में ही होती है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा:

"शुधु विधातार सृष्टि नह तुमि, नारी।
पुरुष गडिछे तोरे सौंदर्य संचारि।
आपन अन्तर हते।...... ..
पडेछे तोमार परे प्रदीप्त वासना
अर्धेक मानवी तुमि अर्धेक कल्पना।" (मानसी)

और दिनकर ने "अंतर्वासिनी" को निज "सगुण कल्पना" कहा है।[1] कवि द्वितीय की सृष्टि इसलिए करता है कि यदि वह अकेला होगा तो कौन उसके गीत सुनेगा, कौन निःशब्द रूप से स्मित के द्वारा उसमें प्राणों का संचार करेगा।[2] एकाकी मनु ने इसी भाव को व्यक्त किया था :

---

[1] दिनकर—रसवंती : अंतर्वासिनी, पृ० ६८

[2] कथा छिलो एक तरीते केवल तुमि आमि,
जाव अकारणे भेसे केवल भेसे,
त्रिभुवन जानवे ना केउ आमरा तीर्थगामी,

व्यंजक है । यह भावों को प्रभावित करने में अपनी विशेषता रखता है। निराशावाद तथा साथ ही आदर्श संसार की कल्पना रोमांटिक काव्य की प्रमुख विशेषतायें हैं। रोमांटिक कवियों ने अपनी आदर्श-कल्पना में प्रेम को अधिक महत्त्व दिया है।

अँग्रेज़ी रोमांटिक काव्य की उल्लिखित विशेषताओं ने आधुनिक कवि को अत्यधिक आकर्षित किया। उसके प्रभाव के फलस्वरूप कवि ने चली आती हुई काव्यगत रूढ़ियों, निश्चित नियमों, सीमित विचारों को छोड़ना प्रारम्भ कर दिया। सौंदर्य से वह आकर्षित हुआ, आलंबन या उद्दीपन की रेखाओं को लेकर नहीं, वरन् व्यक्तिगत सहज अनुभूति को लेकर। उसकी अनुभूति में निश्चित वर्णन-प्रणाली के स्थान पर आश्चर्य और कौतूहल मिश्रित प्रेम का उदय हुआ। राजाओं, नायिकाओं और नायकों को छोड़कर वह प्रकृति के अद्भुत विस्तार तथा सामाजिक व्यक्तियों की स्वाभाविक परिस्थितियों से आकर्षित होने लगा। अपनी सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियों के कारण वह दुःखवादी तो अवश्य बना, किन्तु रचनात्मक आदर्शवाद (Utopian Idealism) भी उसकी विशेषता रही। और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रभाव तो था काव्य में व्यक्तिवाद तथा आत्माभिव्यंजना का प्रारम्भ। १९१४-१८ के महायुद्ध-काल में जब अंतर्भावना कविता का माध्यम बन गई, तो कवि ने अपने दुख-सुख का अवलंब मानसी में पाया। जिस प्रकार उपनिषदों के अनुसार ब्रह्म ने एकाकी न रमते हुए अपने को द्विलिंगी अंशों में विभक्त किया था, उसी प्रकार कवि भी अपने भाव-जगत् की यात्रा एकाकी करने में असमर्थ रहता हुआ एक अन्य सहचर की सृष्टि करता है। यह अन्य निज मानस प्रतिमा ही होती है; क्योंकि यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि प्रत्येक व्यक्ति काम-प्रेरणा के फलस्वरूप शैशव में ही अपने से प्रतिकूल लिंग के व्यक्ति का रूप-निर्माण अंतःकरण में कर लेता है। इस मूर्ति-कल्पना की कलात्मक अभिव्यक्ति की शक्ति कलाकार में ही होती है। इसीलिए रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लिखा:

"शुधु विधातार सृष्टि नह तुमि, नारी।
पुरुष गड़िछे तोरे सौंदर्य संचारि।
आपन अन्तर हते।...... ..
पड़ेछे तोमार परे प्रदीप्त वासना
अर्धेक मानवी तुमि अर्धेक कल्पना।" (मानसी)

और दिनकर ने "अंतर्वासिनी" को निज "सगुण कल्पना" कहा है।[1] कवि द्वितीय की सृष्टि इसलिए करता है कि यदि वह अकेला होगा तो कौन उसके गीत सुनेगा, कौन निःशब्द रूप से स्मित के द्वारा उसमें प्राणों का संचार करेगा।[2] एकाकी मनु ने इसी भाव को व्यक्त किया था :

---

[1] दिनकर—रसवंती : अंतर्वासिनी, पृ० ६८

[2] कथा छिलो एक तरीते केवल तुमि आमि,
आर अकारणे भेसे केवल भेसे,
त्रिभुवन जानबे ना केउ आमरा तीर्थगामी.

सब जग और सकेले ! कह दो
है मेरे जीवन भोलो
किसे सुनाऊँ कथा ? कहो मत,
अपनी निधि न व्यर्थ खोलो।'

कवि-कुमार ने 'रूपराशि' की भूमिका में इसी की पुष्टि की है। "रूपराशि में एक भावना और है, वह है अन्वेषण की। हृदय में किसी से मिलने की आकांक्षा रहती है। उस समय ऐसा मुझे मालूम होता है, जैसे मैं सौन्दर्य-धाम का पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु लता, कली, लहर, सन्ध्या, पवन, प्रकृति बनकर मेरी प्रेयसी हो रही है। इस भाव में आध्यात्मिक अंश अवश्य है, पर उससे पहले मेरी भावना की तृप्ति है।" अस्तु, आभ्यन्तरिक काव्य में कवि की तीव्र अनुभूति और आकर्षण का केन्द्र वह मानस प्रतिमा हो जाती है, जो सहचर की भाँति उसके एकाकीपन को दूर करती है। भावना में वह चाहे लौकिक अथवा अलौकिक हो, उसका आधार सदैव लौकिक होता है, अर्थात् वह संसार में पाये जानेवाले दो लिंगों—पुरुष और नारी—की सीमाओं के अन्दर रहता है, क्योंकि मनुष्य इनके अतिरिक्त लिंगों की कल्पना करने में असमर्थ है। फल यह होता है कि कवि अपनी अनिन्द्य प्रतिमा को 'प्रियतम' या 'प्रेयसी' के रूप में देखता है। जब हमारे अधिकांश कवि पुरुष हैं, तो काव्य-जगत् में प्रेयसी का आधिपत्य होना स्वाभाविक है। श्री शचीन्द्र सेन के शब्दों से इसकी पुष्टि होती है : Man's imagination Finds the greatest delight in woman; there is no shame in it. Woman is the picture not of the photographer but of an artist."[2] फलतः आधुनिक हिन्दी-काव्य, विशेषतया छायावादी, में हम जीवन के दुख-दैन्य और अतृप्ति को भुला देना चाहनेवाले कवि को प्रेयसी की मधुर कल्पना में निरत पाते हैं, और उन्हें निज अनुभूति की अभिव्यक्ति उसी के अवलंब से करते हुए देखते हैं।

अंग्रेजी-साहित्य के अध्ययन का एक फल और हुआ। द्विवेदी-युग में रीति-काल की प्रतिक्रिया-स्वरूप शृंगार के प्रति संकोच और भय की जो भावना उत्पन्न हो गई थी, वह प्रेम के मुक्त चित्रों को देखकर दूर हो गई।

कोथाय तेनेछि मोरे देवी गो कोन देशे
कहे आमा रे मधुर हासिया हेसे,
ओलाव पाल एखनो केमन जाने,
ईंगिते मतन भाषा बोधन हारा,
अनन्त सेइ रागिणी शुनवे नीरव हेसे !"
रवीन्द्रनाथ ठाकुर—सोनारतरी, निरुद्देश यात्रा

[1] जयशंकरप्रसाद-कामायनी: चिन्ता पृ० ३६

[2] शचीन्द्र सेन—पोलिटिकल फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ

३—भक्ति-युग और रीति-युग की नारी भावना के प्रति विद्रोह— पश्चिमी विचार-धारा के प्रभाव और शिक्षा के प्रसार ने संसार और जीवन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण में प्रचुर परिवर्तन कर दिया, और वैज्ञानिक आविष्कारों ने धार्मिक अंध-विश्वासों पर गहरी चोट की। आधुनिक युग संन्यास का नहीं रहा है।[1] स्वर्ग और मुक्ति की कल्पना भी मनुष्य को मोहित करने में अधिक सफल नहीं होती।[2] माया के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है,[3] और संसार के प्रति वैराग्य के स्थान पर आकर्षण दृष्टिगोचर होता है। कवि सुख, सुगंधि और रूप से भरे जीवन को सुन्दर मानता है।[4] प्रसाद के सम्बन्ध में किसी विद्वान् का कथन 'प्रसाद' "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" वाले सिद्धान्त को नहीं मानते। उनकी दृष्टि में "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" है। शैवागमों के अनुसार वे "शरीरं त्वं शंभोः" के अनुयायी हैं। ईशोपनिषद् के "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः" के अनुसार वे जगत् को ईश का प्रसाद समझकर सप्रेम भोग करना उचित समझते थे। उनकी दृष्टि में जीवन की सार्थकता माया अथवा

---

१ "तप नहीं केवल जीवन सत्य" कामायनी : श्रद्धा पृ० ४८)

२ (क) अगर जग से मानव घबराय
कहाँ पर वह बेचारा जाय,
धरा में धँसने से असमर्थ
गगन पर चढ़ने को निरुपाय
प्रार्थना का यदि अवलम्ब
कहाँ है देवों का आवास ? (बच्चन — हलाहल, ५१)

(ख) देखिए, अंचल— किरण-वेला : जब मनुज मानव बने, पृ० २२, २३.

(ग) आओ प्रिय ! भव में भाव विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि तरें न तरें हम !
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार-हेतु शत बार सहर्ष मरें हम।
सुम, सुनो क्षेम से, प्रेम गीत मैं गाऊँ।
कह मुक्ति ! भला किस लिए तुझे मैं पाऊँ।
(मैथिलीशरण गुप्त — यशोधरा, पृ० १५०)

३ निराला—परिमलः माया पृ० ७४; मैथिलीशरण गुप्त—साकेत पृ० २०२.

४ "जीवन सुन्दर है, मधुर है, जैसे चाँदनी की हँसी, फूल की सुगंधि, पक्षी का कलरव, नदी की लहर, जो सदैव आगे बढ़ना जानती है, फैलती है, तो जैसे पलक खुल रही है और वह पल भर में संसार का तट छू लेती है। मेरे विचार से जीवन की परिभाषा इससे अधिक क्या हो सकती है। उसमें सुख है, सुगंधि है, रूप है और है ऐसी प्रगतिशीलता, जो अपने से निकलकर सारे संसार को छू लेती है।"
(रामकुमार वर्मा - 'जीवन मेरी दृष्टि में', वीणा, दिसम्बर, १९४२)

न प्रसन्न जगत् के त्याग में नहीं, प्रत्युत उसके आलिंगन करने में है। भावना में यह सभी कवियों के स्वर में स्वर [illegible] हैं। पन्त के [illegible] शब्द उसके [illegible] हैं

'छोड़कर स्वर्ग इस भू पर,
देखना नहीं मानव जीवन,
अविराम प्रेम की बाहों में
है मुक्ति यहीं जीवन बन्धन।' ज्योत्स्ना पृ. [illegible]

देश-भक्ति की भावना ने इस प्रकार की भावना के विकास में सहायता की। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने 'पथिक' नामक काव्य में इसी भाव का प्रतिपादन किया है।[1] वैराग्य-भावना के बदले कवि "[illegible]" के सिद्धान्त को भी नहीं मानता, और प्रेम को संसार का मूल भूत मान कर उसका स्वागत करता है।[3])

इन भावनाओं के [illegible] प्रेम के मूल आलम्बन, जीवन के केन्द्र, नारी में विरक्ति हो, यह असम्भव है। [illegible] भावना के विपरीत हम सुनते हैं

[2](क) परन्तु जीवन [illegible] जग मूढ़।
ता मोंचो ममता को कहत अमोंचो मूढ़॥
(वियोगीहरि—वीरसतसई : पृ० ६३' ७५.)

(ख) जग है असार सुनता हूँ
मुझको सुख-सार दिखाता।
मेरी आँखों के आगे
सुख का सागर लहराता।
(सुभद्राकुमारी चौहान—त्रिधारा: मेरा जीवन, पृ० ५३.)

(ग) कौन कहता है जगत है दुःखमय
यह सरस संसार सुख का सिन्धु है।
(जयशंकर प्रसाद—झरना, मिलन, पृ० ३५.)

(घ) मुझसे न स्वर्ग की बात करो
प्रिय लगता है संसार मुझे

× × ×

मुझको न मुक्ति की चाह हो,
भव बन्धन अंगीकर मुझे।
(गिरिजाशंकर 'गिरीश'. -सदांध: स्वर्ग और संसार पृ० १०२-३)

[1]दूसरा सर्ग, पृ० २२-३०, २०-५४.

३क. " प्रेम ! वसुधा का भूषण भव्य,
अलौकिक, अनिर्मल सुख, शांति।

"तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगास्नान'
तुम्हारी वाणी में कल्याणि !
त्रिवेणी की लहरों का गान ![1]

आधुनिक सौंदर्योपासक कवि की दृष्टि में नारी-रूप गर्ह्य नहीं है। इसके विपरीत नारी की छवि को वह संसार के सौन्दर्य और सुख का मूल कारण मानता है।[2] उसके अनिवार्य आकर्षण से वह घृणा नहीं करता, वरन् आकर्षण को नारी की शक्ति के रूप में देखता है और समीप पहुँचने पर जो मिलता है, वह मादकता की तृप्ति है, पतन नहीं; कल्याण है।[3] इसलिए कवि नारी को भूतल की स्वर्गीय किरण के रूप में देखता है, जिससे यह निस्सार जीवन सरस है।[4] आधुनिक कवि नारी को निर्वाण, या चिरंतन आनन्द-

---

तमोमय मानस के आलोक,
रुचिर प्रेमी नयनों की कांति !"

(बालकृष्ण राव—कौमुदी : प्रेम पृ० ८, ९)

ख." दुर्लभ रे वह अमरलोक की सरस सुधा की धार यहाँ,
लहराता लेकिन करुणा का गहरा पारावार यहाँ।
सही मोह भ्रम, मनोमोहनी माया का विस्तार यहाँ,
किन्तु इसी माया के नाम में इंद्रधनुष रे प्यार यहाँ।"

(गोपालसिंह नैपाली - नीलिमा : जीवन-संगीत, पृ० २९.)

१ पंत—पल्लव : आँसू, पृ० ६५.
हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ४, ३.
देखिए : पंत—पल्लव पृ० ५४, नारी-रूप पृ० १८.

२ तुमने इस सूने पतझड़ में
भर दी हरियाली कितनी
मैंने समझा मादकता है
तृप्ति बन गई वह इतनी।

(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : दर्शन पृ० १७१.)

३ पारस मणि ! तुमसे छूते ही सोना बन गया लौह जीवन !

४ पियूष मोहिनी के घट से
सहसा थोड़ा सा छलक पड़ा
वह मर्त्यलोक में गिरा, स्वर्ग
रह गया देखता खड़ा खड़ा,
हो गया सुधा का विधिवश से 'नारी' स्वरूप में परिवर्तन,
तुम भूतल की स्वर्गीय किरण।

(मोहनलाल महतो 'वियोगी'— नारी, विश्वमित्र, [illegible], १९४३.)

मार्ग की बाधा नहीं वरन् साधिका के रूप में देखता है।[१] डोर लिए बैठी हुई डाकिनी से रूप में नहीं, वरन् पथप्रदर्शिका के रूप में देखा है। अस्थिर सुख और दुख-मय क्षणिक जीवन में जन्म-मरण के तीर पर खेलते हुए जीवन-संगिनी में ही कवि पीड़ा की भावना दूर करने की सामर्थ्य देखता है।[२] आधुनिक कवि "अवगुन आठ सदा उर रहहीं" कहने के स्थान पर नारी को सद्गुणों की खानि के रूप में देखा है[३] और उसने उसके हृदय की विभूतियों का विविध प्रकार से गान किया है। उसकी दुर्बलताओं से भी कवि को सहानुभूति ही है।[४] वास्तव में मानवीय दुर्बलताओं के प्रति आधुनिक कवि सहनशील भी है। इसीलिये कवि कैकेयी-आदि की वैसी भर्त्सना नहीं करता और इनके चरित्र को देख व्यापक निष्कर्ष नहीं निकालता जैसा कि तुलसी-आदि भक्त कवियों ने किया था।[५] नारी के असत् रूप को तो आधुनिक कवि क्षणिक विकृति-मात्र के रूप में देखता है। नारी के प्रति यह उदार सहनशील, सहानुभूतिमय, पूजात्मक दृष्टिकोण स्पष्टतः भक्ति-कालीन घृणात्मक भावना की प्रतिक्रिया है।

इस प्रकार जब आधुनिक कवियों ने वैराग्य-प्रसूत भावना का परित्याग किया, तो रीतिकालीन अति काम-प्रसूत भावना को भी न सह सके। आधुनिक काव्य मूलतः रीतिकालीन अतिशृंगारिकता के प्रति विद्रोह है।[५] कवि वास्तव में सत्य और शिव को भूलकर प्राचीन कवियों की एकमात्र सौंदर्य की उपासना,[६] वासना-

---

१. देखिए-यशोधरा, कामायनी-आदि ग्रंथ

२. खेल रहे हैं हम तुम दोनों जन्म मरण के तीर।

दोनों जग के बीच खिंची है लम्बी एक लकीर।

बहुत पुरानी इस लकीर को
आओ आज मिटा दो ना।

जन्म ज्योति से मृत्यु-तिमिर की
सीमा दूर हटा दो ना।

(नेपाली—नीलिमा : अनुरोध, पृ.५,६.)

३ तुम्हारे गुण हैं मेरे गान
मृदुल दुर्बलता, ध्यान, (पंत—पल्लव: नारी-रूप, पृ.२१)

४साकेत; भरत-भक्ति।

५"व्रजभाषा के कुछ कवियों ने अवश्य ही नारी-रूप-वर्णन में अपनी कलम और सारा जोर लगा दिया है, लेकिन उन्होंने रस में इतना विष घोल दिया है कि उस विषय का साहित्य ही विकृत हो गया। प्रेमी-जदूगरनी: प्राक्कथन),

६ "न सुंदर पर हो भूल अजान
सत्य शिव का तो कर ध्यान" (नगेन्द्र-वनबाला, पृ. ३)

-लिप्तता[1] और भारत की दुरवस्था में भी परम्परा-उपासक कवियों के रति-राग[2] से क्षुब्ध हैं वियोगी हरि ने बिहारी के शृंगारिक दोहों के ऊपर व्यंग पूर्ण दोहों की रचना की है।[3] वास्तव में जागृति, प्रगति और क्रांति के इस युग में कवि उस 'कामिनी' को देश के पतन का कारण समझता है जो पुरुष को पौरुषी कृत्य करने का अवकाश नहीं देती,[4] और उस कोमलांगी से आकर्षित नहीं है जो वियोगाग्नि से तप्त श्वासों से जलती है; जिसके ताप के कारण सखियाँ जाड़े की रात में भी गीले वस्त्र पहन कर उसके समीप जाती हैं, जिसके ताप से माघ में भी लुएं चलती हैं और जिसके कोमल अंग को गुलाब की पँखड़ी खरोंच देती है।[5] रीतिकाल में नारी केवल अभिसारिका; वासक-सज्जा, परकीया आदि की रूपरेखाओं में बंधी रही और केलि-गृह की देहली के अंदर योनि-मात्र रह गई। उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया। इससे आधुनिक कवि अत्यंत पीड़ित है।[6] वह 'काम-कारा की बंदिनी' के रूप में नारी को नहीं देख सकता। पुरुष के ऐन्द्रिक जीवन के अतिरिक्त उसके मानसिक जीवन में नारी का क्या मूल्य है, नारी का निजी व्यक्तित्व क्या है सृष्टि के लिए नारी का क्या महत्व है, राष्ट्र की

---

[1] मधुर यौवन स्वप्नों में भूल
और फंस वैभव के छवि जाल
वासना आसव का कर पान
मनुजता हुई बहुत बेहाल
अचिर अंतर्हित हों सब क्लेश
लिखो कवि ! अमर स्वर्ग संदेश
(दिनकर—रेणुका : कवि, पृ.५२.)

[2] वियोगी हरि —वीरसतसई : कविपतन, पृ.७९-८१.

[3] वही, पृ.८०, ८२.
वही, वीरता और सुकुमारता, पृ.७६, ५९.
वही, पराधीन और स्वाधीन, पृ.४८, ९९.

[4] देश रसातल जाय किन, इत निज नील वसंत !
इन कवीन की कामिनी रही लाय उर कंत।
(वीर-सतसई-७ शतक, पृ १००, २२.)

[5] जात भलें जरि, जरनि जो उरध उसांसनि देह।
चिरजीवौ नतु, रमतु जो मलय अनलु कै गेह॥
होउ गलित वह अच, गेहि लागत कुसुम खरोट।
चिरजीवौ नतु, सहतु जो पुलकि-पुलकि पवि चोट॥
वही ५ शतक : वीरता और सुकुमारता, पृ.७६, ७५.

[6] योनिमात्र रह गई मानवी
निज आत्मा कर अर्पण।
(सुमित्रानंदन पंत—युगवाणी, 'नारी' पृ० ५८)

उन्नति में नारी क्या कर सकती है, यह भी आज का कवि देखना चाहता है। इसलिए आधुनिक काव्य में हम उस सहधर्मिणी को देखते हैं जो जीवन के सभी कार्य-क्षेत्रों में सहयोग, प्रेरणा और अवलंब देती है। आधुनिक कवि नारी-जीवन का प्रथम सत्य प्रेम मानता है, किन्तु वासना नहीं :

'गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल,
वासना की मुक्ति-मुक्ता
त्याग में नारी।''[1]

इसके अतिरिक्त जिस मातृरूप की एकान्त उपेक्षा रीतिकालीन कवियों ने की थी, उसकी कल्पना आधुनिक कवि की भावना का महत्त्वपूर्ण लक्ष्य है। रत्यनुरागिणी होकर भी जो मातृत्व को नहीं प्राप्त हुई, ऐसी नारी की कल्पना करके रीतिकालीन कवियों ने नारी के प्रति तो अन्याय किया ही, साथ ही सृष्टि के मूलभूत नियमों को भुला दिया। किन्तु आधुनिक कवि की नायिका कहती है :

'वधू सदा में अपने वर की
पर क्या पूर्ति वासना भर की,
सावधान निज कुलधर की
जननि मुझको जानो।''[2]

आधुनिक कवि काम-वासना का आदर करता है, इसी दृष्टिकोण से कि वह सृष्टि का मूल है।[3] फलतः जिस प्रकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सती के उन्नत स्तनों में स्वर्ग और देवशिशु मानवेर मातृभूमि'' पाई थी, उसी प्रकार हमारा कवि अपावन वासना का त्याग कर कहता है :

''मिला लालिमा में लज्जा की
छिपा एक निर्मल, संसार
नयनों में निस्सीम व्योम औं
उरोरुहों में सुरसरि धार।[4]

नारी के इसी रूप के सम्मुख तो विधि, जो उसका स्रष्टा है; भी नत हो जाता है, और :

---

[1] सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला गीतिका, गीत २, पृ० २.

[2] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा पृ० १६१.

[3] स्वाभाविक है काम-वासना भी हम सबकी
और नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जाती कबकी।
(मैथिलीशरण गुप्त—सैरंध्री पृ० २७).

[4] पंत-पल्लव। अनंग, पृ० ३९।

देखिए—मैथिलीशरण गुप्त—शक्ति पृ० १८, साकेत, पृ० २०१।

"तेरे उर का अमृत पान कर
अपनी प्यास बुझाता है।
तू अनन्त बन जाती है, माँ
वह बालक बन जाता है।"[1]

आधुनिक कवि की सौंदर्य-भावना भी बहुत कुछ परिवर्तित हो गई है। सौंदर्य को चेतना का उज्ज्वल वरदान मानते हुए[2] कवि बाह्य सौंदर्य के स्थान पर भाव-सौंदर्य की ओर अधिक झुक गया है और अवयव के सौंदर्य में भी उसने कल्याणकर प्रभावों को पाया है।[3] नारी-रूप के क्षणमात्र के दर्शन से कवि ने नश्वर और असुन्दर जगत को मंगलमय होते देखा है :—

"एक निमिष को यदि, सुन्दरि,
तू राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत् को
अजर-अमर कर जाती है
जब तू देती दर्शन दान।[4]

आधुनिक कवि सौंदर्योपासक है, प्रवृत्तिपरक है, किन्तु उसके सौंदर्य-प्रेम और कला बुद्धि में रीतिकालीन कवियों की तद्वस्तु से बहुत अन्तर है। रीतिकालीन कवि शरीरी, स्थूल सौन्दर्य से प्रेम करते थे, जो वास्तविक सौंदर्य-प्रेम नहीं कहा जा सकता, और

---

[1]हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६१, १।

[2]उज्ज्वल वरदान चेतना का,
सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं। (प्रसाद)

[3](क) सुन्दरता की सरिता, तेरे
सरस स्नेह में जगस्नात,
पाप ताप अभिशाप शान्त कर
हो जाता मंगल अम्लान।" (प्रेमी-जादूगरनी, ४, ३।)

(ख) अरुणाचल मन मन्दिर की वह
मुग्ध माधुरी नव प्रतिमा,
लगी सिखाने स्नेहमयी सी
सुन्दरता की मृदु महिमा।
उस दिन तो हम जान सके थे,
सुन्दर किसको हैं कहते।
तब पहिचान सके किसके हित
प्राणी यह दुख सुख सहते।
(जयशंकरप्रसाद—कामायनी, निर्वेद पृ० १६६)

[4]प्रेमी-जादूगरनी, २०, ४।

चमत्कारवादी थे। किन्तु आज का कवि कहता है "मैं जीवन में रूप के आकर्षण को कम नहीं समझता। उससे जीवन में जागृति आती है। प्रकृति में जो कुछ भी आकर्षण है, उसकी ओर आँखें उठ जाना स्वाभाविक है। लेकिन आवश्यकता इस बात की है कि रूप का मिशन और आदर्श केवल इन्द्रियों के बाहरी धरातल तक ही न रहे, वरन इन्द्रियों को पार कर वह आत्मा का तार हिला दे।"[१] इसीलिए आधुनिक कवि की नायिका कल्पना तन की छटा तक सीमित न रहकर भावों का स्पर्श करती है।[२] साथ ही कवि ने नखशिख-वर्णन-प्रणाली में भी भेद कर दिया है,[३] और बरौनी, कटाक्ष, लोचन और अधर की परिभाषाएँ बदल कर वह कहता है :

बरछी बरौनियों से वेधती विमूढ़ बल,
कुटिलों को काटती कटाक्ष की कटारी से
लम्पटों की लालसा लचाती लाल लोचनों से,
अन्त अधमों का करती है ओज आरी से।
देख देह दीप्त दंभियों का दर्प दूर होता,
पातकी परास्त होते पति प्रेम प्यारी से,
तरणि सा तेज नचता है तरुणी का
तब वैरी कौन बचता है वीर नारी से।[४]

आधुनिक कवियों के द्वारा रीतिकालीन नारी-भावना त्याग करने का कारण पश्चिमी संसर्ग और मानवतावादी बुद्धि तो थी ही, साथ ही देश की आर्थिक परिस्थिति भी थी। जब सौन्दर्य का आदर्श निश्चित करना उच्च वर्ग के हाथ में रहता तो, स्थूल सौंदर्य ही प्रधान हो जाता है, उसके अंतर्गत शिव और सत्य का स्थान हीन हो जाता है। तब आदर्श होता है कलामात्र का, कला केवल सौंदर्य के लिए। इसका एकमात्र कारण है संपत्तिमत्तता। संपत्ति और भौतिक सुखावेश के काल में मनुष्य एक नशे में रहता है, इसलिए सुंदर के साथ शिव और सत्य का ध्यान उसे नहीं रहता। रीतिकाल के काव्य की सौंदर्य-भावना भी इन्हीं सीमाओं में बँधी है। उन कवियों ने नारी के सौंदर्य-मात्र को

---

[१] रामकुमार वर्मा—जीवन मेरी दृष्टि में, वीणा, दिसम्बर, १९४२।

[२] सुकल्पना सी तन की छटा लिए,
सुबुद्धि में है प्रकटी सरस्वती।
विलासिनी है, अति मंद हासिनी,
क्षमा दया मय जननी वसुन्धरा।
अपूर्व है मोहक रूप की छटा,
नहीं कहीं है उसकी समानता।
(आनन्दकुमार—सारिका : "नायिका" पृ० ३८)

[३] हरिऔध-कल्पलता : "कुल-ललना" पृ० १११-११३

[४] रसिकेन्द्र—'सबलाएँ' चाँद नवम्बर १९३४

देखा सौंदर्य-मात्र की दृष्टि से। किन्तु आधुनिक भारत उतना धनी नहीं है, बल्कि दरिद्र है और साथ ही अधिक व्यस्त भी—रीतिकालीन व्यक्ति मानसिक दृष्टि से पीड़ित नहीं था। आज का भारतीय अत्यंत क्लिष्ट जीवन में है, मानसिक पीड़ा से ग्रस्त है। फलतः न, अवकाश और मानसिक शांति के अभाव में नारी-भावना विलासिता से प्रेरित नहीं सकती, सियारामशरण गुप्त की 'अमृत' नामक कविता से यह स्पष्ट है। कवि हता है—

ठहर अप्सरे ठहर किन्तु तू,
रहने दे भ्रू-भंग,
अमर-भूमि हित ही रहने दे
यह सब क्रीड़ा रंग।
अवसर कहाँ, निकट जो तेरे,
रहें अलस घर बैठ,
अमृत अभी लेना है हमको,
गहरे तल में पैठ।[1]

कवि सत्य और शिव के प्रति आँखे नहीं मींच सकता। नारी में वह शांतिप्रद शीतलता, जग-कल्याण की शक्ति खोजने को मजबूर है, यों तो सुख की खोज सामंत-युग के कवि और आधुनिक युग के कवि, दोनो की नारी-भावना की प्रमुख प्रेरणा है, किन्तु प्रथम की खोज उस धनिक को है, जो धन को बहाने का आनंद लेता है और अपने अहं के कारण नारी तक को सस्ता गिनता है। और द्वितीय, भारतके आर्थिक दारिद्रय में जन्म लेनेवाले कवि की सुखाकांक्षा थके-माँदे श्रमिक की सी है। इन्हीं कारणों से रीतिकालीन नारी-भावना वस्तुवादिनी (Concrete) है और आधुनिक विशेषता छायावादी काव्य की दार्शनिक (Metaphysical) और इसलिए वायवी और आदर्शवादी।

इस प्रकार आधुनिक कवि ने भक्तिकाल की घृणात्मक और रीतिकाल की ऐंद्रिक नारी-भावना का अंत करके एक उदार और पूजात्मक भावना की स्थापना की। किन्तु यह पूजात्मक भावना यूरोप की नाइट युग (१२००-१५००) में प्रसारित होनेवाली पूजात्मक भावना से बहुत भिन्न और उच्च कोटि की है। यूरोप में फ्यूडल भावना का अंततो अवश्य हुआ, परन्तु प्रेयसी(Lady) के प्रति नाइट के प्रेम को आवेशपूर्ण (passionate) ढंग से व्यक्त करते हुए कवि प्रेम के व्यापक स्वरूप नारी में विश्वप्रेम के भाव को न देख सके, एक नाइट के लिये वह सौंदर्य-प्रतिमा प्रेरणात्मक शक्ति होकर संपूर्ण विश्व और शाश्वत जीवन में अपना मूल्य स्थिर न कर पाई।

४. रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव :—जिस प्रकार हिन्दी-साहित्यगत नारी-भावना के परिवर्तन में प्राचीन संस्कृत-साहित्य तथा अंग्रेजी-साहित्य ने योग दिया, उसी प्रकार बंगाली कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी दिया। वास्तव में नारी-भावना को शुचिता, पाव-

---

[1] दूर्वादल, पृ० ६१-६२।

नता, अभौतिकता और दार्शनिकता प्रदान करने का अधिकांश श्रेय रवीन्द्रनाथ ठाकुर को ही है।)

यों तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर १९ वीं श० के उत्तरार्ध में ही उन भावनाओं का विकास अपनी रचनाओं में कर चुके थे, जिनका प्रारंभ हिन्दी-काव्य में २० वीं श० के १८-१९ वर्ष पश्चात् हुआ, किन्तु उनकी ख्याति का कारण 'गीतांजलि' (१९१०) हुई। उसके पश्चात् हमारे कवि बंगाल के इस महान् कवि की ओर आकृष्ट हुये।

रवीन्द्रनाथ ठाकुर का प्रभाव दो मार्गों से पड़ा :—१. उनके काव्य से, २. उनके नारी-संबंधी निबंधों से। रवीन्द्र के काव्य का बहुत सा अंश नारी, नारी सौंदर्य और नारी सृष्टि से संबंध रखता है। उनकी नारी भावना का मूलाधार है सांसारिक सुखोपभोग, किन्तु वह ऐन्द्रिक वासना से मुक्त है। यही उसकी विशेषता है। 'सांध्यगीत' से लेकर 'चैताली' तक की समस्त रचनाओं में तरुण कवि की सांसारिक सुखोपभोग की उत्कट आकांक्षा ध्वनित हुई है। कडि ओ कोमल' में तो गीतों का मध्यविन्दु ही प्रेयसी है। 'कडि ओ कोमल' से 'चैताली' तक की रचनाओं में यौवन के विचित्र स्वप्न। प्रेम, प्रकृति, नारी-सौंदर्य, रहस्य आदि सभी में कवि की कल्पना नृत्य करती है। नारी सौंदर्य कवि की दृष्टि में तुच्छ नहीं है। 'चैताली' की 'प्रिया' नामक कविता में कवि कहता है :

"ए नील आकाश एत लागितकि भालो,
जदि ना पड़ित मने तव मुख आलो।"

रवींद्र की दृष्टि में नारी रूप परम रमणीय है और साथ ही उपभोग्य। कवि ने यौवन की आकाँक्षाओं को दबाने का प्रयत्न नहीं किया है। 'स्तन' 'चुबंन 'विवसना' 'मानस सुन्दरी' आदि कविताओं से यह स्पष्ट है। किन्तु रवीन्द्र का महत्त्व इसी में है कि वाह्य दृष्टि से जो कवितायें नग्न विलासितापूर्ण लगती हैं, वह यौनाकर्षण की अपेक्षा भावाकर्षण से युक्त हैं। भावना मूलतः पवित्र है और कल्पना भौतिक न होकर सरल हृदय की सात्विक उड़ान है। भावना की गहराई और अनुभूति की तीव्रता ने रवीन्द्र की नारी भावना को दार्शनिक रंग प्रदान किया जो 'चित्रा" 'उर्वशी' 'दुइ नारी' 'मानसी' 'प्रेमेर अभिषेक' आदि कविताओं में स्पष्ट है।

आधुनिक कवियों पर रवीन्द्र के काव्य की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। निराला ने 'दुई नारी' के आधार पर अपना 'कला और नारी' नामक निवंध लिखा, 'चित्रा' का प्रभाव इलाचंद्र जोशी की 'विजनवती' पर देखा जाता है, रवीन्द्र की उर्वशी की रूप-रेखा को अनेक कवियों ने ग्रहण किया है। उदाहरणार्थ पंत उर्वशी' की इन पंक्तियों :

"द्विधाय जड़ित पदे, कम्प्रवक्षे, नम्र नेत्रपाते
स्मित हास्ये नाहि चल, सलाज्जीत वासर शय्याते स्तब्धराते"

से प्रेरणा ग्रहण करके 'भावी पत्नी के प्रति' लिखते हैं :—

"अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात
विकंपित उर मृदु पुलकित गात,

सशंकित ज्योत्सना सी चुप चाप
जड़ित पद नमित पलक दृग पात
पास जब आ न सकोगी प्राण''

छायावादी कवियों ने अपनी प्रिया-भावना तथा मातृ-भावना में बहुत-कुछ, रवीन्द्रनाथ के काव्य से पाया, फिर भी वे उस उच्चता और विशुद्धता को प्राप्त कर सके, यह संदिग्ध है।

रवीन्द्र नारी-समस्या के प्रति अत्यधिक आकृष्ट थे, इसका दूसरा प्रमाण उनके अनेक तत्संबंधी निबंध हैं। रवींद्र की नारी-भावना को व्यक्त करनेवाले निबंधों में उल्लेखनीय हैं: 'दि इंडियन आइडियल आव मैरिज' (कोसरलिंग कृत दि बुक आव मैरिज) 'वुमन' (रवीन्द्रनाथ ठाकुर-कृत परसनैलिटी), तथा 'नारी और मानव सभ्यता' (सरस्वती अगस्त १६४३) 'स्त्री-पुरुष'(विचित्र प्रबंध) आदि। इनमें हम प्रस्तुत भावनाओं का विकास देखते हैं। नारी विधाता की कलात्मक कृति है। वह पुरुष के असंयमित व्यवहारों को लय प्रदान करती है। उसकी सबसे बड़ी विभूति तथा शक्ति है प्रेम, जिससे वह पुरुष-स्वभाव के पाशविक तत्वों को नम्र करने में समर्थ होती है। जीवन के संचय और पोषण के लिए, व्रणों पर शीतल लेप के समान नारी का साहचर्य अनिवार्य है। उसे ईश्वर ने प्रत्येक पुरुष के साथ पुरुष की रक्षा के हेतु भेजा है। पुरुष अपूर्ण है, इस कारण वह कल्पित अज्ञात की खोज में लगा रहता है। इसके विपरीत प्रेममयी नारी पूर्ण है, पूर्ति के लिए उसे भटकना नहीं पड़ता। जीवन में उसका स्थान निश्चित है, उसे बनाना नहीं पड़ता। जैसे वृक्षों की शाखाओं में आप ही फल-फूल आदि लग जाते हैं, वैसे ही भारत की स्त्रियों को अपने आप ही काम मिल जाया करते हैं। जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करती हैं, तभी से उनका कर्तव्य शुरू हो जाता है। उसी समय उनका चित्त विकसित होता है। उनकी चिन्ता, विचार, युक्ति, कार्य आदि के प्रारंभ होने का वही समय है। और प्रेम के संबल को ले वह अनुकूल अथवा विपरीत परिस्थितियों में 'सामाजिक व्यवहार' बहुत बड़े परिवार-सहित अपनी गृहस्थी और पति नाम के एक न चल सकनेवाले बोझ को लेकर चलती है।" प्रेम नारी के समस्त बंधनों को खोल देता है और इसी लिए उसे अपनी परिस्थितियों से असंतोष नहीं होता। इसके अतिरिक्त मानवता की जो सबसे बड़ी शक्ति है, सृजन-सामर्थ्य, वह नारी में है। शिशु-रचना कर वह गृह का निर्माण करती है, जो महाकाव्यों और साम्राज्यों की रचना से किसी प्रकार हीन नहीं है, क्योंकि उसमें बुद्धि, चातुर्य, त्याग और संयम की आवश्यकता होती है।

रवीन्द्र नारी का कार्य-क्षेत्र, विकास-स्थान, गृह मानते हैं। यदि स्त्री और पुरुष का कर्मक्षेत्र एक ही हो जायगा तो संसार और जीवन आकर्षणहीन एकपन हो जायगा। आधुनिक युग में जो स्वतंत्रता और अधिकारों के लिए विद्रोह है, रवीन्द्र की दृष्टि में श्रेयस्कर नहीं है। उनके मत में समाज के निर्माण में नारी का कार्य एक कलाकार का है, शिल्पी का नहीं। इतना अवश्य है कि स्त्रियों का विद्रोह उनके प्रति दुर्व्यवहार और उत्पीड़न का सूचक है। रवीन्द्र नारी के दमन और पीड़न के घोर विरुद्ध हैं, क्योंकि एकमात्र पुरुष की कृति होकर कोई सभ्यता चिरकाल तक नहीं रह सकती, उनका पतन अनिवार्य है।

हृदय की विभूतियों से संपन्न नारी अपने उस गुण का विकास करती है, जिसे 'आकर्षण' (Charm) कहते हैं, जिसे भारत में शक्ति नाम दिया गया है। शरीर को लेकर वह पुरुष की महत्त्वाकांक्षाओं को प्रेरणा देती है। यदि नारी पुरुष के मस्तिष्क को प्रेरणा न दे तो पुरुष सभ्यता की उच्चतम कृतियों का कर्ता न हो सके। श्रमिक की तपस्या, वीर के शौर्य और कलाकार की कृति सबके पीछे नारी प्रेरणा मिलती है। किन्तु स्वार्थवश पुरुष ने नारी की इस आनंददायिनी शक्ति का उपयोग व्यक्तिगत सुख के लिए किया है और निजी संपत्ति के समान बनाकर उसे भ्रष्ट कर दिया है। इससे स्वयं नारी को अपनी शक्ति का अनुभव करने में कठिनाई होती है। नारी की स्वतंत्रता वहीं है, जहाँ अपनी शक्ति का पूर्ण विकास कर सके, और वह गृह का परित्याग करके नहीं प्राप्त सकती।

रवीन्द्र की उल्लिखित भावनाओं का पूर्ण विकास हम आधुनिक कवियों तथा छायावादी, में पाते हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि हमारे कवियों ने, से ही यह भावनायें ग्रहण कीं, किन्तु इतना निश्चित है कि ज्ञात अथवा अज्ञात इस बंगला-कवि से प्रभावित होते रहे हैं।

५. समाज-सुधार की लहर का प्रभाव : १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध सुधार में संलग्न विविध शक्तियों ने भारतीय स्त्री की दशा को सुधारने के लिए प्रयत्न किया था। २० वीं शताब्दी में भी वे प्रयत्न कम नहीं हुए, वरन अधिक शक्तिशाली हो गए। अब देशी राज्य भी इस क्षेत्र में अपना सहयोग देने लगे के शाप को दूर करने के लिए बड़ौदा के संस्कृत-बुद्धि महाराज सयाजी ने १९०१ में शिशु-विवाह-निषेध के लिए एक एक्ट पास किया, जिसके द्वा लघुतम वयस लड़कियों के लिए १२ वर्ष तथा लड़कों के लिए १६ वर्ष १९२८ में 'एज आव कंसेंट कमिटी' की बैठक विवाह-सुधार के प्रश्न पर वि शिमला में हुई। इसकी रिपोर्ट निकलने के पश्चात् रायसाहब हर बिला के फल-स्वरूप १९३० में शारदा-बिल पास हुआ, जिसके द्वारा लड़ और लड़कों की १८ निश्चित कर दी गई। इस एक्ट के विरुद्ध प्रचुर व्यावहारिक क्षेत्र में इसे अधिक सफलता मिली। विधवा-विवाह-उन्नति हुई। मैसूर के महारानी स्कूल, आर्य-समाज, पंजाब की प्यूरि Society) लखनऊ की हिन्दू विडोरिफार्म लीग (Hindu Widow ने विधवाओं के भाग्य को अच्छा करने के उल्लेखनीय प्रयत्न किए हैं हिन्दू-समाज में अभी तक भी लोकप्रिय न हो सका है।

प्राचीन काल से चली आती हुई देवदासी-प्रथा को दूर करन ही विशेषता है। इस ओर मिशनरियों तथा ब्रह्म समाज ने थोड़ा प्रय में बंबई-सरकार ने एक विधान बनाया, जिसके अनुसार मन्दिर के ताओं के लिए स्त्रियों के समर्पण में योग दें, कानूनी रीति से दंड के १९०९ में मैसूर-सरकार ने मंदिरों में नृत्य की प्रथा को बंद क

डा० मुथुलक्ष्मी रेड्डी आदि के भगीरथ प्रयत्न के फलस्वरूप, पीनल कोड के वह नियम, जो नाबालिग व्यवसाय को अपराध निश्चित् करते हैं, देवदासियों पर भी लागू किए गए।

स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष प्रयत्न इस शताब्दी में हुए। १६१६ में कार्वे ने पूना में विमेंस यूनिवर्सिटी की स्थापना की। स्त्रियों की आम शिक्षा-प्रचार के लिए महत्त्वपूर्ण प्रयत्न किए गए। प्रजातंत्रवादी विचारों के फैलने से व्यक्तियों की असमानता का भाव नष्ट हो रहा था। प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री-पुरुष की समानता का प्रतिपादन किया जाने लगा और स्त्रियों के शिक्षित होने की आवश्यकता तीव्र ढंग से अनुभव की गई। स्त्री-शिक्षा-प्रचार का फल स्कूल जानेवाली लड़कियों की संख्या में वृद्धि से स्पष्ट हो जाता है। जब कि १६१७ में स्कूली लड़कियों की संख्या १२३०००० थी, १६३७ में २८६०००० पर पहुँच गई।

२० वीं शताब्दी की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता तो यह है कि स्वयं स्त्रियाँ अपनी दशा सुधारने के लिए उत्साह के साथ अग्रसर हुईं। इस उत्साह का प्रथम फल विमेंस इंडियन एसोसिएशन थे, जो अनेक स्थानों पर स्थापित किए गए। मद्रास में १६१७ में इसकी स्थापना हुई। इसकी सभानेत्री मिसिज एनी बेसेंट थीं। और सबसे बड़ा फल अखिल भारतीय स्त्री-सभा (All India Womens Conference) थी जिसकी प्रथम बैठक अक्टूबर १६२६ में हुई, जिसकी प्रथम सभानेत्री बड़ौदा की महारानी चिमना बाई थीं।

इन देशव्यापी आंदोलनों की प्रतिध्वनि हमारे आधुनिक काव्य में मिलती है। राय देवीप्रसाद पूर्ण से हम सुनते हैं :

"नारी के सुधारे देश जग में प्रसिद्ध होत,
नारी के संवारे होत सिद्ध धन बल है।
शोभा गेह-गेह की है सीमा सुचि नेह की है,
दाता नर देह की है संपदा की थल है।
कैसे है ! भरतखंड हो गयो उबार तेरो,
दुखित अखंड आमें नारिन को दल हैं।
ह्वै कै गुन बालक अनख बन जानै यही,
नारी बस बालक बनावन की कल है।"

सुधार-आन्दोलन का प्रभाव ३ रूपों में काव्यगत नारी-भावना पर पड़ा।

१ अ--सामान्य भारतीय नारी की सामाजिक दुरवस्था, उसकी अशिक्षा, अंधकार-ग्रस्तता पर दृष्टिपात।

आ—नारी के उन विशिष्ट रूपों से सहानुभूति, जो समाज में पतित और घृणित समझे जाते हैं, किन्तु मूलतः पुरुष की कामवासना के फल हैं।

२—भारत की प्राचीन आदर्श नारियों को सामने रखकर अँधेरे में पड़ी नारी को निजी व्यक्तित्व और शक्तियों से परिचित कराने तथा क्षमता पर विश्वास दिलाने का प्रयत्न।

३—इन दोनों के फलस्वरूप नारी-स्वातंत्र्य की भावना का विकास। समाज-

सुधार की भावना ने 'मानवी' को जन्म दिया और मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास किया।

४—स्त्री-आंदोलन का प्रभाव—सुधारवादी आंदोलन नारी-समस्या सम्बन्धी वाह्य प्रयत्न थे, जिन्होंने स्त्री-आंदोलन के रूप में स्त्रियों के निजी प्रयत्न को प्रेरणा दी मूलतः स्त्री आंदोलन का प्रारम्भ पश्चिम में हुआ था। यों तो उसका सूत्रपात फ्रांस की राज्य-क्रांति के दिवसों में हो गया था, जब Lesdroits de la femme ने स्त्री-पुरुष की समानता के लिए आवाज़ उठाई थी, किन्तु विशेष शक्ति और व्यापकता इसने १६वीं शताब्दी में पाई. जब इंगलैंड में विलियम थांपसन ने 'एपीलि आव दि प्रिटेंशन्स आव दि वन हाफ आव दि ह्यूमेन रेस, विमन, अगेन्स्ट दि प्रिटेंशन्स आव दि अदर हाफ मैन Appeal of the Pretensions of the One Half of the HumanRace Women against the Pretensions of the other Half Men (१८२५) और जान स्टुअर्ट मिल ने 'दि सब्जैक्शन आव विमन, (१८६१) की रचना करके स्त्रियों के हक़ों की वकालत की। २०वीं शताब्दी के आरंभ में यह आन्दोलन विशेष रूप से सजग हो गया। १६१४ के महायुद्ध ने स्त्रियों के मूल्य को बढ़ा दिया। इंगलैंड और यू. एस. ए. की सरकारों ने युद्ध को जीतने के लिए स्त्रियों को वोटाधिकार देना अनिवार्य समझा। सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और आँख खोलनेवाला कदम सोवियट रूस का था जिसने १६१७ में सभी सामाजिक कार्य-क्षेत्रों में स्त्री-पुरुष की समानता प्रतिपादित की।

पश्चिम की इस लहर का प्रभाव अनिवार्य रूप से भारत पर भी पड़ा। किन्तु भारत का स्त्री-आंदोलन कई अंशों में पश्चिमी आंदोलन से भिन्न था। यह पुरुष-जाति के विरुद्ध हिंसात्मक विद्रोह न था। श्रीमती चट्टोपाध्याय के शब्दों में "यह एक नई स्थिति या नई प्रथा की स्थापना का नहीं, बल्कि किसी कदर अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को ही पुनः प्राप्त करने और अमल में लाने का प्रयत्न है। यद्यपि है यह एक भिन्न इच्छा और प्रयत्न के साथ, अर्थात् आधुनिक स्थितियों के अनुसार उसे बनाने का।......न तो प्रतिस्पर्धा के भाव से यह उठा है, न इसमें हिंसा का ही प्रयोग हुआ है।" साथ ही भारतीय नारी को पुरुष नेताओं का पूर्ण सहयोग मिला, जब कि इंगलैंड में अत्यन्त विरोध स्त्रियों को मिला था। नेताओं के सहयोग को पाकर सर्व प्रथम रमाबाई रानाडे, सरलादेवी चौधरानी, सरोजिनी नायडू, आदि ने राजनैतिक अधिकारों की माँग की। जब मिसिज ऐनी बेसेंट ने भारतीय राजनीति में पदार्पण किया और होम रूल आंदोलन उठाया (१६१४ तब भारतीय स्त्री-आंदोलन का संगठित रूप व्यक्त हुआ। १६१७ में लार्ड मांटेगु के पास मिसिज़ नायडू के नेतृत्व में एक डेपूटेशन गया, जिसमें स्त्रियों के लिए वोटाधिकार और (Local Government) तथा (Legislative Franchise Rules) समानाधिकार की गई। लीग तथा कांग्रेस ने इसमें पूर्ण सहयोग दिया। परिणामतः सुधारों के नियम इस ढंग से बनाए गए जिसमें पहले तो स्त्रियों को मताधिकार के अयोग्य रक्खा गया, किन्तु अंतिम निर्णय प्रांतीय सरकारों पर छोड़ दिया गया। भारत के विभिन्न प्रान्तों ने स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया। अग्रणी मद्रास था (१६२१) इसको देखते हुए श्रीमती मार्गेरेट ई० कजिन्स लिखती हैं

"Britishers were just ignorant about the regard which the Indian manhood holds the womanhood "नारी-आंदोलन की बिखरी हुई शक्तियों का समीकरण करने का प्रयत्न पूना की प्रथम अखिल भारतीय स्त्री-सभा (१९२७) में किया गया। तब से यह सभा निरन्तर नारी के अधिकारों आदि के निर्णय में प्रयत्नशील रही है।

नारी-आंदोलन में निहित समानता और स्वतंत्रता के दो प्रकार के प्रभाव हमारे आधुनिक काव्य पर हुए। एक स्वर तो उन कवियों का था, जो नारी को उत्थित और प्रसन्न देखना चाहते हुए भी स्वतंत्रता और समानता को उसका अभिशाप मानते हैं।[1] और दूसरा स्वर उन कवियों का था, जो नारी को अधिकार-युक्त, और मुक्त देखना चाहते हैं, जिसकी प्रतिध्वनि पंत करते हैं :

"योनि नहीं है रे यह भी है मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित।
द्वंद्व क्षुधित मानव-समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर-नारी के सहज सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित।"[2]

७. इंडियन नेशनल कांग्रेस और राष्ट्रीय आंदोलन का प्रभाव : १८८५ में इंडियन कांग्रेस की स्थापना हुई थी। भारतीय स्त्रियों की गिरी हुई दशा को सुधारना, राजनैतिक क्षेत्र में उन्हें अग्रसर करना, उनके समान अधिकारों के लिए आवाज़ उठाना कांग्रेस का प्रमुख ध्येय रहा, क्योंकि नेताओं ने अनुभव किया कि एक अर्द्धांग के अविकसित रहते-हुए दूसरा अर्द्धांग परिपुष्ट नहीं हो सकता। राष्ट्र की उन्नति स्त्री और पुरुष की सामूहिक उन्नति और दोनों के सम-प्रयत्न से ही संभव है। लाला लाजपतराय ने कहा था "स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है। क्योंकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है। चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत-कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है। ......उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते जो कि गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई हैं और प्रायः सभी बातों में पराश्रित हैं।......... इस लिए पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतः मुक्त होने दो, उन्हें अपने बराबर समझो।" इस ओर विशेष रूप से आकर्षित गांधी हुए। उन्होंने युगों की बन्दिनी को स्वातन्त्र्य का झोंका दिया। उन्होंने घोषणा की "स्त्री-पुरुष की सहगामिनी है। वह बुद्धि में पुरुष से तुच्छ नहीं है। उसे पुरुष के छोटे-छोटे कामों में भाग लेने का अधिकार है। उसे पुरुष की भांति स्वाधीनता और स्वतन्त्रता पाने का अधिकार

---

[1]देखिए—अयोध्यासिंह उपाध्याय, कल्पलता : मनोवेदना, पृ. ९६
शिवरत्न शुक्ल, भरत-भक्ति—११ सर्ग, पृ. २६५-२७८
छेदीलाल-"स्वतंत्रवनिता-विनाश"

[2]ग्राम्या—'नारी', पृ. ८५

[3]जवाहरलाल नेहरू - हिन्दुस्तान की समस्यायें, पृ. २११.

है।" फलस्वरूप कांग्रेस के राष्ट्रीय आंदोलन में भारतीय नारी कूद पड़ी। सविनय अवज्ञा-आंदोलन में भारतीय नारी ने सक्रिय भाग लिया और पुरुषों के साथ-साथ देश की स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया। १९३० के आंदोलन ने भारतीय नारी की परिस्थितियों में बहुत कुछ अंतर कर दिया। श्रीमती कृष्णा हठीसिंह इस सम्बन्ध में लिखती हैं : "यद्यपि अभी तक भारतीय राजनीति में स्त्रियों ने सक्रिय भाग नहीं लिया था, किन्तु अब एक आकस्मिक जागृति उनमें फैल गई। घरों की छाया को त्याग कर वे बिल्कुल आगे आ गईं और उन्होंने सहज रीति से आन्दोलन को अपना लिया, मानों वह कोई विचित्रता ही न थी। उस समय आन्दोलन, समस्त नेताओं के बन्दीगृह में होने के कारण ह्रास की ओर अग्रसर हो रहा था, किन्तु स्त्रियों ने आकर उसे सँभाल लिया। प्रतिदिन, नित्यप्रति बढ़नेवाली संख्याओं में स्त्रियाँ कांग्रेस की मेम्बर बन रही थीं। उन्होंने न केवल ब्रिटिश सरकार को, जो इस प्रकार के अप्रत्याशित साहस के लिए तैयार न थी, आश्चर्य में डाल दिया, वरन् भारतीय पुरुषवर्ग को भी आश्चर्यान्वित कर दिया।" (विमन इन इंडियन पोलिटिक्स)।

नारी के प्रति कांग्रेस के रुख और राष्ट्रीय आन्दोलन में नारी के भाग लेने का प्रभाव आधुनिक काव्य पर भी पड़ा। कवि ने नारी को 'सबला' के रूप में देखा और राष्ट्र के उद्धार के लिए उसे पुकारा। उसकी भावना का केन्द्र १५ कोटि असहयोगिनियाँ हो गईं और उसने नारी से कहा :

"आज नवयुग का तरुण त्योहार द्रोही पर्व आया,
क्या करेगी प्यार केवल प्यार मेरी क्षुब्ध काया।
आज जीवन औ मरण के बीच तुम अब सेतु बन कर,
दो मुझे तूफ़ान अगले झेलने का शौर्य जय कर।
रागिनी सी कामिनी तुम क्रांति के नव स्वर निकालो,
छोड़ कर जादूगरी संवर्ग के ये दिन सँभालो।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि लगभग एक ही दिशा में बहनेवाली युग की विविध प्रेरणाओं ने हिन्दी-काव्य की नारी-भावना को नए साँचे में ढाला। सभी ने समवेत रूप से परिवर्तन उपस्थित किया, किसी एक ने कब और कहाँ प्रभाव डाला, यह छाँट लेना कठिन है।

उल्लिखित प्रभावों का फल यह हुआ कि कवि आदर्शवाद का संबल लेकर सांस्कृतिक दृष्टिकोण लिये हुए जीर्ण-शीर्ण परंपरागत अवांछित भावना का परित्याग कर नवयुग का सन्देश लेकर आगे बढ़े। उनका दृष्टिकोण उदार और व्यापक हो गया। नारी कवि की दृष्टि में पोस्टमार्टम करने योग्य शरीरमात्र नहीं रह गई, वरन् सचेतन, गतिशील, भावमयी और व्यक्तित्वधारिणी होकर आई।

---

[1] अंचल—"लाल चूनर": नारी, पृ० ३८-९

अध्याय २

संक्रांति-युग (सन् १९००-१९२० ई०)

भूमिका में हम देख चुके हैं कि १६ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में समाज-सुधार की प्रेरणा से कुछ कवियों ने स्त्री-पुरुष की समानता की भावना का प्रतिपादन प्रारंभ किया था। सन् १६००-१६२० के काल में नारी-भावना नवीनता की ओर निश्चित गति से अग्रसर होती है। किन्तु इस युग में भी परिवर्त्तन एक दम और सर्वव्यापी नहीं होता है, मध्ययुगीय नारी-भावना की धारा भी कुछ काल तक प्रचुर शक्ति के साथ प्रवाहित रहती है। यह युग एक सेतु के समान है, जो नारी-भावना के प्राचीन और आधुनिक दो कूलों को जोड़ता है। इस युग का महत्त्व इसी विशेषता में निहित है।

भारतीय मस्तिष्क अपनी प्राचीन परंपराओं को छोड़ने में प्रायः अनुदार (conserva-tive) रहा है। यही कारण है कि २०वीं शताब्दी में भी जब कि देश में प्रचुर राष्ट्रीय जागृति हो गई थी और देश की राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियाँ बदल रही थीं कुछ कवि अपनी पुरानी भावनाओं में ही लीन थे। नवीन प्रभावों की उपेक्षा करके वे मध्य-युगीय ढंग के काव्य की रचना करते रहे। फलतः हम एक ओर तो भक्तिकाव्य की परंपरा में आनेवाला रामकृष्ण-सम्बन्धी काव्य पाते हैं और दूसरी ओर रीति-काव्य की परंपरा में आनेवाला शृंगार-काव्य।

रामकृष्ण-सम्बन्धी काव्य में प्रायः मध्ययुगीय काव्य में व्यक्त किए गए भावों का ही पिष्टपेषण है। भक्ति के सभी ग्रन्थों में तो कवियों का नारी-सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यक्त नहीं हुआ है। जहाँ हुआ है, वहाँ कोई मौलिकता या नवीनता नहीं मिलती। उदाहरणार्थ रामचरित उपाध्याय-कृत 'रामचरित-चिन्तामणि' में हम देखते हैं कि कवि उसी घृणात्मक नारी-भावना का प्रतिपादन कर रहा है, जिसको स्मृतियों और पुराणों के प्रभाव से हम तुलसी आदि के काव्य में पा चुके हैं। तुलसी के शब्दों की प्रतिध्वनि करता हुआ-सा कवि कैकेयी के सम्बन्ध में कहता है 'दुर्निवार है अबलाओं की माया।'[1] कैकेयी को लेकर कवि ने स्मृतियों के प्रभाव से प्रचलित सिद्धान्तों की पुनिरुक्ति की है।[2] तुलसी के समान ही यह कवि स्त्रियों

---

[1] रामचरित-चिन्तामणि : ५ वां सर्ग, पृ० ५९, ४३

[2] अनृत, साहस, छद्म, प्रगल्भता,
अदयता, अविवेक, अशौचता।
यदि न ये अबला उर में रहें,
फिर उन्हें कवि निन्दित क्यों कहें॥

को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहता ।[1] यह कवि तुलसी से भी एक पग आगे बढ़ गया है, जब उसके राम सीता-जैसी नारी की भी उपेक्षा करते हैं। युद्धान्त में विभीषण-द्वारा लाई गई सीता से राम कहते हैं :

संसार में मुझको न कोई भीरु समझे, इसलिए
मैंने किया रण, तुम बताओ स्मित-वदन हो किस लिए ?
होकर कलंकित मैं रहूँ क्यों ? राम मेरा नाम है,
चाहो जहाँ जावो चली तुमसे न कुछ भी काम है।"[2]

यहाँ कवि ने वाल्मीकि रामायण[3] से प्रभाव ग्रहण किया है। किन्तु अयोध्या में सीता-सम्बन्धी अपवाद फैलने पर उपाध्यायजी के राम कवि वाल्मीकि के राम से भी

मधुर वारिधि हो, कटु हो सुधा,
अति निवारण हो विष से क्षुधा।
रवि सुशीतल, दाहक हो शशी,
पर कभी अपनी न मृगीदृशी ॥
स्वपति को, गुरु को निज तात को,
तनय को, अपने प्रिय गात को।
समय पा न हने कब कामिनी ?
गिर पड़े सहसा जिमि दामिनी ॥
न अबला डरती परलोक से,
न अबला मिलती पर शोक से।
वह नहीं हठ से हट जायगी,
अभय हो असि से कट जायगी ॥
न अबला जन को कुछ शर्म है,
न उनका कुछ बाधक धर्म है,
निज प्रयोजन ही प्रिय है उन्हें,
पर प्रयोजन अप्रिय है उन्हें ॥
(रामचरित-चिंतामणिः ५ वाँ सर्ग, पृ० ६६, ७८, ८२)

[1] स्त्री जग में स्वच्छंदचारिणी कभी न यश पाती है,
तरुवर के आश्रित हो करके लतिका रस पाती है।
(वही : ११ वाँ सर्ग, पृ० १५१, ५५

[2] वही : १२ वाँ सर्ग, पृ० ३२२, ६३ ।

[3] तदर्थं निर्जिता मे त्वं यशः प्रत्याहृतं मया।
नास्ति मे त्वय्यभिष्वंगो यथेष्टं गम्यतामितः ॥
(श्रीमद्वाल्मीकिरामायण : ११८ वाँ सर्ग, २१)

अधिक कठोर हो गए हैं।[1]

इस प्रकार की अनादरात्मक नारी-भावना की अभिव्यक्ति कवि ने सूक्ति-मुक्तावली[2] में भी की है, जहाँ लक्ष्मी का दृष्टांत लेकर कवि स्त्रियों के सम्बन्ध में कहता है :

"स्त्री की मति उल्टी होती है, उभयकुलों को वह खोती है।
वारिधि-सुता, विष्णु की जाया, उस श्री के मन शठ नर आया।।"[2]

इस पर भी 'राम-चरित-चिंतामणि' में विश्वामित्र की स्त्री-सम्बन्धी शुभाकांक्षाएँ[3] संक्रान्ति-युग में होनेवाले भावना-द्वित्व को प्रकट करती हैं। जिस प्रकार प्रभात से पूर्व रजनी के अन्धकार की कोर पर उषा की आलोकछाया प्रतिलक्षित होने लगती है, उसी प्रकार इस युग में हम मध्ययुगीय घृणात्मक नारी-भावना के अन्तिम छोर पर नवयुगीय नारी-भावना की रेखा देखते हैं।

संक्रांति-काल में रचा गया शृंगारात्मक काव्य रीति-काल से प्रचलित नायिका-भेद तथा नख-शिख की परिपाटी का पालन करता है। इसमें यथार्थताओं और व्यक्तित्व की उपेक्षा की गई है, और निश्चित आदर्शों के आधार पर निर्मित विशिष्ट रूपों (Types) में नारी को उपस्थित किया गया है। नारी एक 'नायिका' के रूप में उनके सम्मुख आती है, जिसकी परिभाषा यह है, "रूप, शील, गुण, यौवन, प्रेम, कुल, विभुता और भूषण-इस प्रकार आठ अंगों से पूर्ण स्त्री को नायिका कहते हैं।"[4] इस परिभाषा को लेकर जब कवि नायिका का वर्णन करने लगते हैं, तो प्रायः रूप और यौवन पर ही अटक जाते हैं, गुणों पर उनका ध्यान कम जाता है। यौवन का प्रस्फुटन-काल वयसंधि उनके लिए अत्यन्त आकर्षण का विषय है।[5] सौन्दर्य के सम्बन्ध में उनकी कल्पनाएँ अतिशयोक्ति-

---

[1]रामचरित-चिंतामणि; २४ वाँ सर्ग, ३४४, ७०।

[2]लक्ष्मी-लीला, पृ० ९, ५।

[3]वीर-प्रसू वीरांगनायें हों यहाँ, विद्या पढ़ें,
सत के समर पर वे चढ़ें, साहस सहित आगे बढ़ें। —३ सर्ग पृ० २८, १६

[4]बलदेवप्रसाद मिश्र —शृङ्गार-शतक : अनुराग खंड।

[5]अ—अयोध्यासिंह उपाध्याय—काव्योपवन, विनोद वयालीसा, पृ० ६१. ८, १०।

आ—चरनन छोड़ि चंचलाई अब नैनन में,
अपनो बनाय रही रुचिर अगार है।
राज-हंस त्यों ही धीरताई मंजु नैनन की,
चरनन कीट रही अपनो अगार है।
जाय रही सघन जघन उरजन पर,
कटि को प्रदेश त्यागि गुरुता अपार है।
तापै छांडि टार मन थिर रहि जायँ कैसे,
थिर जब नाहीं ताको तन सुकुमार है॥
(बलदेवप्रसादमिश्र- शृंगार-शतक वयसंधि पृ० ३)

पूर्ण तथा परम्परागत उपमानों को लिये हुये हैं। हाथ की तुलना में पारिजात और कमल नहीं ठहरता, उरोजों पर कनक-कलश वारे जा सकते हैं, कुटिल अलकें और पतली कटि है, जिनको देखकर प्रतीत होता है कि कुंडलित नाग मणि धारण करके अमृत की लालच से चन्द्रमा पर चढ़ रहे हैं।[१]

प्रायः कवि की दृष्टि उन अंगों पर ही विशेष रूप से जाती है, जो कामोत्तेजक हैं, और वह नायिका की अतिशय सुकुमारता की ओर लक्ष्य करता हुआ ढीले-ढीले ढंग से ही नजर डालने का आदेश देता है।[२] नारी के सौन्दर्य में कवि ने कामोत्तेजक प्रभाव ही पाया है। उसके शीश को देखकर लोग सिर धुनने लगते हैं, उसकी नागिन-सी वेणी की बात सुनते ही विष चढ़ जाता है, उसके जूरे से अजानमन भी अनिवार्यतः 'आकर्षित हो जाता है। कुटिल-भृकुटि "गुजराती तेग" के समान सब पर "गजब गुजारती" है, नेत्र बरबस ही चंचल कर देते हैं[३], वे नशीले नयन मानों मन-देश जीतने के लिए रण-शूर हैं।[४]

नारी के सौन्दर्य तथा उसके प्रभाव का इस प्रकार का वर्णन स्पष्ट कर देता है कि कवि ने नारी को योनिमात्र के रूप में देखा, उसके शरीर-मात्र को देखा और उसे पुरुष की कामेच्छाओं की पूर्ति के साधन-मात्र के रूप में समझा। ऐसी अवस्था में स्वाभाविक है कि कवि नारी का भावक्षेत्र और कार्यक्षेत्र संयोग और वियोग को निर्धारित करके उसे अभिसारिका, मानवती या विरहोत्कंठिता के रूप में ही देख सके। वियोग में ऋतुएँ उस की वेदना को उद्दीप्त करती हैं; मेघ मदन की सेना के समान प्रतीत होते हैं[५], हेमंत में वह अपनी तुलना उस सौभाग्यवती से करती है "जो हिमंत में कंत गरे लगि सोवै।"[६] जहाँ उसके प्रेम-सम्बंध अवैध होते हैं, वहाँ सामाजिक बन्धनों के प्रति विद्रोह का भाव भी उसमें उत्पन्न होता है,[७] और उसकी चरम अभिलाषा यही है :—

सखियान सयानन सों दुरिकै
जो अकेले कहीं करि पावती मैं।
खनि मंद हँसी तिरछे तकि कै नंद,
नंदन अंक में लावती मैं।'[८]

इससे स्पष्ट है कि कवियों ने नारी को संकुचित दृष्टि से देखा, उसके विचार और

---

[१] पं० द्विज ब॰देवप्रसाद—प्रेम-तरंग, पृ० ४, ११

[२] वही, पृ० ५, १३

[३] अयोध्यासिंह उपाध्याय: काव्योपवन : नखसिख पृ० १०७, ११५

[४] पं० द्विज बलदेवप्रसाद - प्रेम-तरंग, पृ० ५, १५।

[५] पं० द्विज बलदेवप्रसाद—प्रेम-तरंग पृ० ९, २६।

[६] अयोध्यासिंह उपाध्याय—काव्योपवन : हेमंत-वर्णन पृ० ८७।

[७] पं द्विज बलदेवप्रसाद प्रेम-तरंग पृ० ७, २०

वही पृ १४, २

क्रिया को ऐंद्रिक क्षेत्र-मात्र में देखा। न तो स्वयं नारी का कोई शृंगारातिरिक्त रूप दिखाई देता है और न वह पुरुष को मानसिक रूप में भाग लेती हुई दिखाई पड़ती है।

इस प्रकार की नारी-भावना के पीछे प्रबल काम-प्रेरणा है। काम-प्रेरणा कोई अस्वाभाविक वस्तु नहीं, किन्तु उसके द्वारा जीवन के अन्य सभी कर्तव्यों का आवृत हो जाना समाज के मानसिक अस्वास्थ्य का लक्षण है। यह अस्वास्थ्य प्रायः प्रचलित लैंगिक प्रतिबन्धों का फल होता है। हम देख चुके हैं कि स्मृतियों तथा पुराणों के प्रभाव से हमारे समाज में अनेक निषेधात्मक नियम प्रचलित हो गए थे। मुस्लिम काल से पर्दे के प्रतिबंध बढ़ जाने से पुरुषों के लिए स्त्रियों का दर्शन—यहाँ तक कि पत्नी का दर्शन दुर्लभ हो गया। ऐसी अवस्था में प्रकृतिगत काम की स्वस्थ पूर्ति असंभव हो जाती है, और वह प्रवृत्ति क्रिया-क्षेत्र एवं भाव-क्षेत्र में एक वक्र मार्ग को अपना लेती है, समाज में बंधनों को तोड़कर गुप्त प्रेम-व्यापार का संपादन करनेवाले पड़ोसियों या परकीया और शठों की उत्पत्ति हो जाती है। हमारे समाज में इस प्रकार के व्यक्तियों की उत्पत्ति में सहायक हुई वेश्या (जिसका निर्माण भी सामाजिक कारणों से ही हुआ था) जो सिद्धान्त रूप से तो गर्ह्य कही जाती थी, किन्तु पुरुषों की असंतुष्ट कामवृत्ति का साधन होती थी। आर्थिक दृष्टि से भारत अभी तक संपन्न था और धनी-वर्ग में उत्पन्न होनेवाले कवियों को प्रचुर अवकाश भी था। धन और अवकाश विलासपूर्ण भावों की उत्पादक-भूमि होते हैं।

अस्तु, एक तो सामाजिक वातावरण से प्रभावित होकर और दूसरे काव्य की परम्पराओं के पालन को ही श्रेयस्कर मानकर २० वीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में कुछ कवि रीति-काल की-सी शृंगारात्मक नारी-भावना की अभिव्यक्ति करते रहे। उनकी भावना रूढिवादी है और उतनी ही संकुचित है जितनी विहारी या मतिराम की थी। ये कवि सुंदर का संयोग शिव से न कर पाये हैं। वे देश और काल की आवश्यकताओं के प्रति निमीलित-नेत्र हैं। नायक और नायिका की विलास-लीलाओं में नृत्य करनेवाली उनकी कल्पना नारी को नर की सहचरी और सहधर्मिणी के रूप में, गृहलक्ष्मी के रूप में, देश-सेविका के रूप में देखने में असमर्थ है। वास्तव में उनकी नारी-भावना ही नहीं नर-भावना भी संकुचित है। जब उनके नायक दक्षिण, शठ, धृष्ट, जिनका क्रिया-चातुर्य और वचन-चातुर्य रतिक्रीडा के ही क्षेत्र में है, तो फिर उनकी नायिका-कल्पना अभिसारिका, खंडिता, मानवती से अधिक हो ही क्या सकती थी?

भक्ति-काव्य और शृंगार-काव्य के अतिरिक्त इस युग में कुछ कथा-काव्यों की भी रचना हुई।[1] यह काव्य पौराणिक नारी-पात्रों को लेकर चलते थे, और शैली में इतिवृत्तात्मक थे। किन्तु इनमें पात्रों के चित्रण में नवीनता नाममात्र को भी नहीं थी। कथा-मात्र का वर्णन और नायिका का अधिक से अधिक प्रेम की विह्वलता का चित्रण इनमें पाया जाता है। मौलिकता का अभाव है।

---

[1] गदाधर शुक्ल—उषाचरित; 'शंकर'-उषाचरित; लक्ष्मीनारायणसिंह—नल-दमयंती-चरित-आदि।

यद्यपि इस युग में प्राचीन परिपाटी के काव्य की रचना प्रचुर रूप से होती रही, और परंपरागत नारी-भावना बनी रही, किन्तु यह युग संक्रांति का था। प्राचीन भावना के बने रहते हुए भी गति नवीनता की ओर थी। कुछ कवि नवीन प्रभावों को ग्रहण कर रहे थे। इस युग के कवियों के विशेष रूप से प्रेरक रहे राष्ट्रीय आंदोलन तथा समाज-सुधार-आन्दोलन।

राष्ट्रीय आंदोलन १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में प्रारंभ अवश्य हो गया था, किन्तु सन् १९०५ से पूर्व उसने जन-आन्दोलन का रूप धारण नहीं किया था। १९०५-१९०९ के मध्य देश में एक नवीन चेतना उद्भूत हुई, जिसने राष्ट्रीयता के दो नए दलों को जन्म दिया।[1] यह दो दल थे गर्म दल और आतंकवादी दल। प्रथम राजनैतिक विद्रोह और राष्ट्रीय निर्माण में विश्वास करता था, जिसके साधन थे अंग्रेजी माल और संस्थाओं का बहिष्कार, स्वदेशी का प्रचार तथा राष्ट्रीय संस्थाओं की स्थापना। द्वितीय अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग राजनैतिक हत्याओं, डकैती आदि में विश्वास करता था। यद्यपि दोनो दलों के मार्ग पृथक् पृथक् थे, किन्तु लक्ष्य एक ही था—स्वतंत्र और स्वावलंबी भारत का निर्माण करके प्राचीन गौरव और संपन्नता का पुनरावर्तन करना। ये दल भारत पर पश्चिमी प्रभाव को अच्छा नहीं मानते थे। दोनों दलों के नेता साहसी तथा त्यागशील थे और देश-प्रेम तथा विदेशी राज्य के प्रति घृणा से पूर्ण थे। पूर्ववर्ती कांग्रेसियों के विपरीत वे ब्रिटिश-राज्य की उदारता में विश्वास नहीं करते थे और "राजनैतिक भिक्षुक वृत्ति" (Political mendicancy) को स्वातंत्र्य-प्राप्ति का उपयुक्त मार्ग नहीं मानते थे।

१९०५ में लार्ड कर्जन-कृत बंग-भंग ने देश में विद्रोह की अग्नि प्रचंड कर दी। एक ओर तो स्वामी विवेकानन्द के उपदेश नवयुवकों के मस्तिष्क को प्रभावित कर रहे थे और उनमें मातृभूमि के प्रति तीव्र भक्ति-भाव की उत्पत्ति कर रहे थे, दूसरी ओर बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय और विपिनचन्द्र पाल (बाल लाल-पाल) के नेतृत्व में स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन प्रारभ हुआ, जो १९०९ तक प्रबल रूप से चलता रहा। आंदोलन के प्रारंभिक वर्षों में ही नवोदित भारत का राष्ट्रीय गीत "वंदे-मातरम्" (जो वंकिमचंद्र चटर्जी के आनंद मठ से लिया गया था) प्रचलित हो गया। इस ओर श्री अरविन्द घोष का प्रयत्न उल्लेखनीय है जिन्होंने अपने पत्र का नाम "वंदे मातरम्" ही रखा। गर्म-दल वालों के अतिरिक्त आंतकवादी भी उस काल में पत्र-पत्रिकाओं में शक्तिशाली लेख आदि के द्वारा तथा सरकारी अफ़सरों-आदि की हत्या के द्वारा अपने प्रोग्राम को पूरा कर रहे थे। सरकार ने आंदोलन के दमन के लिए कोई प्रयोग उठा न रखा। सरदार अजितसिंह और लाला लाजपत राय को निर्वासित किया गया (९ मई १९०७), सेडीशन्स मीटिंग्स ऐक्ट (१ नवबर १९०७) एक्स्प्लोसिव सब्सटेंसेज एक्ट तथा न्यूज पेपर एक्ट (८ जून १९०८) तथा क्रिमिनल ला अमेंडमेंट एक्ट (११ दिसंबर १९०८) पास करके

[1] गुरुमुख निहाल सिंह—लैंडमार्क्स इन इंडियन कौंस्टीट्यूशनल एन्ड नेशनल डेवलप्मेंट, अध्याय १५, पृ० २५१.

अनेक कठोरतायें की गईं, तिलक को 'केसरी' में दो निबंध छापने पर कारागार में डाला गया (९ जून १९०८) तथा बहुत से अन्य नेताओं को भी निर्वासित या बंदी किया गया। किन्तु जो चेतना इस आंदोलन-काल में भारत में जाग्रत हो गई थी, वह किसी प्रकार भी कुचली न जा सकी, वरन् निरंतर अधिकाधिक व्यापक ही होती गई। दक्षिण अफ्रीका में गांधी के सत्याग्रह (१९०८ के प्रति सहानुभूति ने, मिन्टो-मार्ले-रिफ़ार्म (१९०९) के प्रति असंतोष ने, तथा प्रथम महायुद्ध-काल (१९१४-१८) में जनता में आत्म-सम्मान और आत्म-विश्वास के भाव की वृद्धि ने भारत के मस्तिष्क में नवीन जागृति उत्पन्न की। १९१६ में तिलक (जो १९१४ में छूटे थे) और श्रीमती ऐनीबेसेंट ने होम-रूल आंदोलन प्रारंभ किया। १९१७ में भारत का राजनैतिक आंदोलन अपनी चरम अवस्था पर था।

समाज-सुधार-सम्बन्धी आंदोलन यद्यपि १९ वीं शताब्दी की विशेषता थी, किन्तु २० वीं शताब्दी में भी स्त्रियों की अवस्था में सुधार करने के लिए तथा उन्हें जाग्रत करने के लिए प्रयत्न होते रहे। हमारे संक्रान्ति-काल में विशेष प्रयत्न स्त्री-शिक्षा तथा विधवा विवाह के क्षेत्रों में हुआ। इस संबंध में धोंदो केशव कार्वे (१८५८) गोपाल कृष्ण देवधर (१८७१-१९३५) आदि के प्रयत्न उल्लेखनीय हैं। कार्वे जब प्रोटेस्टेंट, गर्ल्स स्कूल, बम्बई में अध्यापक थे, (१८८५) तभी उन्होंने पहले पहल स्त्री शिक्षा की आवश्यकता का अनुभव किया। ७ वर्ष पश्चात् वे फर्गुसन कालेज में प्रोफेसर हुए। इसी बीच पत्नी का देहान्त हो जाने पर हिन्दू धर्म परंपरा के विरुद्ध उन्होंने एक विधवा ब्राह्मणी से विवाह करके (१८९३) विधवा-विवाह का प्रचार किया। उसी वर्ष वे "विधवा-विवाह संस्था" (Widow marriage Association) के सभापति हुए, यद्यपि १९०० में उन्होंने पद त्याग दिया। १८९९ में कार्वे ने पूना में "हिन्दू विधवा-गृह "(Hindu Widows Home) खोला। इस गृह का लक्ष्य कुलीन विधवाओं में, उन्हें अध्यापिका या नर्स आदि की शिक्षा देकर, जीवन के प्रति क्रियाशील उत्साह उत्पन्न करना था। इस प्रकार की शिक्षा ने विधवाओं के अतिरिक्त अन्य लड़कियों को भी आकर्षित किया। फलतः छात्रावास-सहित 'महिला-विद्यालय" को भी स्थापित करना अनिवार्य हो गया। यहाँ लड़कियाँ परीक्षाओं के लिए तैयार नहीं की जाती थीं वरन् सुपत्नी, सुमाता तथा सुप्रतिनिवेशी बनने के लिए तैयार की जाती थीं और इस प्रकार बाल-विवाह की प्रवृत्ति भी हतोत्साह हुई। कार्वे का स्त्री-शिक्षा-संबंधी उत्साह उनके इंडियन विमन्स यूनिवर्सिटी के निर्माण (१९१६) में चरमतः प्रकट हुआ। श्री रा०गो०भंडारकर इसके प्रथम कुलपति थे। प्रारंभ में इस विश्वविद्यालय में, जो पूर्णतः स्वावलंबी था, केवल ४ छात्रायें थीं और विद्यालय आदि अनेक स्कूल उससे सम्बन्धित थे। १९३१ में २४ संस्थायें इससे संबंधित हो गई थीं और २५०० से अधिक लड़कियाँ मिडिल और हाई स्कूल में तथा १२५ कालिजों में शिक्षा पा रही थीं।

कुछ इसी ढंग का कार्य गोपाल कृष्ण देवधर ने किया। उन्होंने भारतीय स्त्रियों के

---

[1] कार्वे माई ट्वेंटी इयर्ज इन दी कॉज आव इंडियन विमन पृ. ३३.

उत्थान के लिए एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण संस्था—पूना-सेवा-सदन—की स्थापना की। इस संस्था की स्थापना का कारण स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा है—"जब मैं संयुक्त प्रान्त में अकाल-उद्धार-कार्य में लगा हुआ था, मेरी धारणा बनने लगी कि राष्ट्रीय उन्नति के विविध क्षेत्रों में भारत को पुरुषों के ही समान अभ्यस्त स्त्री कार्यकर्त्रियों की भी आवश्यकता है। पूना वापस आने पर मैंने कई बार मित्रों -स्त्री तथा पुरुष-की गोष्ठियाँ की और इसका फल हुआ आधी दर्जन विधवाओं को सामाजिक-कार्य कर्त्रियों के रूप में शिक्षित करने का प्रण"।[1] संस्था का निश्चित रूप से प्रारंभ १९०९ में हुआ। प्रारंभ में यह कार्य श्रीमती रमाबाई रानाडे, महान् सुधारक रानडे की विधवा पत्नी के गृह में हुआ और वे ही इसकी १९२४ तक सभापति रहीं। इस प्रकार भारतीय रूढ़िपंथी समाज में स्त्रियों को शिक्षित करने तथा अस्पतालों आदि में वर्ग-भेद आदि के बंधनों पर ध्यान न देकर कार्य करने के लिये स्त्रियों को उत्साहित करने का श्रेय श्री देवधर को है। श्रीयुत मलाबारी ने भी भारतीय स्त्रियों को गरीबों की सेवा, रोगियों की परिचर्या आदि के लिये अभ्यस्त बनाने के लिये एक सेवा-सदन की स्थापना की (१९०८)।

इस प्रकार संक्रान्ति-युग में एक ओर तो देश की स्वतंत्रता-संबंधी आंदोलन प्रबलता ग्रहण कर रहा था, दूसरी ओर नारियों को देश की उन्नति में सहायक बनने के लिए जाग्रत, शिक्षित तथा उत्साहित किया जा रहा था। देश की इस प्रगति से युग के नवयुवक कवि प्रभावित हुए बिना न रह सके; और उन्होंने मध्ययुगीयता से अपना संबंध तोड़ना प्रारंभ कर दिया। एक ओर तो राष्ट्रीयता, मानवतावाद आदि के भाव काव्य में स्थान पाने लगे, दूसरी ओर परम्परागत भावों तथा पौराणिक कथाओं आदि को वर्णन करने की रूढ़िबद्ध रीति को त्याग कर व्यक्तिगत मौलिक भावों तथा रीतियों का समावेश करने की ओर साहस के साथ अग्रसर हुए। वे अपने देश तथा काल के प्रति जाग्रत थे और युग की आवश्यकता के अनुसार काव्य-रचना करते हुए प्रबन्ध-काव्यों में नवीन कथानकों की उद्भावना तो करते ही थे, साथ ही प्राचीन कथानकों की व्याख्या भी नई दृष्टि से करने लगे।

अस्तु, जब 'देश राग की तान' छिड़ी हुई थी और "डमरू लिए बाल गंगाधर डाल रहे थे जान" तथा स्वराज्य ही देश की प्रमुख कामना थी, तब नवीन कवि का अन्य कवियों को सचेत करते हुए यह कहना अस्वाभाविक नहीं था—

"देखा न आपने कि ज़माना कहाँ है अब।
रस रास का जगत में ठिकाना कहाँ है अब॥
भूषण न आप बन सके मतिराम ही बने,
कामारि आप बन न सके काम ही बने।
भय और काम भूल के रस धाम ही बने,
क्यों राम आप बन न गए श्याम ही बने?
करुणानिधान देश पर अब तो दया करो।
निज पूर्वजों के नाम की कुछ तो हया करो।

---

[1]यंग इंडिया, ४ मार्च १९२६

मॉं भारती तुम्हारा चलन देख-देख कर,
नव नायिका से नित्य लगन देख-देख कर।
परकीया में लगा हुआ मन देख-देख कर,
उजड़ा हुआ स्वदेश का वन देख-देख कर॥
आकुल अजस्र धार से आँसू बहा रही।
होकर अधीर धैर्य भवन है ढहा रही॥[1]

इस प्रकार के भावों का काव्य-जगत् में प्रसार होने के साथ ही मध्ययुगीय नारी-भावना का अन्त हो गया। नवीन नारी-भावना का सन्देश देनेवाले प्रमुख कवि थे, श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय आदि।

संक्रान्ति-युग की नवीन नारी भावना को हम दो प्रकारों में विभक्त कर सकते हैं (१) राष्ट्रवादी (२) सुधारवादी। यद्यपि इन दोनों प्रकारों का सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ट है, फिर भी दोनों को पृथक-पृथक ढंग से समझना उचित होगा।

प्रथम अध्याय में नारी भावना में परिवर्तन के कारणों का विवेचन करते हुए हम कह आये हैं कि राष्ट्रीय-जागृति ने कवियों को भारत के प्राचीन गौरव से उत्तेजना लेने को प्रेरित किया। प्राचीन भारत में, जब देश उन्नति की अवस्था में था, स्त्रियाँ विशेष आदर की दृष्टि से देखी जाती थीं, और वे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की सहयोगिनी रहती थीं। आधुनिक कवि उसी अवस्था का पुनरावर्तन करना चाहता है। वह आर्य-नारी के प्रति आदर और श्रद्धा के भाव से भर जाता है। उनको वह जग-ज्योति, जगत-संजीवनी, शुचिता की सीमा आदि के रूप में देखता है।[2] साथ ही विविध विशेषणों से उसे भूषित करता हुआ उसे अमेय बलधारिणी विश्व की अजेय शक्ति मानता है।[3] नारी को शक्ति मान कर ही वह उसे केलिगृह की देहली के बाहर, देश के कार्यक्षेत्र में निकाल सकता है, जगत-संजीवनी मानकर ही देश को जागृत करने की आशा उससे कर सकता है, 'त्रिशक्ति-संगमिनी' मानकर ही कृती पौरुषी पुत्र उत्पन्न करने को कह सकता है। फलतः

---

[1]त्रिशूल—त्रिशूल-तरंग : कविराज से संबोधन, पृ० ७०-७१।

[2]जय-जग ज्योति, जगत संजीवनी, जय-जग-लाज जहाज
शुचिता-सीम, पुण्यपथ प्रेमिनि, नेमिनि, नेह-निवाज
जयति भुवि भारत सती समाज।
(श्रीधर पाठक—भारत-गीत : सती-समाज पृ० ४९)

[3]अहो पूज्य भारत-महिलागण, अहो आर्य-कुल-प्यारी।
अहो आर्य-गृह-लक्ष्मी-सरस्वती, आर्य-लोक उजियारी॥
अहो आर्य मर्याद-प्रोतिनी, आर्य हृदय की स्वामिनि।
आर्य ज्योति, आर्यत्व द्योतिनी, आर्य-वीर्य-घन-दामिनि॥
आर्य धर्म-जीवन-महिमामयि, आर्य-जन्म संजीवनि।

नारी के सुख-सहाय की सफलता में पूर्ण विश्वास रखता हुआ [1]कवि भारतीय नारी से कहता है :

"आर्य स्वदेश सुख-दुख संगिनि, अखिल श्रेय संचारिणि,
आर्य जगत् में जननि पुनः निज जीवन-ज्योति जगाओ,
आर्य हृदय में पुनः आर्यता का शुचि स्रोत बहाओ,
अक्षय सुकृतमयी स्वकुक्षि से कृती आर्य सुत जाओ,
त्रितय शक्ति पूरित स्ववक्ष से पुनःपुंसत्व पय प्याओ,
करो सार्थ कमनीय नाम निज अहो आर्य-कुल-कामिनि
आर्य प्रेम की पुण्य पताका, आर्य गेह की स्वामिनि।"[2]

नारी को शक्ति रूपा तथा देश-सेवा में सहयोगिनी के रूप में देखने की भावना ने रामनरेश त्रिपाठी को विजया और सुमना की सृष्टि करने के लिए प्रेरित किया। 'मिलन' को कवि ने 'एक प्रेम-कहानी' कहा है, किन्तु वह परंपरागत प्रेमाख्यानों के समान नहीं है, जिनमें नायिका नखशिख-वर्णन, विरह-दशा, संयोग वर्णन-आदि की वस्तु ही रहती थी, और अपने प्रेमी अथवा पति के जीवन में कोई क्रियाशील भाग नहीं लेती। हम देख चुके हैं कि इस प्रकार के प्रेम-काव्यों की परंपरा बीसवीं शताब्दी में भी थोड़ी-बहुत चलती रही थी। किन्तु 'मिलन' इस क्षेत्र में एक नए युग का संदेशवाहक है। इस प्रबन्ध-काव्य का नायक आनन्दकुमार है जो स्वदेश को शत्रुओं से मुक्त करने में प्रयत्नशील है। विजया उसी की नवयुवती पत्नी है। वह पति की "सतत-संगिनी" है, और इसलिए जब आनन्दकुमार पर 'पद-दलित स्वदेश भूमि का' उद्धार करने को प्रस्तुत होता है, तो वह भी "लज्जा-भय तज, साहस उर-धर पुरुषों के अनुकूल" पुरुष वेष ही धारण कर उसकी संगिनी होती है। दुर्घटनावश पति के डूब जाने पर वह आत्म-हत्या करना या विलाप करना अनुचित समझती है और शीघ्र ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर लेती है :

"अब कर्त्तव्य यही है पूरा,
करूँ वही उद्देश्य।
जिनकी पूर्ति हेतु उद्यत थे,
मेरे प्रिय प्राणेश॥

आर्य शील-सुषमामयि, सुन्दरि, आर्य-मा, आर्य-सती-मणि॥
आर्य त्रिभुवन-अभिवंद्य-यशस्विनि आर्य त्रिशक्ति संशोभिनि।
त्रिगुण जयिनि, मृग नयनि, मनस्विनि, मधुमथि, त्रिजग प्रलोभिनि॥
तुम हो शक्ति अजेय विश्व की, आर्य अमोघ बलधारिणि"।
(वही : आर्य महिला, पृ० ११३)

[1]जिनका सुखद सहाय पाय जग साजै सकल सुकाज।
(श्रीधर पाठक—भारत-गीत : सती-समाज पृ० ४६)

[2]वही, आर्य-महिला पृ० ११४।

पति अभिलाषा पूर्ण करना ही,
है मेरा ध्रुव धर्म ।
सदा करूँगी मैं स्वदेश की,
सेवा का शुभ कर्म ॥
जिस प्रकार अब स्वदेश का,
होगा पुनरुत्थान ।
वही करूँगी यत्न अहर्निश,
देकर तन-मन प्रान ॥"[1]

वह गाँव-गाँव में घूमकर देश का हाल देखती है और साक्षात् दुर्गा-वेश धारण करके लोकसेवा में लीन हो जाती है और अपनी देश-भक्ति-पूर्ण गीतों से जनता को जाग्रत करने लगती है।[2] 'उसके गान हृदय में भरते थे साहस-उत्साह" और स्वतंत्रता के मार्ग को बताते थे; उसके गीतों ने साहसी और शूर उत्पन्न किये, कायरपन को दूर करके स्वदेश-सेवा में मरने को तैयार नवयुवक निर्मित किए। इतना ही नहीं, जब विजयी शासकों के अत्याचारों से पीड़ित जनता युवक (विजया का पति, जिसको मुनि ने बचा लिया था) और मुनि के नेतृत्व में स्वातन्त्र्य-युद्ध करती है तब "विजया भी भैरवी भेष में आई धर करवाली" भैरव हुँकार करके वह शत्रु पर आक्रमण कर देती है। शत्रु के पैर उखड़ जाते हैं, और प्रजा की विजय होती है। इस प्रकार विजया परतंत्र-देश के उद्धार के हित प्रयत्नशीला वीरांगना के रूप में उपस्थित होती है। कल्पित-कथानक को लेकर कवि ने नारी-भावना का प्रकाशन किया है।

सुमना त्रिपाठीजी के 'स्वप्न' नामक काव्य की नायिका है। उसका पति वसंत प्रकृति प्रेमी तथा भावुक है। वह दार्शनिक अन्वेषणों में निरत है। किन्तु सुमना पति से अधिक व्यावहारिक-बुद्धि-युक्त तथा वास्तविकताओं के प्रति जाग्रत है। वह अनेक बार पति से कल्पना का परित्याग कर जीवन-क्षेत्र में क्रियाशील होने का अनुरोध करती है। किन्तु उसे विशेष सफलता नहीं प्राप्त होती। किन्तु एक बार उनके स्वतन्त्र देश को कोई

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी – मिलन, दूसरा सर्ग, पृ० ३१, ३३-३४

[2] लिए त्रिशूल हाथ में बरने,
चली देश-उद्धार ।
गाँव-गाँव लगी घूमने,
सेवा-व्रत उर-धार ॥
द्वार द्वार पर जाकर विजया,
करुणा प्रेम निधार ।
सबको लगी जगाने गाकर,
देश-भक्तिमय गान ॥

(वही, चौथा सर्ग पृ० ६४, २१)

विदेशी लोलुप राजा ग्रस लेता है। तब देश की समस्त जनता अपने संगठित बल से उस पर विजय प्राप्त करने के लिए उठ खड़ी होती है। नवोढ़ाएँ शयनागार बन्द कर देती हैं, पत्नियाँ पतियों को सजाकर रण-भूमि में भेजती हैं, माताएँ विजय-तिलक लगाकर आशीर्वाद देती हैं। जब ग्राम-ग्राम से युवकों के दल पर दल युद्ध-क्षेत्र में जा रहे थे, जब युद्ध-क्षेत्र में वीर-गति को प्राप्त होने वाले पुरुषों की माताएँ तथा पत्नियाँ गौरव से मंडित की जा रही थीं, तब सुमना अपने पति को निष्क्रिय देखकर व्याकुल हो उठती है। राष्ट्र-धर्म के हित एक वृद्धा के त्याग की कथा उसके दुःख के प्याले को भर देती है और वह अपने पति से जाकर कहती है :

तुम हो वीर पिता-माता के,
वीर पुत्र मेरे जीवन धन।
तुमसे आशाएँ कितनी हैं,
जन्म-भूमि को हे अरि-मर्दन!
तुम्हें ज्ञात है कैसा संकट,
है स्वदेश पर हे प्राणेश्वर।
शोभा नहीं तुम्हें देता है,
घर पर रहना इस अवसर पर॥"[1]

किन्तु जब कामुक वसन्त इस उद्बोधन से भी जागृत नहीं होता, तो अपने अर्द्धाङ्गिनी-भाव के उत्तरदायित्व का निर्वाह करने के लिए[2] वह स्वयं वीर वेश धारण कर देश-कार्य में सलंग्न हो जाती है। सुमना के वीर-कृत्यों की कथा सुनकर ही विरही-वसंत के हृदय में देश-भाव जाग्रत होता है और वह देश को स्वतन्त्र करता है। इस छोटी-सी किन्तु भावपूर्ण कथा में कवि ने नारी की देश-भक्ति-भावना, वीरत्व, उत्तेजना-शक्ति का परिचय दे दिया है। वसन्त के उद्धार का मूल कारण सुमना है।

लाला भगवानदीन ने नारी की शक्तिमत्ता में विश्वास रखते हुए युग की माँग को पूर्ण करने के लिए 'भारत की छत्रानी, वीर-प्रसविनी, वीर-कन्या और वीर-वधू" का स्मरण किया है। 'वीर-क्षत्राणी' नामक पुस्तक में धर्म, अथवा देश के हित सिंहिनी-रूप को धारण करनेवाली नीलदेवी, कमला, पद्मावती, किरणदेवी, वीरा बाई, कर्मा देवी, दुर्गावती आदि प्राचीन वीरांगनाओं को उपस्थित किया है।

स्वधर्म-रक्षा के लिए अबला से सबला बननेवाली नारियों में प्रमुख नाम हैं—कमला, किरणदेवी, वीरमती आदि के। मोहनपुर के रामनाथ की पत्नी कमला पर मेरठ के नवाब की लालची दृष्टि पड़ती है। कायर रामनाथ नवाब के प्रस्ताव को मानने को तैयार है, किन्तु कमला के शब्दों में 'सती नारि का पति बिलगाना टेढ़ो खीर पचाना है।' वह युक्ति से नवाब का नाश करके स्वधर्म तथा स्वपति की रक्षा करती है।[3] उस

[1] रामनरेश त्रिपाठी—स्वप्न ३ सर्ग, पृ० ५९, ३२।
[2] वही—पृ० ६२, ३६
[3] भगवानदीन—वीरक्षत्राणी : कमला पृ० १६—२४।

समय "कमला नाम-धारिणी देवी दुर्गा-सी बन जाती है।" इसी प्रकार की परिस्थिति राजपूत कर्णसिंह की पत्नी कलावती के सम्मुख उपस्थित होती है, जब दिल्लीश अलाउद्दीन उसे अपने हरम में रखना चाहता है। कलावती रण-भूमि में विरोधोद्यत पति का सहयोग देती है। पति के आहत होने पर भी वह साहस खोने के स्थान पर सेनानियों को उत्तेजित करती हुई 'चंडी सी बनी फिरती' है।[1] किरणदेवी वह वीरांगना है, जिसे मीना बाज़ार के धोखे में अकबर ने हतसतीत्व करना चाहा था। आधुनिक कवि ने उसके अदम्य साहस और शक्ति का वर्णन करके कवि भूषण की भूल को स्पष्ट कर दिया है।[2] धार के राजकुमार जगदेव की पत्नी वीरमती 'थी रूप की भंडार तो वीरत्व की बेटी'। वेश्या के बहकावे में आकर जब सतीत्व पर संकट आया तो उसने वीरता दिखाई।[3]

ये नारियाँ जिस शक्ति और वीरत्व का प्रदर्शन करती हैं, उसका चरम साफल्य तो जाति-स्वदेश और जन्म-भूमि की रक्षा में काम आने में है। इस क्षेत्र में नारी कितनी सामर्थ्य रखती है इसको कवि ने नीलदेवी, वीराबाई कर्मदेवी, दुर्गावती, कमला आदि के उदाहरणों से प्रमाणित किया है। पंजाब के सरदार सूरजदेव की पत्नी नीलदेवी अब्दुल शरीफ खां सूर के अत्याचार से पीड़ित देश को दुर्दशा देख कर उत्तेजित हो उठती है। प्रथम तो वह अपने पति को तथा जनता को शरीफ का दमन करके देश रक्षा के लिए उत्तेजित करती है,[4] और सूरज देव के बंदी होने पर अपना प्रचंड रूप प्रदर्शित करती है। नीलदेवी ने अपने प्राणों को 'देश प्रेम औ जाति नेम-हित' समर्पित कर दिया। चित्तौड़ के राणा उदयसिंह की प्रेयसी वीराबाई ने भी देश-रक्षा के लिए इसी प्रकार का शौर्य प्रदर्शित किया था। अकबर ने जब चित्तौड़ पर आक्रमण करके राणा को बंदी बना लिया, तब वीरा देश-रक्षा के लिए उद्यत हो जाती है :

"आया है उमड़ सैन सहित; देश दबाया।
मेवाड़ को है चाहता अधिकार में लाया॥

---

[1] वही पृ० ३४-४१ कलावती।
[2] वही, पृ० ७८-७८, किरण देवी।
[3] वही वीरमती वा वीरा पृ० ७९-९१।
[4] भगवानदीन—वीर क्षत्राणी, नीला वा नीलादेवी पृ० १०

"जननी जन्म भूमि की इज्जत, बेटी बहन नारि की लाज।
सुख सम्पत्ति धन प्राण झोंककर रखना है क्षत्री की लाज॥
इतना करने का बल साहस जिस क्षत्री के अंग न होय।
बस, जानो उसकी माता ने नाहक यौवन डाला खोय।
जन्म भूमि की मर्यादा को जो क्षत्री नहिं सकै रखाय।
निज नारी के सती धर्म को क्य सकि है वह कूर बचाय॥"

उस धीर यवन जात को कुछ स्वाद चखा दूँ।
कैसी हूँ मैं वीरा उसे कुछ स्वाद चखा दूँ॥"[1]

प्रेम के साथ देश-प्रेम के भाव से उत्तेजित होकर वह सुकुमारता और भीरुता को को दूर करके वीर-वेश धारण कर लेती है—'दुर्गा-सी बनी धाम से बाहर चली बाला।" वीरों में देश-भक्ति का भाव जाग्रत करके वह अकबर की सेना से युद्ध करती है और "चंडी सी बनी मुंड थे मुगलों के कतरती।" अंत में उसकी विजय ही होती है। मंडला की रानी दुर्गावती भी वीरता के साथ शत्रुओं से देश की रक्षा करती है। उसके पति की मृत्यु के बाद उसे स्त्री समझ अकबर ने मंडला पर चढ़ाई कर दी; किन्तु दुर्गावती दुर्गा ही थी। उसके वीरत्व को देखकर प्रजा भी उत्साह से भरकर शत्रुओं का सामना करती है और अंत में उन्हें मार भगाने में सफल होती है। द्वितीय बार जब पुनः यवन-आक्रमण होता है, तब गृह-विग्रह मंडला की शक्ति को क्षीण कर देता है, किंतु फिर भी दुर्गावती अदम्य साहस और वीरता का परिचय देती है। और "निज देश के, निज नाम के हित" प्राण विसर्जन करती है।[2] चित्तौड़ के फतेहसिंह (फत्ता) की माता कमला अपूर्व देश-प्रेम का परिचय देती है। वृद्धा होते हुए भी अकबर के आधिपत्य से चित्तौड़ को बचाने के लिए वह युद्ध-क्षेत्र में जाती है। युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त होती है, किन्तु उसके अंतिम शब्द यहीं थे :

"हे पुत्र रहे देह में जब तक कि तनिक प्रान।
निज देश के हित करना महावीर घमासान॥"[3]

'वीर-पंच-रत्न' में लाला भगवानदीन ने वीर क्षत्राणियों के साथ-साथ भारत की प्राचीन पौराणिक तथा ऐतिहासिक वीर माताओं का भी यशोगान किया है। कवि इन शक्तिमती नारियों को अबला नहीं मानता, वरन् नारी को ही अबला कहना अन्याय समझता है:

"बस नाम जो अबला इन्हें मुनियों ने दिया है।
महिलाओं के संग भारी-सा अन्याय किया है॥
जांचा नहीं किस धातु का नारी का हिया है।
अमृत की मधुर धार है या विष का बिया है॥"[4]

संसार में माता की शक्तियों में कवि विशेष-रूप से विश्वस्त है। कवि की धारणा है कि संसार में अचल प्रेम के साथ उपकार करनेवाला, सदुपदेश देकर उचित मार्ग पर अग्रसर करनेवाला, मनुष्य को शक्तिशाली बनानेवाला माता के अतिरिक्त दूसरा नहीं है।[5] इस दृढ़ विश्वास की सिद्धि कवि ने सुमित्रा, अलूपी, कुंती, रेणुका, विदुला

[1] वही : वीरबाला, पृ० ४६
[2] वही : दुर्गावती पृ० ९२-९९
[3] लाला भगवानदीन वीर क्षत्राणी : कर्मदेवी, कर्णदेवी और कमलादेवी पृ० १०४
[4] लाला भगवानदीन—वीर-पंचरत्न : वीर-माता अलूपी पृ० २७३
[5] वही—रेणुका पृ० २८३—२८४, १—७

आदि में पाई है। यद्यपि वाल्मीकि-रामायण और रामचरित मानस में इस प्रकार का वर्णन नहीं है, तो भी हनुमान् के मुख से लक्ष्मण के आहत होने का समाचार सुनकर सुमित्रा का शत्रुघ्न से लंका जाकर राम की सहायता करने का आदेश देना[1] नवीन कवि की मौलिक भावना का परिचायक है। लाला भगवानदीन की सुमित्रा ने मैथिलीशरण गुप्त की सुमित्रा का मार्ग निश्चित कर दिया है। इसी प्रकार इनकी कुन्ती गुप्तजी की कुन्ती के निर्माण की सीढ़ी है।

इस प्रकार प्राचीन वीर-माताओं का वर्णन करता हुआ कवि भगवान से प्रार्थना करता है :

"हे राम ! दयाधाम ! कृपा-कोर इधर हो।
ऐसी ही सुमाता से भरा सबही का घर हो॥"[2]

"हर घर में प्रगट कीजिए विदुला सी सुमाता।
सिखला के बना दें हमें कर्तव्य का ज्ञाता॥"[3]

इस प्रकार की भावना हिन्दी-काव्य की नारी-भावना में एक सर्वथा नवीन पृष्ठ है।

इस प्रकार संक्रान्ति-काल में देश-स्वातंत्र्य की भावना से प्रेरित होकर कवियों ने उसे समर्थ और शक्तिवान् रूप में देखा है और उसके वीर-रूप का तादात्म्य शाक्तों की दुर्गा-भावना से कर दिया है। नारी में न केवल निजी वीरता ही है, वरन् वीरत्व-संचार करने की शक्ति भी है, पुरुष को देश की स्वतंत्रता के लिए युद्धोत्तेजना और प्रेरणा देने का चातुर्य भी है। इस प्रकार वह गृह की सीमाओं में बद्ध पुरुष की कामपूर्ति का साधन नहीं रह जाती। गृहलक्ष्मी तो वह है ही, जिसके प्रेम और स्नेहयुक्त सहयोग से "घर गृहस्थ का सच्चा इन्द्र-भवन बनि-जाय", साथ ही बाह्य क्षेत्र में भी वह पति की सहयोगिनी है। पति के अभाव में भी वह हतोत्साह अबला की भाँति सम्मुख नहीं आती। उसमें स्वावलंब की शक्ति है, कर्तव्य-निर्धारण की बुद्धि है, तेज और बाहुबल है।

राष्ट्रीयतावादी नारी-भावना और समाज-सुधार-वादी नारी-भावना की सीमाएँ मिली हुई हैं। कवि प्राचीन वीरांगनाओं का चरित्रगान इस लिए करता है कि वह तत्कालीन नारी-समाज में सुधार चाहता है।[4] जब तक देश में कमला, दुर्गा, हाड़िनि,

---

[1]वही, सुमित्रा, पृ० २५४-५२९, १०-२७-६

[2]वही, रेणुका, पृ० २८९, २४

[3]वही, विदुला पृ० २९१, २५

[4]धन्य धन्य भारत-छत्रानी सुयश तुम्हारा गाता हूँ।
फिर भारत में वीर नारियाँ जन्में यही मनाता हूँ॥
वीर-नारियाँ माता बनि बनि वीर-पुत्र उपजायेंगी।
तब भारत की सब विपत्तियाँ तुम द्रुतम भग जावेंगी।"
(वही : कमला पृ० २४)॥

आदि जैसी क्षत्राणियाँ न उत्पन्न होंगी, तब तक देश के संकट दूर नहीं हो सकते, किन्तु ललनाओं की दशा का ध्यान करके तो कवि के आँसू नहीं रुकते।[१] "अब तो भारत की सब नारी डरती है लखिके तरवार"[२] और इसी कारण पुरुषों पर भी कायरपन छा गया है।

इस परिस्थिति का कारण है स्त्रियों की सामाजिक दशा। उस दशा को लिखते हुए कवि का हृदय क्षुब्ध हो उठता है।[३] जिसको कवि ने "अनुकूल आद्याशक्ति की सुखदायिनी स्फूर्ति" की मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति "नर-जाति की जननी तथा शुभ शांति की स्रोतस्वनी" माना[४] है, उसकी दुर्गति और पतन कवि के लिए असह्य है। पतन और दुरवस्था का मूल कारण है शिक्षा का अभाव। शिक्षा और विद्याध्ययन के परम महत्त्व को स्वीकार करता हुआ[५] आधुनिक कवि पुरुप-स्त्री की समान रूप से शिक्षा को देश की उन्नति का अनिवार्य साधन मानता है।[६] अर्द्धाङ्गिनी होने के नाते भी पूर्ण शरीर की स्वस्थता के लिए स्त्री-शिक्षा आवश्यक है :

"विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयगी—
अर्द्धाङ्गियों को भी सु-शिक्षा दी न जब तक जायगी।
सर्वाङ्ग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की—
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगा वातकी ? ॥"[७]

प्राचीन से वर्तमान की तुलना करता हुआ कवि देखता है कि जिस भारत में गार्गी और मैत्रेयी-जैसी विदुषियाँ उत्पन्न हुई थीं, वहीं "अविद्या की मूर्ति-सी कुल-नारियाँ" होती हैं। पति के शिक्षित और स्त्री के अशिक्षित रहने से दाम्पत्य जीवन निर्विघ्न नहीं चलता;

---

[१] आंसू रुकते नहीं, आज की
ललनाओं का करके ध्यान,
उन्हें सुमति दे दशा सुधारो,
साहस दो सबको भगवान।
(द्वारकाप्रसाद गुप्त, 'रसिकेन्द्र' आत्मार्पण; ५ वाँ सर्ग पृ.५७.)

[२] भगवानदीन—वीर-क्षत्राणी : [illegible]नदेवी पृ १५.

[३] मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान खंड : स्त्रियां पृ० १३५, २२७.

[४] वही, पृ १३५, २२८.

[५] वही, भविष्यत् खंड : शिक्षा, पृ० २७४,
मिश्रबंधु—भारत विनय : स्त्री, पृ०५५, २५७-२५८

[६] जब तक विद्या पुरुषों सरिस पावैंगी दुहिता न मम
तब तक मेरी उन्नति अलभ है अकाश कुसुम सम।
(मिश्रबंधु—भारत-विनय : स्त्री पृ० ५५, २५१.)
देखिए "स्त्रीशिक्षा" गृहलक्ष्मी, पौष संवत् १९७५.

[७] मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : भविष्यत् खंड : स्त्री-शिक्षा पृ० १७५.

स्त्रियाँ कलह-कुशल हो गई हैं, गंदे गीतों में रुचि रखती हैं, पति से भी अधिक आभूषणों से प्रेम करती हैं।[1] किन्तु कवि की दृष्टि में इन दोषों के लिए उत्तरदायी नारी नहीं हैं :

क्या दोष उनका किन्तु जो उनमें गुणों की है कमी ?
हा ! क्या करें वे जब कि उनको मूर्ख रखते हैं हमी ॥[2]

बाबू छेदालाल ने 'अबलोन्नति-पद्यमाला' की प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा पंचम कविताओं में स्त्री-शिक्षा की समस्या पर बड़ी व्यावहारिक रीति से प्रकाश डाला है। प्रथम तीन—'चंद्रकला की जीवनी', 'अविद्या का परिणाम' तथा 'मूर्ख अबला' कविताओं में कवि ने दिखाया है कि शिक्षा के अभाव में स्त्रियाँ कितनी मूर्ख और ज्ञानहीन होती हैं, उनकी अशिक्षा उनके लिए तो दुखकारी है ही, साथ ही देश और समाज की उन्नति में भी बाधक है। शिक्षित न होने से एक ओर तो वे स्वावलंबिनी नहीं हो सकतीं, और ऐसी अवस्था में वे दुनिया से छली जाती हैं, कभी-कभी कुप्रवृत्तियों में भी पड़ जाती हैं।[3] दूसरी ओर अशिक्षिता माता अपनी संतान को उचित रीति से नहीं पाल सकती[4] और गृह को कलह के द्वारा नर्क-सदृश बना देती हैं।[5] फलतः कवि की दृढ़ धारणा है कि "नारी-शिक्षा बिना न कोई उन्नति का पथ है आसान।" जो लोग स्वार्थ-वश या मूर्खता-वश विद्या को स्त्रियों के लिए हानिकर समझते हैं, उनसे कवि का सोदाहरण कहना है कि "विद्या पढ़ कर बुद्धि और भी दिन दूनी बढ़ जाती है," 'विद्या स्त्री को पथ-भ्रष्ट नहीं करती, वरन् उसका चातुर्य, कुशलता और सौजन्य बढ़ाती है।'[6]

स्त्री-शिक्षा के अतिरिक्त हिन्दू-समाज में विविध कुप्रथाओं के कारण स्त्रियों की जो हीनावस्था है, उसे कवि दूर करना चाहता है। पर्दा-प्रथा के कारण, स्त्रियों का गृहों की बंदिनी रहना, दहेज-आदि की प्रथा के कारण पुत्री का जन्म अप्रिय मानना, बाल-विवाह करना, और इस प्रकार विधवाओं की संख्या बढ़ाना, विधवाओं से दुर्व्यवहार तथा बहुविवाह आदि कवि के मस्तिष्क की हलचल का कारण है। इन कुप्रथाओं के कारण नारी ने, जो कवि की दृष्टि में सर्वथा आदरणीय तथा समान अधिकारों की अधिकारिणी है, समाज में अपने उच्च स्थान को तथा अपने व्यक्तित्व को खो दिया है। आधुनिक कवि इस सामाजिक दशा से सर्वथा असंतुष्ट है। वह मानवतावादी विचारधारा का विकास कर रहा है; नारी

---

[1] वही—वर्तमान खंड : स्त्रियाँ पृ. १२५—१२६.

[2] मैथलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान खंड-स्त्रियाँ, पृ. १२६

[3] बाबू छेदालाल—अबलोन्नति-पद्यमाला : 'चंद्रकला की जीवनी' 'पतिपत्नी-संवाद'

[4] वही—'अविद्या का परिणाम'

[5] वही— "मूर्ख अबला"

[6] वही—'पतिपत्नी-संवाद'

क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियां ?
रण-रंग, राज्य, सुधर्म-रक्षा, कर चुकीं सुकुमारियाँ।"
(मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान-खंड, स्त्रियाँ, पृ० १२७.)

को वह समाज की इकाई के रूप में देखने लगा है जिसको शिक्षा और अधिकार आदि उतने ही वांछनीय हैं, जितने पुरुष को। पुरुषों के स्त्रियों के प्रति अत्याचार को देश के नाश का मार्ग मानता है:

ऐसी उपेक्षा नारियों की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे।
भागें न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियाँ,
पातीं स्त्रियाँ आदर जहां रहतीं वहीं सब ऋद्धियां॥[1]

यहाँ कवि ने मनुस्मृति के "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता" की प्रतिध्वनि की है। किन्तु स्मृतियों ने जिस प्रकार नारी के लिए विविध प्रतिबंध बनाए और अनेक निन्दात्मक शब्द कहे, आधुनिक कवि उनके विरुद्ध है। मनु आदि के आदेशों के अनुसार निर्मित समाज-व्यवस्था से क्षुब्ध कवि कहता है :

"मनू जी तुमने यह क्या किया
किसी को पौन, किसी को पूरा, किसी को आधा दिया"[2]

समाज-सुधार के क्षेत्र में एक अन्य, और सर्वथा नवीन भावना का विकास हुआ। हम देख चुके हैं कि गोपाल कृष्ण देवधर आदि स्त्रियों को समाज-सेवा के लिए उत्साहित और प्रस्तुत कर रहे थे। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रियप्रवास' की राधा का निर्माण करके उस प्रेरणा का साहित्यिक उत्तर दिया। राधा—व्रज की गोपी और कृष्ण की प्रेयसी— लगभग १५ वीं शताब्दी से हिन्दी-काव्य की प्रमुख नायिका रही है (और संस्कृत-काव्य में उससे भी कई शताब्दी पूर्व से)। किन्तु अभी तक वह प्रायः शृङ्गारिक लीलाओं के ही क्षेत्र में स्थान पाती रही थी और कवियों-द्वारा नवोढ़ा, प्रगल्भा, अभिसारिका, प्रवत्स्यत्पतिका-आदि के रूप में ही देखी जाती रही थी। अयोध्यासिंह उपाध्याय ने राधा को एक सर्वथा नवीन रूप में उपस्थित किया। प्रियप्रवास के चतुर्थ सर्ग में राधा का परिचय देते हुए कवि ने उन्हें "तन्वंगी कल-हासिनी सुरसिका क्रीडा-कला पुत्तली" कहने के साथ-साथ; "रोगी वृद्धजनोपकारनिरता सच्छास्त्रचिन्तापरा" भी कहा है। ये विशेषण निरर्थक नहीं हैं। राधा प्रेमिका अवश्य है, किंतु वह स्वार्थमय मोह की संकीर्ण

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त—भारत-भारती : वर्तमान खंड : स्त्रियां, पृ० १३६.

[2] श्रीधर पाठक –भारत गीत :: मनूजी, पृ० ७६.

नहीं तरुनिगन विथा जात आंखों से देखी
ऐसी दारुन दशा कहीं जग में नहिं लेखी॥
पुरुषों-सी गुनवती पुरुषगन-सी विज्ञानी।
विद्यावती महान युवती सिगरी सुखदानी॥
अपराध बिना मनु कैद की दुसह जातना नित सहैं
देखैं न कभी जग की दशा बंद भवन ही में रहैं।

मिश्रबंधु—भारत-विनय : स्त्री, पृ० ५२.

गली को छोड़ कर 'निस्वार्थ प्रणय' के प्रशस्त राजमार्ग पर बढ़ती है। उसके प्रणय में ही परहित-भावना उत्पन्न होती है। स्वीय प्राणेश में परम प्रभु का दर्शन करके, उसे अमित रूप-रंगों में देखते हुए राधा का विश्व-प्रेम जाग्रत होता है,[1] यद्यपि इस त्यागपूर्ण मनोवृत्ति तक पहुँचने में राधा को विकट अंतर्द्वंद्व का सामना करना पड़ता है, तो भी उसने अपने व्यष्टि-प्रेम को समष्टि-प्रेम में विकसित कर लिया, यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं। प्रिय और परमेश की भक्ति को अभिन्न मानती हुई[2] वह अव्यक्त परमात्मा के व्यक्त रूपों—जगत्—से प्रेम स्थापित करती है :

विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के,
सारे प्राणी सारे गिरि-लता बेलियां वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा,
भावों सिक्ता परम प्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है॥"[3]

नवधा भक्ति की नई परिभाषायें देती हुई वह अति उत्पीड़ितों, रोगी तथा व्यथित जनों की बातें मन लगाकर सुनना श्रवण-भक्ति के अन्तर्गत, भव-हितकारी, सर्वभूतोपकारी, पतितों को उठाने की चेष्टाओं को दासत्व-भक्ति के अंतर्गत, कंकालों, विवश विधवाओं, अनाथों, अनाश्रितों, तथा उद्विग्नों का स्मरण करके उन्हें त्राण देना स्मरण-भक्ति के अंतर्गत, संतापितों को शान्ति प्रदान करना, निर्बोधों को सुमति तथा पीड़ितों को औषधि देना, तृषित को जल तथा भूखे को अन्न देना अर्चना-भक्ति के अंतर्गत रखती है।[4] कृष्ण के सन्देश[5] से उसके विचार और भी दृढ़ता ग्रहण करते हैं। कृष्ण के वियोग में राधा का कार्य-क्रम रोना-चिल्लाना या पुष्प-शय्या पर तड़पना नहीं रहता, वरन् वह व्रजवासियों की सेवा में तन-मन से लीन हो जाती हैं। यदि कृष्ण-वियोग के दुःख से कोई गोपी मूर्छित हो जाती है, तो राधा उसका उपचार करती हैं, वृद्ध और रोगी जनों की सेवा में निरत रहती हैं, कलह को दूर करके क्लेशों-दलित गृह में शांति धारा बहा

---

[1] मेरे जी में अनुपम महा विश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में॥
पाई जाती विविध जितनी वस्तु हैं जो सबों में।
मैं प्यारे को अमित रंग औ रूप में देखती हूँ॥
तो मैं कैसे न उन सबको प्यार जी से करूंगी।
यों है मेरे हृदय-तल में विश्व का प्रेम जागा॥
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—प्रियप्रवास, सर्ग १६, पृ० २४२-४३, १०४, १०५.)

[2] इसलिए प्रिय की परमेश की,
परम पावन भक्ति अभिन्न है। (वही, १६ सर्ग, पृ० २४६, १२६.)

[3] प्रिय-प्रवास, १६ सर्ग पृ० २४४, ११७.

[4] वही, १६ सर्ग, पृ० २४५-२४६, ११८-१२५.

[5] वही, १६ सर्ग, पृ० २३३-२३४, ४१-४६.

देती हैं, दुष्टों को सदुपदेश देकर सन्मार्ग पर लगाती हैं, और सुजनों की छाया के समान रक्षा करती हैं। इस प्रकार :

"वे छाया थीं सुजन शिर की शासिका थीं खलों की।
कंगालों की परमनिधि थीं औषधी पीड़ितों की॥
दीनों की थीं भगिनी जननि थीं आश्रितों की।
आराध्या थीं व्रज अवनि की प्रेमिका विश्व की थीं॥"

राधा को समाज-सेविका के नए वेष में देखने का कारण यह है कि उपाध्याय-जी ने कृष्ण को भी दक्षिण और शठ नायक के रूप में न देखकर देश-भक्त और लोक-सेवक के रूप में ही देखा है। फलतः कवि का यह भरत-वाक्य, जो उसकी समस्त विचार-धारा का सार है, विशेष महत्त्व रखता है :

"सच्चे स्नेही अवनिजन के देश के श्याम जैसे।
राधा जैसी सदय-हृदया विश्व के प्रेम डूबी।
हे विश्वात्मा भरत भुवि के अंक में और आवें।"[2]

राष्ट्रीयता तथा समाज-सुधार-सम्बन्धी नारी-भावना के अतिरिक्त रूपकात्मक नारी-भावना का भी वीज हम इस युग में पाते हैं। भारत-भूमि को मातृ-रूप में देखने की प्रवृत्ति का प्रारंभ इस युग में हो जाता है। पीछे कह चुके हैं कि इस युग के राष्ट्रीय आंदोलन की प्रमुख विशेषता थी वंकिमचंद्र चटर्जी के गीत वंदे मातरम् का प्रचार। इस गीत से प्रेरणा ग्रहण करके हिन्दी के कवियों ने भी भारत-भूमि पर मातृ-रूप का आरोप करना प्रारंभ किया।[3] जन्म-भूमि भारत को माता के रूप में देखकर कवि ने माता की सभी विशेषताओं का दर्शन उसमें किया। जिस प्रकार माता की स्नेहमयी क्रोड़ में शिशु पलते हैं तथा उसके कल्याणमय इंगितों में शिक्षित और उन्नत बनते हैं, माता के प्रति अपने कर्तव्य को भूल कर ही पथभ्रष्ट होकर दुख भोगते हैं, उसी प्रकार भारत-माता भी अपने पुत्रों की पालनकर्त्री तथा मंगलदायिनी है। विदेशी शासन के दुःखों का कारण यही है कि उस माता की सेवा तथा अनुसरण को भारतवासी भूल गए हैं। फलतः कवि भारतवासियों की जड़ता और विवश दुर्बलता को दूर करने के लिए भारत-माता से ही प्रार्थना करता है :

"भारत-माता! अपने इन पुत्रों को पहले का-सा बल दे,
हे भारती! दयाकर क्षण में सब की दुर्बलता तू दल दे।"[4]

माता के रूप में "भारत धरनि" की वंदना करते हुए श्रीधर पाठक ने उसे ज्ञान-विज्ञान देनेवाली, प्रेम की वर्षा करनेवाली, कुबुद्धि आदि का नाश करनेवाली कहा है।[5]

---

[1] अयोध्यासिंह उपाध्यय—प्रिय प्रवास, वां सर्ग, पृ० १७ २५६, ४९,

[2] वही, पृ० २५१, ५४.

[3] माधव शुक्ल—भारत-गीतांजलि, वन्दे मातरम्, पृ० ५.

[4] भारती-वीणा—पहली झंकार, पृ० ५०, १२.

[5] श्रीधर पाठक—भारत गीत: भारत धरनि पृ० १५.

कहीं-कहीं इस रूपकात्मक मातृ भावना का सामंजस्य शाक्तों की देवी-कल्पना से करने का भी प्रयत्न किया गया है।[1]

हिन्दी-काव्य में प्रकृति-वर्णन अभी तक उद्दीपन-आदि के ही रूप में हुआ था, उस में कभी-कभी मानवी रूपों का आरोप होता था: जैसे जमुना में विरहिणी का या पवन में प्रमत्त व्यक्ति का आदि। किन्तु अँग्रेजी साहित्य के प्रभाव से जब अभिव्यञ्जनात्मक काव्य की रचना प्रारंभ हुई तब कवि का प्रकृति का चित्रण नए ही ढंग से होने लगा। एक ओर तो कवि प्रकृति-सौंदर्य के याथातथ्य वर्णन में, आलंबन के रूप में प्रवृत्त हुआ, और दूसरी ओर अपनी निजी इच्छा के अनुरूप उसमें मानवीय रूपों का दर्शन करने लगा। श्रीधर पाठक इस प्रकार की प्रवृत्ति के प्रारंभकर्ता हैं। उन्होंने प्रकृति पर नारी रूप का आरोप करते हुए 'प्रिया' के रूप में देखा है। किन्तु अभी कवि के हृदय में शुद्ध प्रेम-भाव का उदय नहीं हुआ है, पूजा का भाव ही प्रधान है। इसका कारण यह है कि भक्ति-काल और रीतिकाल की नारी-भावना का विरोध करते हुए कवि अभी तक नारी के के प्रति पूजात्मक दृष्टिकोण का ही विकास कर सका है, उससे कोई स्नेह-संबंध नहीं स्थापित कर पाया है। इस युग के नवीन कवि "शृंगार से इतने भयभीत हो गए थे कि उसका स्पर्श करने में भी संकोच करने लगे थे।" फलतः नारी को कवि "देवि, माँ, सहचरी" के रूप में तो देख सका है, किन्तु "प्राण" के रूप में देखना अभी अवशिष्ट है। शृंगार संम्बधी इस कुंठा का अंत, हम देखेंगे, परिवर्तन युग में छायावादी कवियों में प्रयत्नों से होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नवीन राष्ट्रीय चेतना तथा समाज सुधार की लहर से प्रभावित होकर संक्रान्ति युग के कवि ने नारी भावना में आमूल परिवर्तन कर दिया। प्राचीन भारतीय आदर्शों की ओर झुकता हुआ भी वह स्मृतियों आदि की निन्दात्मक भावना तथा काव्य शास्त्रों आदि की शृंगारात्मक भावना का अन्त कर रहा है। वह नारी को सहधर्मिणी, गृहलक्ष्मी, शक्ति तथा देवी के रूप में देखने लगा है। नारी को उसने दया, देश प्रेम, विश्व प्रेम आदि नवीन गुणों से युक्त पाया है। भारतीय समाज की स्त्रियों में कुछ त्रुटियाँ हैं अवश्य, किन्तु उनको कवि नारी भाव के स्वभावगत दोषों के रूप में नहीं देखता। इसके विपरीत स्त्रियों के उन दोषों के लिए भी उत्तरदायी पुरुष वर्ग ही माना गया है, जिसने बहुत अधिक काल से उसे पददलित तथा अशिक्षित रखा है, तथा अज्ञानान्धकार में डाल कर उसके गुणों को विकसित होने का अवकाश नहीं दिया। कवि का विश्वास है कि नारी में पुरुष तथा समाज को कल्याण की ओर अग्रसर करने की पूर्णशक्ति वर्तमान है। नवोदित कवि 'प्रसाद' के यह शब्द संक्रांति-युग की नारी भावना के प्रतिनिधि हैं:

---

[1]वही, "पुन्य मातृधरे" पृ० ९२.

[2]वही, 'प्रकृति वंदना' पृ० ११.

"दुख में मित्र समान अरु गृह में गृहिणी होत।
जीवन की सहचरी सी, रमणी रस की सोत" ॥[1]

हम देखेंगे कि अगले युद्ध में इस भावना का पूर्ण विकास होता है। वास्तव में संक्रान्ति-युग परिवर्तन-युग के लिए वैसा ही है, जैसे मध्याह्न के लिए प्रभात होता है।

---

[1]जयशंकर प्रसाद—चित्राधारः सज्जन, नांदी पृ० ९२.

अध्याय ३

परिवर्तन-युग (१६२०-१६३७)

युग की प्रमुख भाव-धारायें

परिवर्तन शब्द यहाँ सापेक्ष होकर आया है, अन्यथा परिवर्तन तो किसी विशेष काल की सम्पत्ति नहीं, वह सदैव ही नदी की भाँति गतिशील रहता है। १६२०-१६३७ के काल को परिवर्तन-युग इसलिए कहा गया है कि मध्ययुगीय नारी-भावना से नाता तोड़ने की जिस प्रक्रिया का सूत्रपात संक्रान्ति युग में हुआ था, वह इस युग में अपनी पूर्ति पाती है, और कई नवीनताओं का समावेश करती हुई परिवर्तन की रूपरेखा स्पष्ट कर देती है। इस युग में गतयुगीय इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और स्थूल बौद्धिकता के परिधान को छोड़कर कविता छायावाद के नये मार्ग पर अग्रसर हुई और फलतः नारी-भावना भी कल्पना और भावुकता से संयुक्त हुई। वह स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ने लगी। साथ ही गत युग में शृंगार सम्बन्धी जो एक कुंठा का भाव हम देख चुके हैं, वह अब धुलने लगा। अंग्रेज़ी साहित्य के प्रभाव से कवि परिष्कृत बुद्धि और सहानुभूति के साथ सौंदर्य तथा प्रेम का स्वागत करने लगे।

इस युग की नारी-भावना को ठीक-ठीक समझने के लिए उन भावधाराओं से परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है, जो युगीय कवि की प्रमुख संचालक थीं। परिवर्तन युग की प्रमुख भाव-धारायें, जिनके मध्य नारी-भावना का विकास हुआ, तीन थीं :—

१. छायावाद तथा रहस्यवाद

२. राष्ट्रीयता

३. समाज-सुधार

इन वर्गों में कवियों का विभाजन असफल प्रयत्न होगा, क्योंकि प्रत्येक वर्ग का कवि अपने को दूसरे वर्ग का भी सिद्ध करता है। छायावादी कवि में राष्ट्रीयता का अभाव है, या वह सुधार-भावना से प्रभावित नहीं है, राष्ट्रीय कवि सुधारवादी नहीं है और छायावाद से अस्पृश्य है, सुधारवादी कवि राष्ट्रीयता और छायावाद से दूर है, इस प्रकार के कथन सर्वथा दोषपूर्ण होंगे। इसलिए हम आगे 'भावना' को ही देखेंगे, चाहे एक ही कवि में एक से अधिक प्रकार क्यों न मिलें।

इस युग का विशेष सम्बन्ध प्रथम महायुद्ध (१६१४—१८) से जोड़ा जाता है। आधुनिक काव्य में जो 'पलायन प्रवृत्ति' है, उसका कारण अँग्रेज़ी सरकार की दमन नीति बतायी जाती है। इस पलायन का कारण चाहे राजनैतिक रहा हो अथवा सामाजिक और आर्थिक, हमारा सम्बन्ध तो इस तथ्य से है कि छायावादी और रहस्यवादी काव्य

की प्रमुख प्रवृत्ति पलायनवाद है। कवि जीवन की यथार्थताओं और देश की परिस्थितियों से आँखें मींच कर एक कल्पना-लोक के निर्माण में रत दिखाई पड़ता है। प्रकृति का उन्मुक्त सौंदर्य और नारी उसकी कल्पना के प्रश्रय हैं। पलायन की अभिव्यक्ति प्रमुखतः चार धाराओं में होती है—१. दुःखवाद २. रचनात्मक आदर्शवाद (Utopiau idealism) ३. सौंदर्योपासना और ४. परोक्ष प्रीति। इन सभी धाराओं का सम्बन्ध युगीय नारी-भावना से है। दुःखवाद के फलस्वरूप हम नारी के प्रति भक्तियुग की-सी निवृत्तिपरक और घृणात्मक भावना नहीं पाते। इसके विपरीत संसार की ज्वाला से दग्ध कवि नारी के सौंदर्य तथा स्नेहांचल में सुख-शांति खोजता है[1] और उसे हृदय की अधिष्ठात्री बना अंधकारमय जगत् में जीवन की ज्योति के रूप में देखता है।[2] इस प्रकार नारी की करुणा में उसके कल्याणी रूप की सृष्टि होती है और वह विश्व-मंगलकारिणी तथा मार्ग-प्रदर्शिका के रूप में अवतरित होती है। युगीय काव्य की 'श्रद्धा' आदि इसी दृष्टिकोण का फल है।

आधुनिक कवि यद्यपि दुःखवादी है, किन्तु विश्वकल्याण और सुधार की भावना[3] से युक्त है। नवनिर्माण की आकांक्षा और नव प्रभात की आशा उसकी निराशा को आलोकित कर देती है। वह उसे वितृष्ण और निष्क्रिय नहीं बनाती। इसके विपरीत रचनात्मक आदर्शवाद की ओर अग्रसर करती है। उसके रचनात्मक दृष्टिकोण की प्रमुख पात्री नारी होती है। नारी में आधुनिक कवि ने जो शक्ति-शक्ति प्रेम की, दया और सहानुभूति की, सेवा और त्याग की, करुणा और ममता की, सृजन और संहार की – पाई है, उसके कारण कवि की नव सृष्टि की भावना का केन्द्र नारी हो जाती है। पुरुष के चरित्र-सम्बन्धी उसके विश्वास एक नया रूप धारण करते हैं। वह सोचता है कि "कठोरता का उदाहरण है पुरुष और कोमलता का विश्लेषण है स्त्री-जाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है"।[4]

---

[1]हृदय जिसकी कांत छाया में लिए निश्वास,
थके पथिक समान करता व्यजन ग्लानि विनाश।
(प्रसाद— कामायनी: श्रद्धा, पृ० ७२)

देखिए—हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० ४३, २.

[2]प्रेयसी, जग है एक
भटकता शून्य स-तम अज्ञात,
एक ज्योति सी उठो
गिरो पथ पथ पर बन प्रात।
(रामकुमार वर्मा—रूप-राशि, पृ० ४, १.)

देखिये हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ७२,४

[3]जग के उर्वर आँगन में, बरसो ज्योतिर्मय जीवन। (पंत)
काट तिमिर के बंधन, उतरो फिर, भर दो पग पग नव स्पंदन।
(निराला—परिमल: वासंती, पृ० ४८)

[4]प्रसाद—अजातशत्रु, २, ४, पृ० १२६.

"पुरुष समाज का न्याय है, स्त्री दया है, पुरुष प्रतिशोधमय क्रोध है, स्त्री क्षमा, पुरुष शुष्क कर्त्तव्य है, स्त्री सरस सहानुभूति, पुरुष बल है और स्त्री हृदय की प्रेरणा"[1] तथा "स्त्री की कोमलतामयी सदाशयता और सहानुभूति समाज के संतप्त जीवन के लिए शीतल अनुलेप का कार्य करता है"।[2] फलतः जगत के टूटते हुए जीवन को, संघर्ष तत्पर समाज को, पाशविक मनुष्य को सँभालने और सुधारने के लिए कवि ने नारी-हृदय की विभूतियों का स्मरण किया है, तथा उसकी शक्ति का आवाहन किया है। कवि ने सभ्यता की रीढ़ की हड्डी के रूप में नारी को देखा है। उसी के वरद हस्त से कवि की सृष्टि में सुख-शांति और श्री का विस्तार होता है, पथ-भ्रष्ट मानव उसका सहारा लेकर चिरन्तन आनन्द की ओर अग्रसर होता है।

छायावादी कवि सौंदर्योपासक है और श्री अज्ञेय के शब्दों में 'सौंदर्योपासक स्पष्टतया वह व्यक्ति है जो यथार्थताओं का सामना न करके एक रक्षित जीवन व्यतीत करता है।[3] इसके मूल में, आडलर के सिद्धान्तानुसार कोई अतृप्त वासना खोजी जा सकती है।[4] जो भी हो, आज का कवि सौंदर्य और पीड़ा के संयोग को कविता की प्रेरणा मानता है।[5] सौन्दर्योपासक कवियों ने सौंदर्य की प्रतिमूर्ति नारी को अनेक दृष्टिकोण से, नाना महिमा, सौंदर्य की प्रेयसी प्रतिमा बनकर मनुष्य-समाज को स्वतंत्र विचारों की ओर मौन

[1]महादेवी वर्मा हमारी शृंखला की कड़ियाँ १, पृ० ४.

[2]वही—१, पृ. ९.

[3]माडर्न रॉइटवार हिन्दी पोइट्री—विश्व भारती, अगस्त, १९३७.

[4]"प्रत्यक्ष जीवन में सौंदर्य उपभोग से वंचित रह कर ही तो छायावादी कवि ने अतीन्द्रिय सौन्दर्य के चित्र आंके।"

(नगेन्द्र—विचार और अनुभूति 'साहित्य की प्रेरणा')

[5]"सौन्दर्य के उद्दीपन से जब जीवन के संचित अभाव अभिव्यक्ति के लिए फूट पड़ते हैं तभी तो कविता का जन्म होता है। कविता के उद्रेक के लिए सौन्दर्य का उद्दीपन अर्थात् आनन्द और अभाव की पीड़ा दोनों का संयोग अनिवार्य है।" (वही)

सुमित्रानन्दन पंत की यह पंक्तियाँ इस कथन की साक्षी हैं :

"हाय मेरा जीवन,
प्रेम औ आँसू के कन
आह, मेरा अक्षय धन,
× × ×
अपरिमित सुन्दरता औ मन
विधुर उर के मृदु भावों से
तुम्हारा कर नित नव शृंगार,
पूजता हूँ मैं तुम्हें कुमारि
मूँद दुहरे दृग द्वार

आवरणों और रंगों में देखा है। पाश्चात्य साहित्य में चित्रित नियो-प्लेटोनिक सौंदर्य चित्रों की आभा हमारे काव्य में भी उद्‌भासित हुई। अंग्रेज़ी के सुप्रसिद्ध सौंदर्योपासक कवि शेली अलौकिक सौंदर्य का दर्शन करने से पहले नारी-रूप की उपासना सापेक्ष समझते थे। उनकी सम्मति में जो ज्ञानालोक सुन्दर और अमर है, उसकी क्षणिक आभा नारी में दिखाई देती है। हिन्दी के आधुनिक कवि निराला लिखते हैं "आकाश की आत्मा सूर्य का खुला हुआ प्रकाश ही पृथ्वी के ससीम सहस्रों पादपों के अखिल जीवों में रूप की कमनीय कांति खोल देता है, भावना को अपार्थिव एक स्वर्गीय कुछ कर देता है, भीतर से उभाड़ कर भूमा के प्रशस्त ज्योतिर्मण्डल में ले आता है। उस स्वतंत्र प्रकाश के स्नेह स्पर्श से सुप्त प्रकृति की तंद्रा छुट जाती, उसके सहस्रों रूप अपनी लाख-लाख आँखों से अपने ही विभिन्न अनेक अम्लान चित्रों को प्रत्यक्ष करते हैं, हृदय के अंधकार की अर्गला, जिसके कारण प्रकाश-पुंज प्रवेश नहीं कर पाता, खुलकर गिर जाती, ज्योति का प्रवाह, जो चारों ओर बहता हुआ सृष्ट जीवों की स्वाभाविक स्वतंत्रता का स्रोत खोलता फिरता है, हृदय भर जाता है। मोह का मंत्र-मुग्ध आवेश कट जाता है। पुलकित हो हृदय अपने हल्के ऐश्वर्य से प्रसन्न खिल जाता है, उसी तरह जैसे ज्योति के एक ही लघु-चुंबन से पुष्पों के प्राण खुल जाते, पल्लव प्रसन्न हो हिलने डोलने, झूमने घूमने लगते हैं।

यह ज्योति प्रवाह अरूप है।......साहित्य में इस अरूप की स्वतंत्र सत्ता को नारियों में स्थिर रूप दिया गया है।[1] कलाविदों ने वही पुरुष और प्रकृति का सौहार्द्र, दोनों का अपार प्रेम निरंतर योग देखा। आकर्षण दोनों के संभोग विलास में ही है, वह और अच्छा जब एक ही आधार में हो। यही बीज मंत्र है, जिसका जप कर उन्होंने नारियों के अगणित अपार रूपों में सिद्धि प्राप्त की।......रूप की चंपा अपने स्नेह की छाया डालकर पल्लवों के भीतर अधखुली कोमल सरल चितवन से अपरिचित संसार को देखती, न जाने किस अज्ञात चंचल भावावेश में डोलकर अपने गृह के पत्रद्वार बंद कर लेती है, अरूप के इस चपल रूप-स्पर्श से कवि के मस्तिष्क की सुप्त स्मृतियाँ तत्काल आँखें खोल देतीं, रूप की स्वर्णच्छवि चित्त के चित्र-पट पर अपनी सम्पूर्णता के साथ सुडौल अंकित हो जाती है। वह मूक वाणी में प्राणों का संचार कर देता है ...... साहित्य के एक पृष्ठ में एक विकच नारी मूर्ति तम के अतल प्रवेश से मृणाल दंड की तरह अपने शत-शत दलों को संकुचित संपुटित लेकर बाहर आलोक के देश में अपनी परिपूर्णता के साथ खुल पड़ती है। जड़ों में प्राण संचरित हो जाते, अरूप में भुवनमोहिनी ज्योति-स्वरूपा-नारी........ (कवि) भावना के हृदय में रूप की विदग्धता की आग भर देता है। नारी भावनामयी बन रूप के शिखर पर चिर काल बैठी रहती है, अमर अक्लांत वह अनुपम मूर्ति माइकेल एँजेलो की भावनामूर्ति की तरह मनुष्य जाति के हृदय की जाग्रत देवी, शक्ति की अपार

पान करता हूँ रूप अपार,
पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल-चलती दृग जल धार। (पल्लव : आँसू, पृ० २५-२७)

[1] इस भाव की पुष्टि के लिए देखिए—गोपालशरण सिंह—'सागरिका' पृ. ७१

इंगित से बढ़ाती हुई।[1] यह है एक आधुनिक सौंदर्योपासक कवि का दृष्टिकोण।

अस्तु, हम देखते हैं कि आधुनिक कवि नारीत्व के शाश्वत प्रतीक सौंदर्य, जो जड़ में चेतना उत्पन्न कर देता है, जीवन को अमृतमय कर देता है, के प्रति सजग हैं। किन्तु उसका दृष्टिकोण रीतिकालीन कवि के दृष्टिकोण से भिन्न है,। छायावादी कवि की सौंदर्य भावना में अतीन्द्रियता है और शिव का संयोग है। आधुनिक कवि न केवल नारी की वाह्य द्युति से लुब्ध है, वरन् उसकी आन्तरिक विभूतियों से भी प्रभावित है। वास्तव में मन की ही छवि को उसने तन पर छाई हुई देखा है।[2] छायावादी काव्य में सौंदर्य के प्रति उपभोग का भाव नहीं है, वरन् कौतूहल, विस्मय और अऐन्द्रिक गौरव का है। इस सम्बन्ध में नगेन्द्र का कथन है 'इसलिए उसकी अभिव्यक्ति स्पष्ट और मांसल न होकर कल्पनामय और मनोमय है। छायावादी कवि प्रेम को एक शरीरी भूख न समझ कर एक रहस्यमयी चेतना समझता है। नारी के अंगों के प्रति उसका आकर्षण नैतिक आतंक से सहम कर जैसे एक अस्पष्ट कौतूहल में परिणत हो गया है। इसी कौतूहल ने छायावाद के कवि और नारी के बीच अनेक झिलमिल पर्दे डाल दिये है।[3]" प्रगति-युग में हम इस भावना का वैषम्य देखेंगे।

प्रत्यक्ष से आँखें मींचनेवाला व्यक्तिवादी और अंतर्मुखी वृत्तिवाला कवि जब परोक्ष में सौंदर्य देखने लगता है, तो रहस्यवादी कहलाता है। वह अपरूप सत्ता से अपना सम्बन्ध स्थापित करके अपने सुख-दुख, विरह-मिलन के उद्‌गारों की अभिव्यक्ति करता है। यह संबन्ध शारीरिक नहीं होता, वरन् आत्मा और परमात्मा का होता है। व्यक्त और भौतिक सीमाओं से परे सुख और सौंदर्य की सृष्टि की जाती है, आत्मा-परमात्मा के बीच 'माधुर्य-भाव' की कल्पना करके प्रणय के गीतों का सृजन होता है। मध्य-युग में भी, जैसा कि हम भूमिका में कह चुके हैं, संतों ने अनन्यता, अभिन्नता और तीव्रता के कारण पति-पत्नी के रूपक को स्वीकार किया था। पश्चिमी रहस्यवादियों ने भी इस प्रकार के अलौकिक सम्बन्ध

---

[1]सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—प्रबंधपद्म : रूप और नारी

देखिए—सुमित्रानंदन पंत—ज्योत्सना पृ० १३४.

[2]"तुम चन्द्रवदनि, तुम कुंद दशनि
तुम शशि प्रेयसि, प्रिय परछांई।
उर में अविकच स्वप्नों का युग
मन की छवि तन पर छन छांई
श्री सुख सुखमा की कलि चुन चुन
जग के हित अंचल भर लांई"

(सुमित्रानंदन पंत—ज्योत्सना, पृ० ४५.)

को स्वीकार किया है।[१] आधुनिक काव्य में कबीर की, 'राम की बहुरिया' की पुकार के समान ही हम सुनते हैं :—

"नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ।
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ।
फूल को उर में छिपाये विकल बुलबुल हूँ।
एक होकर दूर तन से छाँह वह चल हूँ।
दूर तुमसे हूँ अखंड सुहागिनी भी हूँ।"[२]

राष्ट्रीयता और सुधारवादी धाराओं के कवि छायावादी और रहस्यवादी कवियों के समान पलायन में विश्वास नहीं रखते। वे देश और समाज के प्रति अधिक सजग रहे हैं। उन्हें प्रेम-कथायें विरह-गाथायें आदि रुचिकर नहीं।[3] जागृति के दूत के रूप में पुकार करके कवि से नवयुग के प्रति सचेत होने को कहते हैं—

"प्रेयसि का रूप बखान चुके,
गा निष्ठुरता का गान चुके,
रच रहे प्राण नूतन समाज,
आया जीवन अभ्युदय आज।[४]

ये कवि रहस्यवाद का भी विरोध करते हैं:

होगा क्या बनवा कर कविते तुहिन बिंदु की निर्मल माल
विस्मृति के असीम सागर में फैलाकर स्वप्नों का जाल।

---

1. "Bernard uses this figure to exhibit the nature of the experience as not homage or wonder rather love. A lord is feared, a father honoured, but a bridegroom is loved; and so the saint prefers the figure. To love God with one's whole being is to be wedded (*unpisse*) to God."

(जी० मैकग्रिगर-एस्थैटिक एक्स्पीरियंस इन रिलिजन : वैस्टर्न मिस्टिसिज़्म)

[२]महादेवी वर्मा—नीरजा, पृ० २६.

[3]नीरस हैं यह प्रणय कथायें
शुष्क विरह गाथायें भी,
मुझे निरर्थक सी जँचती हैं
मोहक मूक व्यथायें भी।
(तोरनदेवी लली—जागृति : ध्येय, पृ० ४९, ५०)

[४]वही—अभ्युदय पृ० ७३.

देखिये, माखनलाल चतुर्वेदी—हिम-किरीटिनी : पुष्प-उपहार, पृ० ५-६

निष्फल है निर्मम अतीत का मायायुत रहस्यमय गान,
सार रहित है उस अनंत की सुखमय मंद मदिर मुस्कान।[1]

प्रत्यक्ष आवश्यकताओं से आकृष्ट तथा देशोद्धार में प्रयत्नशील ये कवि छाया-वादी कवियों के निराशापूर्ण गीत नहीं सुनना चाहते। वे कवि के स्वर में उषा का नव सन्देश माँगते हैं :

"मैं नहीं चाहती संध्या के,
युग युग का जर्जर प्रणय गान,
हाँ मधुर उषा आगमन सुना
कैसा होगा कंचन विहान।"[2]

राष्ट्रीयता से अनुप्राणित काव्य का गहरा सम्बन्ध उस देश-व्यापी राष्ट्रीय आन्दोलन से है, जो प्रथम महायुद्ध के दिनों में स्वराज्य की निष्फल प्रतीक्षा करके अब स्वतंत्रता के लिए दृढ़ता से युद्ध करने को तत्पर हो गया था। गाँधी के सशक्त और प्रभावशाली नेतृत्व में इसका प्रारंभ हुआ। देश ने गांधी के दृढ़ स्वर[3] को सुना और सितंबर १६२० में उस बृहत् और व्यापक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ, जो अगले १५ वर्षों तक लगातार चलता रहा। इसी वर्ष से भारत के इतिहास में एक नया युग प्रारंभ हुआ। नागपुर कांग्रेस का महत्त्व इसीलिए बहुत अधिक है। इसमें प्रतिनिधियों की संख्या (पुरुष १४४१३, स्त्रियाँ १६६) तो बहुत अधिक थी ही, साथ ही अब प्रकट हुआ कि "निर्बल क्रोध और आग्रहपूर्वक प्रार्थनाओं का स्थान जिम्मेदारी का एक नया भाव और स्वावलंबन की स्पिरिट ले रहे थे।"[4] १६२१ की मार्च में देश भर असहयोग से उबल रहा था। सरकार का दमन-चक्र भी बड़े भयावह और विपाक्त रूप में जारी रहा। यह

---

[1] "रहस्यवाद का निर्वासन"—'सरस्वती' खंड १७, संख्या, २, १९२६

[2] तोरन देवी लली-जागृति : गायक, पृ० ६९

[3] युद्धान्त में शासकों द्वारा दी गई शर्तें पूरी नहीं की गई। गांधी पुनः मैदान में आये और उन्होंने १० मार्च को असहयोग योजना प्रथम बार प्रकट करते हुए घोषणा की कि "यदि हमारी मांगें पूरी स्वीकार न हुई तो हमें क्या करना चाहिए, इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। एक जंगली मार्ग खुल्लम खुल्ला या छिपे हुए युद्ध का है। इस मार्ग को छोड़िये, क्योंकि यह अव्यवहार्य है।......आज तो मैं हिंसा के विरुद्ध तर्क पेश कर रहा हूँ सो इस कारण कि परिस्थिति ही ऐसी है, और ऐसी अवस्था में हिंसा बिलकुल व्यर्थ सिद्ध होगी। अतएव हमारे लिए असहयोग ही एकमात्र औषधि है। यदि वह सब प्रकार की हिंसा से मुक्त रखी जाय तो यही सबसे अच्छी और रामबाण औषधि है। यदि असहयोग के द्वारा हमारा पतन और तेजी नाश होती है और हमारे धार्मिक भावों को आघात पहुंचता है, तो असहयोग हमारे लिए कर्त्तव्य हो जाता है।"
(पट्टाभि सीतारमय्या कांग्रेस का इतिहास, भाग २, अध्याय १, पृ० १३४-१३५.)

[4] कांग्रेस का इतिहास-भाग २, अध्याय २ पृ० १८६:

आन्दोलन १९२४ तक चलता रहा, किन्तु १९२४ में गाँधीजी के जेल से छूटने के बाद नेताओं ने असहयोग की विध्वंसकारिणी नीति के स्थानपर रचनात्मक ढंग से कार्य करना पसन्द किया। वेलगाँव-काँग्रेस (१९२४) में गाँधीजी ने सत्याग्रह के कार्यक्रम को वापस ले लिया, किन्तु १९२८ में पुनः एक संग्राम के बीज बोये जाने लगे। इसका मूल कारण था 'साइमन कमिशन'। इस वर्ष की महत्त्वपूर्ण घटना थी 'बारडोली-सत्याग्रह' और कलकत्ता-कांग्रेस, जिसने सरकार को अंतिम चेतावनी देते हुए यह प्रस्ताव पास किया- "अगर ब्रिटिश पार्लमेंट इस विधान को* ज्यों का त्यों ३१ दिसम्बर १९२९ तक या उसके पहिले स्वीकार कर ले, तो यह काँग्रेस इस विधान को अपना लेगी, बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन न हो। लेकिन यदि उस तारीख तक पार्लमेंट उसे मंजूर न करे, या इसके पहिले ही उसे नामंजूर कर दे, तो काँग्रेस देश को यह सलाह देकर कि वह करों का देना बन्द करदे और अन्य तरीकों से, जो पीछे निश्चित हों, अहिंसात्मक असहयोग का आंदोलन संगठित करेगी"[1] साथ ही इस प्रतीक्षा के समय के भावी-कार्यक्रम की रूप-रेखा भी खींची गई। इसमें एक निर्णय यह था "स्त्रियों की अयोग्यताओं को दूर करने के लिए प्रयत्न किया जायगा और उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में भाग लेने को प्रोत्साहित और आमंत्रित किया जायगा।"[2]

सन् १९२९ की तीव्रता से घटनेवाली घटनाओं ने शीघ्र ही सविनय-अवज्ञा-आंदोलन के दूसरे और पहिले से भी अधिक प्रबल दौर (१९३०) को आमंत्रित कर लिया। २६ जनवरी १९३० को देश भर में गाँव-गाँव और नगर-नगर में 'स्वाधीनता का घोषणा-पत्र'[3] सुनाया गया, जिसने शैथिल्य को दूर करके देश के जीवन में एक नवीन जागृति, स्फूर्ति और ओज भर दिया। उस दिन प्रकट हो गया कि "ऊपर-ऊपर दीखनेवाली शिथिलता और निराशा की तह में कितनी असीम भावना, उत्साह और स्वार्थत्याग की तैयारी दबी पड़ी थी। स्वदेश-भक्ति और आत्म-बलिदान के अंगारे राज-भक्ति या कानून और व्यवस्था की गुलामी की राख से केवल ढके हुए थे। जरूरत इतनी ही थी कि भावना एवं उत्साह के लाल अंगारों पर जमी हुई राख को फूँक मार कर हटा दिया जाय।"[4] फरवरी मास के मध्य में "सविनय अवज्ञा" की योजना तैयार की गई और १२ मार्च को साबरमती के रेतीले तट पर हजारों नर-नारी उस महान् राष्ट्रीय घटना को देखने के लिए एकत्र हुए जो 'एक महान् आन्दोलन का महान् आरंभ था।' इस आंदोलन में गाँधीजी ने देश की महिलाओं के सम्मुख भी कार्य-क्रम रखा था और गिरफ्तार होने से पहिले दान्डी में अंतिम सन्देश देते हुए उन्होंने कहा था—मेरी

---

*नेहरू कमिटी की रिपोर्ट में जो शासन विधान की योजना उपस्थित की गई थी।

[1] का० का इ० भाग ३, अध्याय ६, पृ० २८७.

[2] ,, ,, ,, अध्याय ९, पृ० २८९

[3] ,, ,, भाग २, अध्याय २, पृ० ३१४—५

[4] ,, ,, भाग ४ अध्याय २, पृ० ३१५

गिरफ़्तारी के बाद जनता या मेरे साथियों को घबराना न चाहिए।...हमारा मार्ग निश्चित है। गाँव-गाँव को नमक बीनने या बनाने निकल पड़ना चाहिए। स्त्रियों को शराब, अफीम और विदेशी-कपड़े की दूकानों पर धरना देना चाहिए।"[1] फलतः सरकारी दमन-चक्र की अत्यंत कठोरता और हृदयहीन अत्याचारों के रहते हुए भी आन्दोलन की शक्ति नेताओं की गिरफ़्तारियों के बाद भी कम नहीं हुई। बम्बई के स्वयंसेवक-संगठन में कोई कसर बाकी न थी। स्त्रियाँ आती ही गईं और जब ये कोमलांगियाँ केसरिया साड़ी पहन-पहन कर अत्यंत विनम्रता के साथ धरना देती थीं, तो लोगों के हृदय बात की बात में पिघल जाते थे। कोई दूकानदार अपने माल पर मुहर न लगवाता तो उसी की पत्नी धरना देने आ बैठती।"[2] २७ जून को कांग्रेस-कार्य समिति ने अपनी प्रयाग की बैठक में जो प्रस्ताव पास किये, उनमें से एक भारतीय महिलाओं को आंदोलन में और महत्त्वपूर्ण भाग लेने के सम्बन्ध में, बधाई का था।[3] कराँची-कांग्रेस, मार्च १९३१ के सक्रिय आंदोलन के अंत में, उन सब व्यक्तियों, खास कर महिलाओं को, बधाइयाँ दी गईं, जिन्होंने गत सविनय-अवज्ञा-आंदोलन में महान् कष्ट उठाये थे। कांग्रेस ने निश्चय किया कि वह ऐसा कोई शासन-विधान स्वीकार न करेगी, जिसमें मताधिकार के सम्बन्ध में स्त्रियों और पुरुषों में भेद किया गया हो।[4]

स्वराज्य के लिए आंदोलन के इतिहास में चिरस्मरणीय स्तंभ-रूप सन् १९३० का अंत होते-होते, आगामी वर्ष के स्वाधीनता-दिवस (२६ जनवरी) की आधी रात से पहले गांधीजी आदि जेल से रिहा कर दिए गए। इस रिहाई का उद्देश्य था शान्तिपूर्वक समझौता करना। अस्तु, गांधी-अर्विन समझौता हुआ (५ मार्च १९३१), जिसके अनुसार सविनय-अवज्ञा आंदोलन बंद कर दिया गया।

किन्तु यह समझौता कांग्रेस के चरम ध्येय स्वराज की प्राप्ति किसी प्रकार भी न था। ५ मार्च की शाम को अपने युगांतरकारी वक्तव्य में गांधीजी ने कहा था "बात यह है कि कांग्रेस को एक निश्चित उद्देश्य तक पहुँचना है और उस उद्देश्य तक पहुँचे बिना विजय का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। इसलिए मैं अपने सब देशवासियों से और अपनी बहनों से आग्रह करूँगा कि वे फूल कर कुप्पा होने के बजाय—यदि समझौते में फूल कर कुप्पा हो जाने की कोई ऐसी बात है—परमात्मा के आगे सिर झुकावें और उससे प्रार्थना करें कि उन्हें वह इस समय उनका ध्येय इनसे जिस मार्ग पर चलने का तकाज़ा करता है, उस पर चलने की शक्ति व बुद्धि प्रदान करे, चाहे वह मार्ग कष्ट सहन का हो और चाहे वह धैर्य-

---

[1] कां० का इ०—भाग ४, अध्याय २, पृ० २५२.

[2] ,, ,, ,, ,, ,, अध्याय २, पृ० ३४२.

[3] समिति भारतीय महिलाओं को इस बात की बधाई देती है और उनकी प्रशंसा करती है कि वे राष्ट्रीय आंदोलन में दिन दूने रात चौगुने उत्साह से भाग ले रही हैं और प्रहारों, दुर्व्यवहारों और सजाओं को वीरतापूर्वक सहन कर रही हैं।
(कां० का इ० भाग ४, अध्याय २, पृ० २५१.)

[4] कां० का० इ० भाग, ५, अध्याय १, पृ० २९६.

पूर्वक संधि-वार्ता या विचार-विनिमय करने का हो[१]। अस्तु, समझौते पर हस्ताक्षर होने के बाद कांग्रेस पुनः जीवित होकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो गई। कशमकश और वाद-विवाद, आशा और निराशा, दमन और अहिंसा के बीच भारतीय स्वतंत्रता का संघर्ष जारी रहा। परिस्थितियों ने पुनः सत्याग्रह अनिवार्य कर दिया और जनवरी १९३२ में युद्ध नवीन उत्साह के साथ प्रारंभ हो गया। सरकारी आर्डिनेंसों और अत्याचारों के राज्य के बीच कलकत्ता में कांग्रेस का अत्यंत उत्साहपूर्ण अधिवेशन हुआ (१९३३), जिसमें सत्याग्रह और ह्वाइट पेपर के संबंध में महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए[२]। सत्याग्रह का यह तीसरा दौरा अगस्त १९३३ और मार्च १९३४के मध्य जोरों पर रहा। इस संबंध में श्री सीतारमय्या का कथन है 'गांधीजी ने जो मार्ग दिखाया था, उस पर १९३३ के अगस्त से १९३४ के मार्च तक देश भर में कांग्रेस-कार्यकर्ता लगातार चलते रहे और सत्याग्रहियों के अटूट तांते ने युद्ध को जारी रक्खा। ...... आंदोलन के अंतिम युग में हरेक प्रान्त ने कितने सत्याग्रही दिये इसका पूरा ब्यौरा मौजूद नहीं है। केवल इतना ही कहना काफ़ी है कि हजारों ने आवाहन का उत्तर दिया और,जैसी परिस्थिति थी, उसको देखते हुए, हर एक प्रान्त ने स्वतंत्रता के युद्ध के लिए जितना कुछ वह कर सकता था, किया।[३]

उक्त स्वतंत्रता-युद्ध का संक्षिप्त सिंहावलोकन स्पष्ट कर देता है कि २० वीं शताब्दी के इन १५ वर्षों में भारतीय मस्तिष्क कितना अधिक विस्तृत और उन्नत हो गया था। जागृति देश के कोने-कोने में पहुँच गई थी और देश के चरणों में असंख्य स्त्रियों ने भी तन-मन और धन की निःस्वार्थ बलि दी, जिसके कारण उन्हें अभूतपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

यह १५ वर्ष वह थे, जब हमारा परिवर्तन-युग का काव्य अपनी पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हो रहा था। अनेक कवियों ने आंदोलन में सक्रिय भाग लिया और उनकी बहुत-सी कवितायें तो बंदीगृह के सींखचों के पीछे ही लिखगईं। स्वाभाविक है कि ऐसे कवियों की रचना राष्ट्रीयता और स्वतंत्रता की भावना से ओत-प्रोत हो। "युग का गायक, युग के परिवर्तनों से आँखें मूँद कर अपनी कला को पुरुषार्थमयी नहीं रख सकता।"[४] कवि की वाह्यदर्शी आँखों ने नारी का भी वह रूप देखा, जो युग और देश की आवश्यकता थी। और वह कह उठा :—

कवि तू क्यों न वीर रसु गावै
उथल-पुथल कर अखिल लोक में व्यापक गान सुनावै।
कब तें या कल कुसुम कुंज में रमि रमणी छवि ध्यावै॥
कंकण किंकिणि झनक सुनत जँह, तँह प्रमत्त ह्वै धावै॥

---

१ कां० का इ० भाग ५, अध्याय १, पृ० ३८५।
२ ” ” ” भाग ६, ” २, पृ० ४८२।
३ ” ” ” ” ” ” ” पृ० ४८८।
४ माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी : आत्मनिवेदन पृ० २.

अजहूँ किन गंभीर नादु कै शक्ति मूर्ति प्रगटावै
किन नख सिख कुच कटि वर्णन की कारिख धोय मिटावै ॥[1]

समाज-सुधारवादी-भावना के पीछे वह व्यापक आंदोलन था, जिसका लक्ष्य गृहों की वंदिनी नारी को सामाजिक अत्याचारों से मुक्त करके उसके व्यक्तित्व को जागृत करना था। समाज-सुधार-संबन्धी आंदोलन गत युग के समान इस युग में भी प्रबल रूप धारण किये रहा। यहाँ परिवर्तन-युग में होनेवाले कुछ सुधारों का उल्लेख करना अनुचित न होगा।

इस युग में होनेवाले प्रमुख सुधार बाल-विवाह तथा देवदासी प्रथा से संबन्धित थे। १८६० में ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयत्नों के फलस्वरूप सरकार ने एक एक्ट के द्वारा लड़कियों की विवाह वयस १० वर्ष निश्चित की थी। किन्तु १६२१ की गणना में देखा गया कि ३६ प्रतिशत लड़कियों का विवाह दस वर्ष की अवस्था से पूर्व ही हो जाता है। १६२८ में शिमला में एज आव कंसेंट कमिटी (Age of consent Committee की बैठक हुई। इसकी रिपोर्ट आने पर १६३० में 'राय साहब हरविलास शारदा चाइल्ड मैरिज बिल पास हुआ। इस एक्ट के अनुसार लड़कियों का विवाह १४ वर्ष की अवस्था से पूर्व करना अपराध निर्धारित किया गया।

लगभग तीसरी शताब्दी ई० से चली आती हुई देवदासी-प्रथा का अन्त भी इसी युग में हुआ। डा० मुथुलक्ष्मी रैडी आदि के प्रबल आंदोलन के फलस्वरूप १६२५ में एक एक्ट पास किया गया जिसके द्वारा भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) की उस धारा को, जो नाबालिग व्यवसाय को फौजदारी अपराध (Criminal offence) सिद्ध करती है, देवदासी-प्रथा के ऊपर भी लागू कर दिया। फल यह हुआ कि इस प्रथा का अंत हो गया।

इन प्रमुख सुधारों के अतिरिक्त अखिल-भारतीय-स्त्री-सभा आदि अनेक संस्थाओं ने पर्दा, दहेज आदि कुप्रथाओं को, जिसके कारण समाज में नारी की अवस्था अत्यन्त दयनीय थी, दूर करने के लिए प्रबल आंदोलन किया, तथा शिक्षा, विधवा-विवाह आदि के प्रचार के लिए प्रयत्न किया। राष्ट्रीय-सभा ने भी स्त्रियों की सामाजिक अवस्था को प्रचार तथा आंदोलन-द्वारा सुधारने का प्रयत्न किया। गांधी युग के प्रमुख नेता थे, जिन्होंने इस ओर प्रचुर ध्यान दिया।

हम देखेंगी कि इस युग के काव्य पर सुधारान्दोलनों की छाया गहरी है। गोपाल-शरणसिंह आदि कवियों ने मानों सुधारकों के स्वरों की ही प्रतिध्वनि की है।

इस प्रकार परिवर्तन-युग की प्रमुख भावधाराओं का सिंहावलोकन करने के पश्चात् अगले अध्यायों में हम इन मूल भाव-धाराओं के आधार पर निर्मित नारी-भावना को देखेंगे।

---

[1]वियोगी हरि—वीर-सतसई, वीर-वाणी

अध्याय ४

परिवर्तन-युग में नारी का सत्-रूप

प्रमुख विषय पर आने से पूर्व इस बात को स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि परिवर्तन युग में नारी-भावना की अभिव्यक्ति दो ढंग से हुई है—[1]सीधे ढंग से अर्थात् नारी को ही लेकर तत्संबन्धी दृष्टिकोण का स्पष्टीकरण;[2] रूपकात्मक या प्रतीकात्मक ढंग से, अर्थात् किसी अमानवीय वस्तु को नारी के रूप में देखकर भावाभिव्यक्ति। द्वितीय प्रकार को हम अध्याय ८ में देखेंगे। आगे का समस्त अध्ययन सीधे ढंग की अभिव्यक्ति पर आधारित है।

अस्तु, परिवर्तन-युग का कवि आदर्शवादी है। यद्यपि मध्ययुगीय आदर्शवाद से उसने छुटकारा पा लिया है, किन्तु कल्पनापेक्षी और पलायन-प्रिय होने के कारण उसने कुछ आदर्शों का निर्माण किया है। इस युग के कवि का आदर्शवाद अत्यन्त प्राचीन भारतीय आदर्शों पर आधारित है, इसलिए हम उसे सांस्कृतिक कह सकते हैं।

आदर्शवादी होने के कारण परिवर्तनयुगीय कवि ने नारी को महान् और गौरवमय रूप में देखा है। वह नारी को हृदय की अकथनीय विभूतियों से संपन्न, सौंदर्य और सुखमा से प्रकाशमान् एक अद्भुत अलौकिक शक्ति के रूप में देखता है। "प्रत्येक भवन में नारी बन कर अपनी अभिराम छवि से आलोक" करनेवाली इस महामाया की रचना विधाता ने अपने ही स्वरूप का विस्तार करने के लिए की थी, और साथ ही रचनाकला उसे उपहार-स्वरूप प्रदान कर दी थी।[1] शून्य मूर्तता में साकार मूर्तता भर कर शाश्वत से चेतन को बाँधे-हुए नारी अवतरित हुई।[2]

उसका राशि-राशि सौन्दर्य संसार में बिखर पड़ा और—

"प्रथम श्वास लेते ही तेरे;
लहरी जग में सुरभि तरंग!

---

[1]जादूगरनी छविमान।
किया विधाता ने तुमको रच
अपना ही स्वरूप विस्तार!
अपना चमत्कार मायाविनि,
दिया तुझे उसने उपहार!
(हरिकृष्ण प्रेमी-जादूगरनी : पृ० ३, १)

[2]फूंका ज्योंही शून्य मूर्तता में अमूर्तता भर साकार
शाश्वत से चेतन को बाँधे देवि! हुआ तेरा अवतार!
(नगेन्द्र वनबाला : नारी पृ० २२)

देख प्रथम मुस्कान विश्व के,
अंग-अंग में आए रंग !!
ऊषा ने मधुमय लाली ली,
और सांझ ने स्वर्ण अपार।
चन्द्रा ने चाँदी की आभा,
ऋतुओं ने चित्रित शृङ्गार ॥

'संसृति के प्रथम प्रहर से जगत् इसी रूप को वन्दना कर रहा है। अनेक गीतों, छंदों, काव्यों, उपन्यासों, नाटकों में इसी छवि का अभिवादन किया गया है।'[2] इस प्रकार वह चिरसुन्दरी विश्व-विपिन में विकसित होती है, और अपने मधुदान से विश्व की ज्वाला को शांत करती है। संसार के समस्त ताप उस सौन्दर्य-लहरी में स्नान करने से नष्ट हो जाते हैं।[3] कवि की दृष्टि में उस छवि में अपने को लीन करनेवाला भक्त अमर हो जाता है।[4] आधुनिक कवि को नारी के सौन्दर्य से प्रेम है,[5] यहाँ तक कि वह उसका अनुकरण भी कर बैठता है :—

घने लहरे रेशम के बाल—
धरा है सिर में मैंने देवि।
तुम्हारा यह स्वर्गिक शृङ्गार
स्वर्ण का सुरभित भार ![6]

---

[1]नगेन्द्र—वनबाला : नारी, पृ० १२

[2]हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी : प्राक्कथन।

[3]सुन्दरता की सरिता, तेरे,
सरस स्नेह में जग स्नान,
पाप ताप अभिशाप शांत कर
हो जाता है मंगल अम्लान।
(वही—पृ० ४, ३)

[4]जो करता है तेरी छवि में,
अपना जीवन तन्मय लीन,
वही अमर हो जाता सुन्दर
हो जाता है सीमाहीन। (वही—पृ० ६, १)

[5]स्नेहमयि सुन्दरतामयि
तुम्हारे रोम-रोम से नारि।
मुझे है स्नेह अपार
(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : नारी रूप पृ० १८)

[6]सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : "नारी-रूप" पृ० १८

कवि नारी के अवयव की कोमलता, सुकुमारता, उसकी मुस्कान की आभा, तथा लज्जाशीलता पर मुग्ध है।[1] नारी-सौन्दर्य सरोवर की एक तरंग है, किन्तु चंचल और उच्छृङ्खल नहीं, वरन् लज्जाशीला।[2] कवि की सौन्दर्य दृष्टि जागरण के कारण अलस, नेत्रों, अरुण मुख, निर्बंध केशों, और तन द्युति से आकर्षित होती है।[3] उस वीणा से मृदु-सी झंकार के सौन्दर्य का पार पाना, उसका प्रतिबिम्ब उपस्थित करना कवि के लिए असम्भव हो जाता है।[4] उसे ऐसा प्रतीत होता है, मानो—

कभी स्वर्ग की थीं तुम अप्सरि
अब वसुधा की बाल।'[5]

---

[1]फूल सी देह,—द्युति सारी,
हल्की तूल सी सवारी,
रेणुओं—भली सुकुमारी,
× × × ×
मुसका दी आभा लादी,
उर-उर में गूँज उठा दी,
फिर रही लाज की मारी,
मौन री रंगी छवि प्यारी।

(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५८, ५५)

[2]सौन्दर्य सरोवर की वह एक तरंग,
किन्तु नहीं चंचल प्रवाह उद्दाम वेग,
संकुचित एक लज्जित गति है वह।

(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—परिमल : बहू, पृ० १३४)

[3](प्रिय) यामिनी जागी।
अलस पंकज दृग अरुण मुख तरुण अनुरागी।
खुले केश अशेष शोभा भर रहे,
पृष्ठ ग्रीवा बाहु उर पर तिर रहे,
बादलों में घिर अपर दिन कर रहे,
ज्योति की तन्वी; तड़ित द्युति ने क्षमा माँगी।"

(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—गीतिका, पृ० २, १)

[4]एक वीणा की मृदु झंकार।
कहाँ है सुन्दरता का पार।
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि
दिखाऊँ मैं साकार।

(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : आँसू पृ० २५)।

[5]सुमित्रानन्दन पन्त—गुंजन : 'अप्सरा' पृ० ८७)

यौवन सौन्दर्य का पूर्णविकास है, इसलिए कवि भावपूर्ण रीति से उस सुन्दरी का चित्रण करता है, जिसने अभी-अभी ही यौवन-प्रांगण में चरण रखा है।[1] सौन्दर्य को कवि आत्मा की चिरंतन पुकार मानता है; और उसके पाने को दिव्य जीवन।[2]

आधुनिक कवि सरल और भोले सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता है, जिसमें वंचकता और गर्व का अभाव हो। इसलिए प्रायः देखा जाता है कि वह ग्रामवासिनी[3] का वर्णन अकसर करता है।[4] कवि ने नारी-सौन्दर्य का आकर्षण अनिवार्य माना है। अपने रूप को दिखाकर जब वह प्राणों को प्रमत्त कर देती है तब उसका सामना करने का साहस किसी को नहीं होता। न कोई उस आकर्षण की अवहेलना कर सकता है, वरन्

"तेरे चरणों पर झुक जाता,
विस्मित होते हैं नादान।"[6]

जगत् उस अमरता के उपवन की सुन्दर कमल-पंखुड़ी में अनायास ही बँध जाता है।[7] किन्तु कवि को इस आकर्षण तथा बन्धन से कोई असन्तोष नहीं है, जैसा कि, हम देखेंगे, प्रगतियुगीय कवियों में उत्पन्न होता है। इसका कारण यह है कि, परिवर्तन-युगीय कवि नारी के मोहन-रूप को पतन का कारण नहीं मानता। इसके विपरीत अन्धकारमय जीवन की ज्योति ही मानता है।[8] रूप में मादकता वह अवश्य पाता है किन्तु उसका विश्वास है कि नारी-रूप के बन्धन ही में मोक्ष है और शत-शत युग के योगी उसके

---

[1]रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ३९-४०।
देखिए—गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ, १ सर्ग, पृ० २४।

[2]दिव्य जीवन है छवि का पान,
यही आत्मा की तृषित पुकार।
रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ८,७।
रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० २५।

[3]सुमित्रानन्दन पंत—पल्लव : आँसू पृ० १६ और ५८
गोपालशरणसिंह—सागरिका, पृ० १६ और ५८

[4]गोपालशरणसिंह—संचिताः ग्रामवासिनी पृ० ९, तथा
सोहनलाल द्विवेदी—चित्राः ग्राम वधू पृ० १०.

[5]रामधारीसिंह दिनकर—रसवन्ती : पुरुषप्रिया

[6]हरिकृष्ण प्रेमी —जादूगरनी, पृ० ७, १.

[7]अरी अमरता की उपवन की
सुन्दरतम कोमल जलजात।
अलि सा विश्व बन्द हो जाता
तव पंखुड़ियों में अज्ञात
(वही पृ० १२. २३.)

[8]जलती अन्धकारमय जीवन की वह एक शमा है।
मनोमोहिनी है, वह मनोरमा है,
(सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—परिमल : वह, पृ० १३४)

द्वार पर इसकी याचना करते हैं। समाधि में भी उसके तीव्र आकर्षण का शर बिंध जाता है। कवि की दृष्टि में उसकी ओर दौड़ पड़ने से ही निर्वाण प्राप्त हो सकता है, और अनेक जप-तप, साधन आदि उसके चरणों में नत हो जाते हैं।[1] नारी-सौन्दर्य यद्यपि एक बन्धन है, किन्तु प्रिय ही।[2] जब वह प्रत्यक्ष दर्शन देती है, तो जग की आँखें उसकी ओर इस प्रकार घूम जाती हैं, जैसे सूर्य की ओर सूर्यमुखी, और उस समय मनुष्य द्वंद्वातीत हो जाता है :

'जीवन-मरण, अतृप्ति, तृप्ति औ'
सुख, दुख, तृष्णा, प्यास पुकार,
एक घड़ी को छिप जाते हैं,
जब दर्शन देती सुकुमार।[3]

उस महामाया-रूपिणी नारी का अक्षय-सौन्दर्य निरन्तर परिवर्तित होता जाता है, इसलिए कवि छवि की अकथ कथा को लिखवाने में अपने को असमर्थ पाता है[4]

---

[1]तेरे आकर्षण के शर से,
बिंध जाते समाधि के प्राण,
तू ही फिरती पलकों में,
'शम्भु' लगाते हैं जब ध्यान।
तेरी ओर दौड़ पड़ने में,
अनायास मिलता निर्वाण।
तेरे चरणों पर झुक जाते,
जप तप साधन व्रत कल्याण।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० १४, ३-४)

[2]री सौन्दर्य-मधुरिमा बनती
तू बंधन करुणाधारा,
फिर भी तेरा रूप जगत को
लगता है कितना प्यारा!
(वही पृ० ४१, ४)

[3]वही पृ० १९, ४

[4]छवि की अकथ कथा लिख पायें
कब कवि के ओछे अक्षर।"
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० २०-१)

नारी-सौन्दर्य में कवि ने ज्योत्सना की उज्ज्वलता, शशि की मादक मुसकान, चपला की चकाचौंध पाई है, किन्तु आधुनिक कवि की दृष्टि में नारी-सौन्दर्य उपमान-चमत्कार उपस्थित करने का साधन नहीं है। नारी-सौन्दर्य में उसने वास्तविक महानता देखी है।[१] उस रूप के क्षण-मात्र के दर्शन से नश्वर और असुन्दर जगत् मंगलमय हो उठता है।[२] वास्तव में आधुनिक कवि ने सौन्दर्य के मंगलमय प्रभाव पर ही विशेष वल दिया है। रीतिकालीन कवि की भाँति आधुनिक कवि नारी के अंगों के बाह्य रूप-मात्र की प्रशंसा करके नहीं रुक जाता, वरन् अवयव के सौन्दर्य को भाव-सौन्दर्य के साथ रखकर देखता है। उसका विश्वास है कि बाह्य-सौन्दर्य आंतरिक सौन्दर्य की उचित पूर्ति है। प्रसाद ने दीर्घकारायण के शब्दों में यही स्पष्ट किया है। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है, जो अंतर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके वल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं; इसलिए प्रकृति ने उसे उतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप[३]।" कवि की धारणा है कि हृदय के सौन्दर्य की ही अभिव्यक्ति नारी का शारीरिक सौन्दर्य है "मन की छवि तन पर छन छाई।"[४] सुन्दर कर वरदानों के प्रतीक प्रतीत होते हैं।[५] फलतः नारी का रूप आधुनिक कवि के लिए वासना और पतन का संदेश लेकर नहीं आता। इसके विपरीत यह जीवन की प्रेरणा है, कर्म-पथ पर अग्रसर होने का संदेश है। अनिंद्य-सुन्दरी उषा के सम्बन्ध में पन्त कहते हैं :

"तुम जग की स्वप्न शिराओं में,
नव जीवन रुधिर सदृश छाई,
मानस में सोई, भावों की
लो, अखिल कमल कलि मुस्काई।
आशाकांक्षा के कुसुमों से,
जीवन की डाली भर लाई,

---

[१]वही—पृ० २०, २-३।
[२]एक निमिष को भी यदि, सुन्दरि,
राह भूल कर आती है,
अनृत, असुन्दर, अशिव जगत को,
अजर-अमर कर जाती है।
(वही—पृ० २०, ४)
[३]जयशंकर प्रसाद—अजातशत्रु, ३, ४, पृ० १२६।
[४]सुमित्रानन्दन पन्त—ज्योत्सना, पृ० ४५।
[५]तुम्हारे सुन्दरि, कर सुन्दर,
मिलाए हुए वर अमर मर।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ६९, ६६)

जग के प्रदीप में जीवन की,
लौ सी उठ, नव छवि फैलाई।"[1]

'प्रसाद' की काम-दुहिता श्रद्धा मनु के लिए यह संदेश लाती है :—

"काम मंगल से मण्डित श्रेय,
सर्ग, इच्छा का है परिणाम।
तिरस्कृत कर उसको तुम भूल,
बनाते हो असफल भव धाम।"[2]

'निराला' ने तुलसी की पावन जीवनी में इसी तथ्य को प्रमाणित किया है।[3]

नारी-सौन्दर्य शुभ-संदेश-वाहक ही नहीं, तृप्ति और शांति भी है। अवसाद, वेदना, ईर्ष्या तथा जीवन-ज्वाला से ध्वस्त व्यक्ति के लिए वह शीतल छाया है।[4] वास्तव में नारी के पास सौन्दर्य ही एक ऐसी वस्तु है, जिसको लेकर वह पुरुष के जीवन में प्रवेश कर पाती है और तब पुरुष की हिंसक-वृत्तियाँ भी नम्र हो जाती हैं।[5]

नारी के सौन्दर्य के इस मंगलमय प्रभाव के मूल में है, उसका भाव-सौन्दर्य और "यत्राकृतिः तत्र गुणा इति लोकेऽपि ज्ञातम्।" आधुनिक कवि इस विश्वास को लेकर नारी की बाह्य आकृति पर ही नहीं रुक जाता, वरन् उसके भाव सौन्दर्य का भी पूर्ण रूप से अवगाहन करता है। वह शरीर और हृदय को पृथक्-पृथक् नहीं, वरन् एक साथ रख कर देखता है।[6] इसीलिए श्रद्धा के रूप-मात्र पर आसक्त मनु की ग़लती को कवि ने भली-भाँति स्पष्ट किया है, इतना कि स्वयं मनु को ही कहना पड़ता है :

"अरुणाचल मन-मन्दिर की वह,
मुग्ध-माधुरी नव प्रतिमा,
लगी सिखाने स्नेहमयी-सी,
सुन्दरता की मृदु महिमा।

---

[1]सुमित्रानन्दन पन्त—ज्योत्स्ना, पृ० १२८।

[2]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : श्रद्धा, पृ० ४६।

[3]सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास, पृ० २७, ४८।

[4]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : निर्वेद, पृ० १७० तथा वासना, पृ० ६८।

[5]मादक अंग उभार, अर्ध-मीलित
नयनों से लख सविलास,
उस हिंसक पशु नर को पल में,
बना लिया चरणों का दास,
(नगेन्द्र—वनबाला : नारी, पृ० २३)
देखिए—रामधारीसिंह दिनकर—रसवन्ती : नारी पृ० २७।

[6]सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, ३८.
सुमित्रानन्दन पन्त—गुंजन, पृ० ५६, २७।

उस दिन तो हम जान सके थे,
सुन्दर किसको हैं कहते ।[1]

और इसीलिए इस युग का कवि उस 'आधुनिका' से घृणा करता है जो सौन्दर्य से मंडित होने पर हृदय से रहित है ।[2]

परिवर्तन-युग के कवि ने नारी का भाव-सौन्दर्य माना है उसके हृदय की शुचिता, सरलता मृदुता-आदि में । आधुनिक कवि प्रगल्भ नायिका की चतुरता और प्रौढ़ता से अधिक आकृष्ट है भोलेपन, अकृत्रिमता और सहज वर्ताव से ।[3] इसीलिए वह अपनी नायिका के सम्बन्ध में कहता है :

"उषा का था उर में आवास,
मुकुल का मुख में मृदुल विकास,
चाँदनी का स्वभाव में भास,
विचारों में बच्चों की साँस ।[4]

इस भावना के प्रमुख प्रतिपादक कवि पन्त हैं, जिन्होंने जग को आदरणीय तथा यौवन को रमणीय मानते हुए एकमात्र शैशव को ही स्नेह-पात्र और सुन्दर माना है,[5] किन्तु इस युग के अन्य कवि भी इस भावना को अपनाते दृष्टिगोचर होते हैं[6] ।

---

[1]जयशंकरप्रसाद—निर्वेद, पृ० १६९ ।

[2]नारी की सौन्दर्य-मधुरिमा औ महिमा से मण्डित,
तुम नारी उर की विभूति से हृदय सत्य से वंचित ।
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर-दुखकातरता ।
तुम में तप संयम सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता ।
(सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या : आधुनिका, पृ० ८३

[3]तरल वे कटाक्ष नहीं, सरल हास्य सभी कहीं ।
(मैथिलीशरण गुप्त—कुणाल—गीत पृ० ८२, ५४)

[4]सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : आंसू, पृ० २५ ।

[5]शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल, कमनीय
(वही : उच्छ्वास : सावन- भादों, पृ० ५)

[6]कली सी है सुन्दर सुकुमार, सरलता की छवि है साकार,
तितलियों से हैं उसके प्यार, सीखती है उनसे चुपचाप,
हृदय का वह आदान-प्रदान, बालिका है भोली नादान ।
(गोपालशरणसिंह सागरिका पृ० ८४, ४२)
देखिए वही— पृ० १६, ६ और :—
सरलता की जो है प्रतिमूर्ति, सहजता है जिसकी प्रिय नीति,
बड़े कोमल हैं जिसके भाव, परम पावन है जिसकी प्रीति,
(अयोध्यासिंह उपाध्याय – वैदेही-वनवास, २, ४२, पृ० २२)

फलतः नारी की वह निश्छल छवि, जो योगी के हृदय के समान विकारहीन है, संसार के प्यार का केन्द्र हो जाती है।[1]

सरल और भोली नारी को कवि ने हृदय का प्रतिनिधि माना है। उसके कोमल हृदय को उसने मधुर-भावों का भंडार पाया है।[2] नारी का हृदय ही आधुनिक कवि के लिए स्वर्गागार है :

तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि,
मुझे है स्वर्गागार।[3]

जब नारी अपने हृदय के अमर प्रणय के शतदल पर प्राणिमात्र को स्थान देती है, तो स्वभावतः कवि कह उठता है—

यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर,
तो वह नारी उर के भीतर[4]

इस भावना के प्रथम प्रबल प्रतिपादक हैं जयशंकर प्रसाद। उनकी निश्चित धारणा है कि नारी-शक्ति उसके हृदय की विभूतियों में निहित है और उन्हें विकसित करके ही गौरवान्वित होती है। हृदय का विशेष धर्म है भाव-प्रवणता। नारी में इसका योग होता है। नारी के भावुक हृदय में स्नेह और ममता, अहिंसा और करुणा, विश्वास और उदारता, दया और क्षमा तथा सेवा और त्याग के भावों का समन्वय होता है। इनको लेकर "वे अधिकार जमा सकती हैं उन मनुष्यों पर, जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो'[5] 'मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्त्ति तथा सान्त्वना के अभय वरद हस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है।"[6] इतना ही नहीं 'स्त्रियों का कर्तव्य है कि

---

[1]पहली ही भोली चितवन में,
योगी के उर सी अविकार,
इस अनजान जगत का, सरले,
सहज डुबा लेती सब प्यार।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० २२, २)

[2]तुम्हारा कोमल हृदय विशाल,
मधुर भावों का स्वर्गागार।
(उत्तमचन्द श्रीवास्तव—नारी-गीत, चाँद, नवम्बर, १९३४)

[3]सुमित्रानन्दन पन्त —पल्लव : नारीरूप, पृ० १८।

[4]सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या : स्त्री, पृ० ८२।

[5]जयशंकर प्रसाद—अजातशत्रु, ३, ४, पृ० १२४.

[6]वही, पृ० १२५ –१२६,

ाशव वृत्तिवाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमल और करुणाप्लुत करें, कठोर पौरुष के अनंतर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है उस स्नेहशीलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से सीखना होता है"[1]। प्रसाद ने अपनी इन धारणाओं को अपने नाटकों की मल्लिका, वासवी, राज्यश्री मालविका आदि पात्रियों में प्रमाणित किया है। कवि की इस भावना की चरम और सुंदरतम अभिव्यक्ति हम पाते हैं कामायनी में, जिसमें कवि ने—

"नारी तुम केवल श्रद्धा हो
विश्वास रजत नग पग तल में,
पीयूष श्रोत सी बहा करो
जीवन के सुंदर समतल में।"[2]

कह कर नारी के मूर्ति स्वरूप में श्रद्धा को उपस्थित करके अनंत स्नेह और करुणा का प्रवाह बहा दिया है।

काम की पुत्री श्रद्धा दया और ममता का उन्मुक्त और निर्विकार प्रसाद लिए मनु के अवसादपूर्ण जीवन में प्रवेश करती है।[3] उसके सेवा-भाव में किसी प्रकार का स्वार्थ और वासना नहीं है।[4] उसके स्नेह और करुणा का निरंतर विकास होता ाता है, जो पुरुष मनु की हिंसा और ईर्ष्या से प्रताड़ित होने पर भी हत नहीं होता। पुरुष ने नारी के प्रेम को व्यक्ति-विशेष तक सीमित रखना चाहा है। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि नारी का शांत संचित प्यार पशु और पाषाण सबके लिए समरीति से विकीर्ण होता है।[5] यही कारण है कि श्रद्धा मनु के यज्ञों, जो स्वार्थ-पूर्ति के

---

[1] वही, पृ० १२२.

[2] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : लज्जा, पृ० ८४.

[3] समर्पण लो सेवा का सार
सजल संसृति का यह पतवार,
आज से यह जीवन उत्सर्ग
इसी पद तल में विगत विकार।
दया माया ममता लो आज,
मधुरिमा लो अगाध विश्वास
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ
तुम्हारे लिए खुला है पास।
जयशंकर प्रसाद—कामायनी : श्रद्धा; पृ० ४९-५०

[4] वही—दर्शन पृ० १८८.

[5] पशु कि हो पाषाण सबमें नृत्य का नव छंद,
एक आलिंगन बुलाता सभी को सानंद।

लिए हिंसापूर्ण रीति से किये जाते हैं, से खिन्नहो उठती है [1] वह जीवन का चरम सुख अन्यों के सुख में प्रतिबिंबित देखती है और हिंसा रत मनु को समझाने का प्रयत्न करती है : —

औरों को हंसते देखो मनु
हंसो और सुख पाओ,
अपने सुख को विस्तृत करलो
सबको सुखी बनाओ ।[2]

किन्तु मदांध मनु तो एकान्त स्वार्थ की भीषणता को तभी समझ पाते हैं, जब जीवन में एक के बाद दूसरी ठोकर खाने पर भी, अपराधों और पापों का भंडार एकत्र करके भी, श्रद्धा-द्वारा ही क्षमा किये जाते हैं और चिरंतन आनन्द की ओर उसका सहारा लेकर बढ़ते हैं ।[3] श्रद्धा की क्षमा और उदारता की शीतल छाया में इडा भी त्राण पाती है और तभी तो मनु उसका अभिनंदन करते हैं : —

हे सर्वमंगले तुम महती,
सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती,
तुम क्षमा निलय में ही रहती ।[4]

प्रसाद के पथ-प्रदर्शन का अनुसरण युग के अधिकांश कवियों ने किया । मैथिलीशरण गुप्त ने —नारी के "प्रेम-परिपूरित सरल कोमल चित्त की अधिकारिणी सीता, उर्मिला, यशोधरा, कौशल्या, यशोदा, राधा, कुंती, सुरभि, तथा अनघ माता आदि को उपस्थित किया है । इन नारियों में हम असीम करुणा पाते हैं, जो दूसरों के दुख को देख

राशि राशि बिखर पड़ा है शांत संचित प्यार,
रख रहा है उसे ढोकर दीन विश्व उदार ।
(वही-वासना, पृ० ६९.)

[1]वही कर्म, पृ० ९४.
[2]वही—कर्म, पृ० १०४.
[3]सब की सेवा न पराई
वह अपनी सुख संसृति है,
अपना ही अणु कण कण
द्वयता ही तो विस्मृति है ।
(जयशंकर प्रसाद— कामायनी : दर्शन, पृ० ८१)
[4]वही, पृ० १८९.

कर द्रवित हुए बिना नहीं रहती,[1] और चेतन ही नहीं जड़-प्रकृति तक का स्पर्श करती है।[2] इनमें जन-सेवा की तीव्र आकाँक्षा है,[3] और क्षमा की तत्परता।[4] इसी प्रकार सियारामशरण गुप्त के श्रेष्ठी की पत्नी में हम दया और विश्व-सुख की आकाँक्षा देखते हैं। एक पूँजीवादी स्वार्थी और कठोर-हृदय सेठ की सद्भावनामयी, कोमलहृदया पत्नी अपने नवनिर्मित महल के नीचे दबे झोंपड़ों के असंतोष से पीड़ित है। वह पति को सन्मार्ग पर लाने का यत्न करती है।[5] गुरुभक्तसिंह की नूरजहाँ भी शेर अफगन की तलवार के तांडव नृत्य के नीचे विलपती हुई विधवाओं तथा अनाथ बच्चों को देख कर, करुणार्द्र हो उठती है।[6] और वह आश्चर्य से कहती है :—

स्नेह नहीं रहा क्या जनों में, प्रेम-हीन है दुनियां सब।

---

[1] पर, दूसरों के दुःख में मेरा हिया
करुणार्द्र होता है स्वयं,
शिशु-तुल्य रोता है स्वयं,
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वकसंहार, पृ० ४९,९२)

[2] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, नवाँ सर्ग, पृ० २५।

[3] वही, ११ वाँ सर्ग, पृ० ४२३-४२४।
मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ११४

[4] मैंने उसे क्षमा किया है,
कह देना आशीष दिया है।
जो अपनी सो सब की आत्मा
सबका भला करें परमात्मा।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ४९)

[5] झोंपड़े वहाँ अनेक अपुष्ट
दबे हैं हो उच्छिन्न अतुष्ट।
उन्हीं पर स्थित हो यह सुविशाल
काट सकता है कितना काल।
गिरा दो उसे स्वयं ही नाथ,
भाग्य अपना है अपने साथ।
(सियारामशरण गुप्त - मृण्मयी : लाभालाभ, पृ० १२)

[6] कहीं विलपती हैं विधवाएँ कहीं अनाथ विलखते हैं,
एक दूसरे को शोणित का प्यासा सबको लखते हैं।
हरे-भरे लहलहे खेत पर किसने डाला है पाला,
हँसते हरे भरे बागों को किसने हाय जला डाला।
(गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ, सर्ग ११, पृ० ८३)

जरा और मृत्यु, यौवन और जीवन, प्रलय और सृष्टि उसकी दृष्टि-परिवर्तन के ही रूप हैं।[१] अतः कवि ने नारी में ज्वालामुखी विनाश और क्रान्ति के साथ विजय वरदान, प्रलय के साथ सृष्टि विधान का संयोग देखा है।[२] देवता भी उसके इस रूप पर मुग्ध हो गये थे।[३] किन्तु इस जगद्धात्री का क्रोध समय पर ही उमड़ता है। आसुरीवृत्तियों के नाश के लिये इस दैवी शक्ति का अवतार होता है :

उद्धत होकर असुर करेंगे, जब जब अत्याचार,
तब तब जगदुद्धार करूंगी लूंगी मैं अवतार।[४]

विनाश उसकी स्वभावगत वस्तु नहीं है। "रोष समय पर किन्तु तोष की धारा बहे सदैव"।[५] वह स्वयं विध्वंस के पश्चात् अवसाद का अनुभव करती है और जगत को अपनी करुणा से पुनः नवजीवन प्रदान करती है।[६] जीवन में नव चेतना का संचार करके वह प्राणदा के रूप में आती है।[७] इतना ही नहीं, वह वरदा देवी भी है। जब विविध संकटों से ग्रस्त होकर मनुष्य उसकी याद करते हैं तब वह अपना वरद हस्त बढ़ा कर आशीर्वाद देती हैं।[८] यदि उसके आलोक से स्तम्भित होकर मनुष्य मनोवांछित नहीं मांग पाता तो वह अन्तर्यामिनी अज्ञात रूप से ही उसके अभावों को दूर कर देती है।[९] उसका वरदान पीड़ा को सुख और भय तथा मृत्यु को अमरता में परिवर्तित करने वाला

---

[१]जरा मृत्यु, यौवन जीवन औ, प्रलय सृष्टि अवसान विहान,
तेरी चितवन पर उठते हैं सुख-दुख के कितने तूफान।
(वही पृ० ५९, ४)

[२]तुम्हीं हो ज्वालामुखी विनाश,
क्रान्ति की हल-चल युग निर्माण।
तुम्हीं हो महाप्रलय की रात,
तुम्हीं हो शक्ति, विजय वरदान॥
(चाँद, नवंबर १९३४ : उत्तमचन्द्र श्रीवास्तव : नारी-गीत)

[३]मैथिलीशरण गुप्त—शक्ति, पृ० १५.

[४]वही पृ० २९.

[५]मैथिलीशरण गुप्त शक्ति, पृ० २८.

[६]जब विनाश का नशा उतरता, तू मन में पछताती है,
एक बूंद आँसू से दुनिया को तू पुनः जिलाती है।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६८, ३)

[७]मरे हुए भी जी उठते हैं होता नव चेतन संचार
अरी प्राण दे तुझे निरख कर होता है निहाल संसार। (वही, पृ० ७१, ४)

[८]वही—पृ० ९२, ३.

[९]जो उर की अभिलाषाओं को कहते कहते रुक जाता
उसकी झोली में जाने कब चिर वांछित धन भर जाता।
(वही, पृ० ७५, ३)

होता है।[1] वह उदार हृदया अपने कोमल पाणि को पसार कर—

"स्नेह, सान्त्वना, शान्ति मुक्ति सी तू हर लेती है दुख भार।"[2]

अस्तु, नारी शक्ति एक कल्याणी शक्ति है। उसकी शुभ दृष्टि भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी है और उसी के कारण सृष्टि अमर है।[3] उसके प्रताप में सत्य, शिव और सुन्दर का संयोग है।[4] उसकी मुस्कान से :—

"झंकृत हो उठते प्राणों में मोद मधुरिमा, प्रेम प्रकाश,
मद, मधु, सुरभि, सुधा, शीतलता, तृप्ति, शांति, उल्लास, विकास"।[5]

उसके प्रफुल्ल रूप में जगत की समस्त पावन और सुखद वस्तुओं का समन्वय है।[6] अपनी एक स्मृति, एक पुलक और एक अमृतमय दृष्टि से वह मृतप्राय संसार पर नवीन सृष्टि कर देती है,[7] और "मन में नवजीवन धारा" का प्रवाह होने लगता है। वह उदार बन कर समस्त लोक में मंगल को भर देती है और उसके स्नेह से पृथ्वी आकाश धुल जाते हैं।[8] वह गंङ्गा के समान पवित्र और त्रिभुवन को पवित्र करने वाली है। जहाँ उसका प्रवाह है वहीं तृप्ति है, उसी के तट पर तीर्थ है। उसके पावन सरल स्नेह में स्नान करने के पश्चात् ज्ञान, ध्यान, पूजा, सेवा, व्रत, जप, तप, दानादि की आवश्यकता नहीं रहती। एक ही बार के स्नान से समस्त कल्मषों का नाश हो जाता है, और अमरत्व की प्राप्ति

---

[1] तेरा ही वरदान व्यथा को सुन्दरि, सुन्दर करता है,
मृत्यु अमरता बन जाती है, पीड़ा में रस भरता है।
(वही, पृ० ७७, ४)

[2] वही, पृ० २५, ४.

[3] भुक्ति-मुक्ति देती है दोनों माँ तेरी शुभ दृष्टि,
जीती है तुझसे ही जननी अमर हुई सब सृष्टि।
(मैथिलीशरण गुप्त, शक्ति, पृ० २८)

[4] हरिकृष्ण प्रेमी जादूगरनी पृ० ५, २.

[5] हरिकृष्ण प्रेमी-जादूगरनी पृ० २२, १.

[6] पुण्य, प्रेम, वरदान, अमृत, सुख, आशा अभिलाषा, कल्याण,
मुक्ति, योग, साधन—सा पावन, दिखता तेरा रूप महान,
जब तू छिटकाती मुस्कान। (वही, पृ० २३, ४)

[7] वही, पृ० ३८, ३; और :—
जब जरा-मरण का तम फैला, जीवन की सुषमा शेष हुई,
तुम मुस्काईं फिर अणु अणु में, छाई बसन्त की सुघराई,
तुमने सोहाग की सुषमा से भरदी वसुधा में अमर कान्ति।
(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[8] तू उदार बन कर भर देती, भुवन भुवन में स्वस्ति सुवास।
तेरे सरल स्नेह कण निर्मल, कर देते अवनी आकाश॥
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ७९, १)

होती है।[1] वह पतित-पावनी है, उसके स्नेह पूर्ण परिचय को पाकर मानव नयन जल से अपने कल्मषों को धोकर सर्वथा निर्मल हो जाता है।[2] इसलिए जगत् श्रद्धा, भक्ति और प्रेम के फूल चढ़ा कर उस पवित्र और मंगलमयि की उपासना करता है।[3] उसकी पवित्रता की कल्पना में कवि स्वर्गंगा में स्नात किरणों की और पुण्य जलधर-धौत-दामिनी को याद करता है।[4] जब संसार अशुभ स्वप्नो में सो जाता है तो उसे जगाती है, "हाथ पकड़ कर जग को मार्ग दिखाती है" और :

"मंगलमये, तेरे इंगित पर चलता है जब जग अनजान,
अनायास ही मिल जाता है उसको चिर दुर्लभ निर्वाण[5]

वह असीम वात्सल्यमयी अंधकार से भयभीत प्राणों को हृदय से लगाकर आश्वासन, प्रदान करती है।[6] कर्णधार का रूप धारण करके वह जग की चक्कर खाती हुई जीर्ण जीवनतरी को क्षण भर में पार लगाती है, तथा :—

"जब संकट के गर्जन से शिशु सी दुनिया घबराती है
तब जग शक्तिमयी तेरा ही सहज सहारा लेता है।"[7]

युग-युग से जीवन संग्राम में जूझते हुए श्रमित मानव की समस्त भ्रांतियों का नाश नारी की एक दृष्टि से हो जाता है, और वह चरम मुक्ति और शांति के रूप में उपस्थित होती है।[8] वह उस कल्पलता के सदृश है जो मानव को दिव्य फल प्रदान करती है।[9] वह

---

[1] वही, पृ० ८०—८१.

[2] पतितपावनी, तेरा परिचय, पल में मां के स्नेह समान।
बहा नयन जल में सब कल्मष, निर्मल कर देता है प्राण॥
(हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० २६, ३)

[3] आँखों में भर कर भावुकता, श्रद्धा, भक्ति, प्रेम के फूल।
जगत आरती करता तेरी, अयि पावनि! अयि मंगल मूल॥
(वही पृ०, ३७, ३)

[4] गगन-गंगा-स्नात किरणों से, पुनीत विकासिनी।
पुण्यजलधर धौत दिवि की सहचरी द्युति-दामिनी॥
(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर, १९४३)

[5] हरिकृष्ण प्रेमी – जादूगरनी, पृ० ८१, २.

[6] वही, पृ०८२, ३

[7] वही, पृ०८५, १

[8] युग युग से मानव जूझ रहा, है जीवन का संग्राम घोर,
थक गया अभागा, हाथों से टूटी आशा की तुनुक डोर,
जिस ओर तुम्हारी दृष्टि फिरी हो गई शेष विषमयी भ्रांति।
तुम चरम मुक्ति, तुम चरम शांति।
(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[9] कल्पवल्ली-सी तुम्हीं चलती हुई, बांटती हो दिव्य फल फलती हुई।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ० १६)

वसुधा को ऋद्धि-सिद्धि से भरने वाली है। निर्धन कुटीर में भी उसकी स्मित से सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। लक्ष्मी और सरस्वती भी उसकी सेविकायें हैं।[1] वह ज्योतिस्वरूपा है, उसके प्रकाश से जग उद्भासित होता है और :—

"अंधकार उज्ज्वल हो जाता नभ में तनता स्वर्ण वितान"।[2]

सूर्य और चंद्र उसी के शुभ्र रूप के ज्योति पुंज हैं जो रात्रि और दिवस में आलोक विकीर्ण करते हैं।[3] वह संसृति के भँवर में पड़ी हुई जीवन नौका के लिए एक प्रकाशस्तंभ है जो मार्ग प्रदर्शित करती है।[4] इसीलिए कवि कह उठता है 'तुम हो प्रकाश, तुम हो आशा, तुम हो जीवन, तुम हो संबल।'[5]

इसीलिए कवि ने नारी को 'भूतल पर स्वर्गीय किरण' माना है। कवि कल्पना करता है कि जब पीयूष मोहिनी अपने सुधा घट को स्वर्ग में लिए जा रही थी, तब थोड़ा अमृत छलक कर मर्त्य लोक में गिर पड़ा, और वही नारी रूप में परिवर्तित हो गया, स्वर्ग देखता ही रह गया।[6] इस प्रकार जब यह स्वर्गीय शक्ति मर्त्यलोक में आती है तो अपनी असीमता को सीमा में लय कर लेती है[7] इसीलिए उसका रूप लघु तथा ससीम होने पर भी अनंत है।[8]

इस स्वर्गीय किरण के ही कारण यह भूतल सुंदर सुखद, और शांतिप्रद है, उसी से "सुरभित यह संसार है" वह "सृष्टि का स्वर्ण सुहाग" है। उसके अभाव में वसुधा श्मशान के समान लगती है और :—

---

[1] तुम कुटिया में भी मुस्काई, तो वहां सिद्धियां बिखर पड़ीं।
दिन-रात रमा वाणी सादर, मुंह जोहा करती खड़ी-खड़ी॥
(मोहनलाल महतो- नारी, विश्वमित्र, नवंबर १९४२
(मोहनलाल महतो पृ० ६९, २.

[2] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० ६९, २.

[3] वही पृ० ७०, २.

[4] वही पृ० ७२, ४.

[5] मोहनलाल महतो—नारी, विश्वमित्र, नवंबर, १९४२.

[6] पीयूष मोहिनी के घट से, सहसा थोड़ा सा छलक पड़ा,
वह मर्त्य लोक में गिरा, स्वर्ग रह गया देखता खड़ा खड़ा,
हो गया सुधा का विधि गति से नारी स्वरूप में परिवर्तन।
(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर १९४२)

[7] अमर लोक से उतर मर्त्य जग में, कोमल पग पर धरती है,
ममतामयि, अपनी असीमता, सीमा में लय करती है।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० २४, १)

[8] विंदु में थी तुम सिंधु अनंत, एक सुर में समस्त संगीत।
एक कलिका में अखिल वसंत, धरा में थी तुम स्वर्ग पुनीत॥
(सुमित्रानन्दन पंत—पल्लव : आँसू, पृ० २५,)

'दशों दिशाओं का सुहाग लुट जाता जब करती प्रस्थान"[1]

समस्त प्रकृति उसके वियोग में व्याकुल हो उठती है, और पृथ्वी विधवा-सी हीन न प्रतीत होती है नारी उस मधुवन के समान है, जिसके कारण जग उपवन के फूल सित होते हैं।[2] उसके इन्द्रधनुषी अंचल की छाया हटते ही :—

"विश्व गीत की तान टूटती जीवन वीणा होती मौन।[3]"

कवि ने इस इंद्रधनुषी रंगों से सम्पन्न विचित्र शक्ति का स्वरूप बड़ा कौतूहल-जनक रहस्यात्मक पाया है। इसीलिए उसका सामंजस्य कबीर की माया से कर दिया [4] किन्तु हमें यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि जो वंचकता और अमंगल कबीर ने ी माया में देखा था, वह 'प्रेमी' ने अपनी "जादूगरनी" में नहीं। परवर्ती ने उसे सत्य, और शिव माना है और उसके रूप और शक्ति को पूजनीय

अस्तु नारी "इंद्रधनुष सी रंग विरंगी जादू की लकड़ी" लिए हुए एक जादूगरनी अपनी इच्छा से वह अनेक रूप धारण करती है, और एक ही समय में जगत के द्वारा क रूपों में देखी जाती है।[5] अपने रूप को वह कभी आच्छादित कभी अनाच्छादित से प्रदर्शित करती है। जब वह दर्शन दान देती है तब :—

---

[1]हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० ९४, १.

[2]वही, पृ० ९७.

[3]वही, पृ० ९८, ४.

[4]हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी : प्राक्कथन

[5](क) कहीं सजनि, छाया बन जाती, कहीं धूप चमकाती है,
अश्रु बहाती किसी जगत में, कहीं मधुर मुस्काती है।
किसी हृदय में आग लगाता है, तेरा अनुपम अनुराग,
तेरी तान किसी को भैरव राग, किसी को करुण विहाग।
(वही, पृ० १००, १—२)

(ख) अंतर्ज्योति विरत योगी ने, भक्तों ने राधा अभिराम।
चतुर नायिका कवि के मन ने, साधक ने सायुज्य ललाम॥
बनी अप्सरा स्वर्ग लोक में स्वप्न लोक में परी अजान।
वन्य लोक में लता लचीली, वरुणों में सरिता गतिवान॥
मर्त्य लोक में बन ब्रज वनिता, की ज्यों ही माया विस्तार॥
निर्विकार भी रूप लुब्ध हो, बना स्वयं मानव सविकार॥
(नगेन्द्र—वनबाला : नारी, पृ० २४)

(ग) क्रीतदासी, स्वामिनी, आराध्य हो, आराधिका भी,
प्राण मोहन कृष्ण हो तुम, शरण अनुगत राधिका भी।
सहचरी हो, अनुचरी, औ वंदनीया अंबिका भी,
भक्ति की कृति हो, स्वयं फिर भक्त की प्रतिपालिका भी॥
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत; पृ०१२, ७)

"गोपन का आवरण गगन से तत्क्षण झट हट जाता है।
घूँघट घन-पट सा वट जाता, छवि का रवि मुसकाता है॥"[1]

और वह मनुष्य से सामीप्य स्थापित करके पहचान करती है। उसके अदृश्य गीत अब आंखों को परिचय हो जाते हैं। वह अपरिचिता प्रथम चितवन में ही निकटतम और गूढ़ स्नेह की पात्री हो जाती है।[2] किन्तु दूसरे ही क्षण अपनी एक झलक को दिखा कर प्यास को मिटाए विना वह चल देती है। जब संसार जीवन से विरक्त होकर उसे अपनाना चाहता है तो वह "दे अमर व्यथा अंबर में छिप जाती है"। उसकी निष्ठुरता से अतृप्ति, विकलता और दुख का जन्म होता है।[3] वह चंचला समीप लाने पर भी दूर-दूर रह कर प्राणों की प्यास बढ़ाती है इसीलिए वह नित्य नवीन और सदैव अपरिचित सी दिखाई देती है। यही उसका उर्वशी रूप है।[4] इस प्रकार वह पर्दे की आड़ में एक रहस्यमय रूप धारण करके एक गूढ़ पहेली और जिज्ञासा बन जाती है।[5] वह अपने प्रेम को गुप्त रख कर अनेक प्राणों को उलझन में डाल देती है।[6] जब इस प्रकार वह रहस्यमय रूप धारण कर लेती है तो दुनिया अपनी कल्पना की उड़ान से बहुत कुछ सोचने का प्रयत्न करती है, किन्तु निरर्थक। वास्तव में संसार उसे गलत समझता है। उसके प्रेम गोपन को संसार प्रेम का अभाव समझ बैठता है। दूसरी ओर वह संसार की मूर्खता पर हँसती है।[7]

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ० १९, १.

[2] तुझे निकटतम कह, मानव उर, गूढ़ स्नेह का तुझ पर सार,
अपरिचिते, पहली चितवन में, करता निस्संकोच निसार॥
(वही, पृ० २५, १)

[3] तेरी निष्ठुरता के फल बन, छलना का लेकर आधार।
विरह अतृप्ति, विकलता, आँसू, जग में उतरे पहली बार।
(वही, पृ० ४९, ४)

[4] केवल प्यास जगा कर उर में, अरी उर्वशी, उड़ जाती।
उच्छ्वासों से दुनिया उर कर, तुझे संदेशा पहुंचाती॥
(वही, पृ० ४९, ४)

[5] जब परदा तू करती गुणवान,
चिर रहस्य सी गूढ़ प्रश्न सी, चिर जिज्ञासा सी अनजान,
कितने उत्कंठित हृदयों में, कर लेती युग युग को स्थान।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ४४, १)

[6] जब रहस्य बन जाती, सुन्दरि, अपना प्यार छिपाती है।
उलझन में कितने प्राणों को, री पागल उलझाती है॥
(वही, पृ० ४५, २)

[7] री रहस्य, जब मूक पहेली, बन कर तू छिप जाती है।
भांति भांति के अर्थ लगाकर, दुनिया धोखा खाती है॥
कौन देवता पट के पीछे, दो प्यासे नीरव लोचन।
एक अनंत अतृप्त वासना, एक हृदय उन्मद यौवन॥

यह कौतूहलमयी कभी अदम्य शक्तिशाली रूप में आती है तो कभी अवश अबला का रूप धारण कर लेती है। तब वह अतीव कोमल और करुण हो उठती है मलय पवन से भी कांप जाती है, कुसुम पंखुड़ियां भी उसे छेद जाती हैं, उषा की किरणें भी उसे दग्ध कर देती है।[१] वह एक दम परावलंबिनी और परवश हो जाती है, और :

"एक क़दम चलने को भी जग का, मुँह तकती रहती है"[२]

किन्तु दूसरे समय वह मानिनी का रूप धारण करके अपनी भौंह की कमानों को तान लेती है, तब संसार का हृदय आशंकित हो उठता है :

कौन जान सकता नयनों के, वन का छिपा हुआ भंडार।
वज्र गिरावेगा या शीतल, विमल बहावेगा जलधार।[३]

इसके विपरीत कभी-कभी वह उदारता से नत हो जाती है। विनम्र होकर वह स्नेह की वर्षा करती है जिससे मानवता निष्पाप होकर प्रफुल्लित हो उठती है।[४] कभी-कभी वह झंझा का रूप धारण कर विश्व में चंचलता भी उत्पन्न कर देती है। वह उस तूफानमय सागर के समान बन जाती है जिसकी एक तरंग अनेक पोतों को भंग कर देती है, अनेक आशाओं के भवन टूट जाते हैं अंधकार सदृश उसके केश संसार को उलझन में फँसा देते हैं।[५]

इस प्रकार अपनी ही इच्छा से (क्योंकि वह शक्ति है) नारी विविध रूपों को धारण करती है। कभी सरल और नम्र, कभी कठोर और अभिमानिनी, कभी रहस्यपूर्ण और कभी भोली नादान[६] बन कर वह मनुष्य को, भ्रमित कर देती है। वह अपने हृदय के रत्न भंडार को गुप्त ही रखती है, फलतः संसार उसके हृदय की वास्तविकता जानने के लिए अथक परिश्रम करके भी उसे अगम ही पाता है।[७]

गोरन को अभाव कह जग का, फूला फिरता है अज्ञान।
छिरी-छिरी हंसती तू उस पर, पर न व्यक्त होती छविमान॥
(वही, पृ० ४६, २—४)

[१] वही, पृ० ३९—४०

[२] वही, पृ० ४१, १.

[३] हरिकृष्ण प्रेमी —जादूगरनी, पृ० ५६, २.

[४] तेरे स्नेह सलिल से सिंच कर, हृदय हरे हो जाते हैं।
कल्मष धुलते, शतदल खिलते, रस-मानस लहराते है॥
(वही, पृ० ४३ २)

[५] वही, पृ० ६१—६२.

[६] अभी सरलता और नम्रता, अभी कठिनता औ अभिमान।
पल भर में रहस्य बनकर तू, आकुल कर देती है प्राण।
पलभर पीछे ही बन जाती है, तू भोलापन, अज्ञान॥
(वही, पृ० १००, १—२)

[७] छद्मवेशिनी, नयनों की, छाया से करती श्रृंगार।
किन्तु छिपाये रहती उर में, अनुपम रत्नों का भंडार॥

"रही सदा तू अगम अजान" को हम तुलसी के "नारि चरित जलनिधि अवगाहू" के समीप पाते हैं, किन्तु जहाँ प्राचीन कवि ने वंचकता, असत्यता, नीचता आदि को सामने रख कर यह बातें कही थीं, वहाँ आधुनिक कवि ने नारी की गोपन और लज्जा की स्वाभाविक कलात्मक प्रवृत्ति तथा तद्गत सौंदर्य को देखते हुए कहा है। इसीलिए कवि अंत में कहता है :—

'तू रहस्य है, इसीलिए तो, लगती है जग को प्यारी।"[1]

इस प्रकार की भावना पर हम बंगला कवि रवीन्द्र नाथ ठाकुर की "चित्रा" का प्रभाव देख सकते हैं। रवीन्द्र ने 'चित्रा' उस "एका एकाकिनी", अंतर व्यापिनी को कहा है जो जगत् में अपने विचित्र रूपों का विकास करती है, जो चंचल चरणों से द्युलोक और भूलोक में विहार करती है तथा जिसकी असंख्य गाथायें नाना प्रकार से कही और सुनी जाती है। कवि रवीन्द्र नाथ की चित्रा से प्रभावित होकर इलाचंद्र जोशी ने "कवि की चिर सहचरी, आजीवन परिचिता तथापि चिर अज्ञाता" के लीला वैचित्र्य को 'विजनवती' नामक कविता में अंकित किया है। जोशी जी की कल्पना अत्यन्त तीव्र है, इसलिए वस्तु ने एक अनोखा रूप धारण कर लिया है, जो हिन्दी काव्य-साहित्य में अपने ढंग का अकेला है। इलाचंद्र जोशी ने एक ऐसी रहस्यमयी कुहुकनी का चित्र हमारे सम्मुख उपस्थित किया है जो सांख्य की माया में अपना साम्य स्थापित कर लेती है। इस मायाविनि विजनबाला को कवि ने पर्वत निकुंज में पाया है। वह एकाकी तथा चिंतित थी—संभवतः किसी "चिर परदेशी" के ध्यान में। उसके अंगों में यौवन था और आँखों में उत्सुकता। विस्मृति निमग्न उस बाला के करों में केतकी कंटक की माला थी, और मुख पर "अविदित विस्मित विषाद"। वह अकारण ही हँसती और रोती थी, मेघों की वर्षा और दामिनी संग-संग उसके मुख पर छा जाते थे। कवि ने प्राणों से उसकी पूजा की और उसे "चिर विषादमय गृह के अधिवासी की" प्रिया बनाया। विजनवती कुंज भवन को छोड़ गृह में मग्न हो गई। किन्तु वह 'अथिरा' एक स्थान पर कब रह सकती थी। उसके मन में परिवर्तन हुआ, वह पिंजरे में छटपटाने लगी और विजन की ओर चल पड़ी। वह सागर की सुखद गोद को युगों तक न छोड़ सकी। किन्तु असह्य करुणा के कारण उसे गिरि निकुंज के निभृत नीड़ का ध्यान हो आया और वहः—

"छोड़ पुलिन की सैकत माया पुनः चली पर्वत की ओर,"[2]

पर्वत में उसका कीलित कूजन पुनः मुखरित हो उठा और विजन देश हर्ष से कल्लोलित हो उठा। किन्तु धीरे धीरे विजनवती म्लान होकर शीर्ण होने लगी। वह मानस की कल-हंसी महाकाश के विपुल प्रसार की ओर दौड़ पड़ी और अचानक अदृश्य हो गयी। उसके रोदन को कुररी ने अपना लिया, उसके मद कल कूजन को वन-कपोत ने अपना

तेरे उर का फूल खोजने, जग का कितना कौशल ज्ञान।
असफल यात्रायें कर हारा, रही सदा तू अगम, अजान॥
हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ०, ६२, २—३.

[1]वही, पृ०, १००, ४.

[2]इलाचन्द्र जोशी—विजनवती : विजनवती, पृ०, ९.

लिया। निर्झर ने उसका संगीत ले लिया और वनस्थली ने "उसका सुमधुर स्वप्न पुनीत" चुरा लिया। उसके "लीलामय लावण्य विलास" को मधुऋतु ने छीन लिया, उसके तेजोदीप्त प्रकाश से निदाघ का विकास हुआ। उसके अश्रु पावस में प्रकट हुए और नेत्रों की शांत छाया शरत् में प्रतिभासित हुई। उसके निर्मल, शुभ्र, नीहार के समान शीतल, निष्कलंक और हीरे के समान उज्ज्वल चरित्र को हेमन्त ने ले लिया। शिशिर वायु में उसकी सकरुण ठंडी आह सुनाई दी। इस प्रकार उसकी गति ऋतुओं की गति में प्रवाहित हो गई।[१]

कवि ने नारी को रहस्यमयी भुवनमोहनी के रूप में देखा है। उसकी इस रहस्य-पूर्णता में वह प्रबल आकर्षण है जो अनिवार्य रूप से मनुष्य को अधिकृत कर लेता है।[२] उसके आकर्षण में मादकता है जो बरबस ही न जाने कितने हृदयों को वश में कर लेती है। तब जग इतना विवश हो जाता है कि जादूगरनी (नारी) चाहे ठुकरा दे अथवा जिला दे। उसके पास इन्द्रधनुषी रंगों की एक जादू की लकड़ी है जिसे कौतूहल मात्र से फेर देने पर जीवन में पागलपन छा जाता है।[३] और :—

"तेरी सतरंगी सीमा को, छूने को अकुलाते प्राण।"[४]

सृष्टि के कण-कण में उसी की ओर चलने की प्रबल आकांक्षा जाग जाती है और समस्त शृंखलाएँ अपनी व्यर्थता में पड़ी रह जाती हैं।[५] इस प्रबल आकर्षण को लेकर वह पुरुष की प्रेरणा बन जाती है। उसकी दुःख भरी आहें महलों को धूल में मिला देती हैं और वीर उसके चरणों पर भूतल के राज्य को जय कर उत्सर्ग कर देते हैं।[६] उसके मूक इंगित मात्र पर जग उसके चरणों पर चढ़ जाता है।[७]

जो नारी इतनी शक्ति सम्पन्ना है, जिसके "निमेपोन्मेपाभ्याम् प्रलयमुदयं याति

---

[१]वही, पृ०, २—१२.

[२]इस आकर्षण की धारा में, चलता क्या कोई चारा है।

(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर १९४२)

[३]हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ८, २ ४.

[४]वही पृ०, १०, २.

[५]सारी जंजीरें पैरों में, लिपटी ही रह जाती हैं।
पागल बन कर तुझे खोजने की, घड़ियाँ जब आतीं हैं॥
अनायास ही दशों दिशाओं के,
खुल पड़ते हैं द्वार।

(वही पृ०, ११—१२)

[६]मोहनलाल महतो—नारी, ४, विश्वमित्र, नवंबर, १९४३.

[७]तेरे मूक इशारे पर, सखि, मंत्र मुग्ध होकर संसार,
चरणों पर चुपचाप चढ़ाता, चरम साधनाओं का सार।

(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ६, ४)

लगती", उसको कवि अबला मानने को प्रस्तुत नहीं है।[1] यद्यपि नारी अवयव में कोमल है किन्तु करुणा, ममता, सेवा और क्षमता को लेकर वे संसार चला सकती है।[2] कवि की धारणा है कि संसार का गौरव कोमल वस्तुओं पर ही आधारित होता है :—

जग के गौरव के सहस्र दल; दुर्बल नालों ही पर प्रतिपल
खिलते किरणोज्ज्वल चल अचपल, सकल अमंगल खो।[3]

नारी के गुणों से मोहित आधुनिक कवि यहीं नहीं रुक जाता। नारी को शक्ति रूप में देखते हुए वह दार्शनिक हो उठा है। उसका दार्शनिक आदर्शवाद नारी को एक विराट् रूप प्रदान कर देता है। पीछे देख चुके हैं कि नारी को कवि ने स्वर्गीय अलौकिक शक्ति का अवतार माना है। उस दैवी शक्ति के स्वरूप का चित्रण करता हुआ कवि कहता है कि उसका विस्तार अमापनीय है।[4] सूर्य और चन्द्रमा उसके ज्योतिमान नेत्र हैं, आकाश उसका वस्त्र है, तारागण शृंगार के फूल हैं, विद्युत उसका अस्त्र है।[5] उसकी सीमायें आकाश से भी अधिक विस्तृत हैं, उसकी झोली में अनेक लोक तारों के समान हैं।[6] उसके वक्ष में भूगोल-खगोल की स्थिति है।[7] अनेक ब्रह्मांड उसके हार के समान हैं, जो भृकुटी के कंपन मात्र से बनते मिटते हैं। उसी की शक्ति से यह विश्व संचालित है :—

---

[1] अबला अवश तुम ! सकल बल वीरता, विश्व की गंभीरता ध्रुव धीरता,
बलि तुम्हारी एक बांकी दृष्टि पर, मर रही है जी रही है सृष्टि भर।
भूमि के कोटर, गुहा, गिरि गर्त भी, शून्यता नभ की, सलिल आवर्त भी,
प्रेयसी, किसके सहज संसर्ग से, दीखते हैं प्राणियों को स्वर्ग से।
(मैथिलीशरण गुप्त साकेत, सर्ग २, पृ०, १५—१६)

[2] माना कि अबला नारियाँ होतीं सहज सुकुमारियाँ,
पर वे चला सकतीं नहीं संसार क्या, करुणामयी, ममतामयी,
सेवामयी क्षमतामयी, वे कर नहीं सकतीं यहाँ उपकार क्या।
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वकसंहार)

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, १०, १०.

[4] किस में इतनी शक्ति नाप ले जो तेरा विराट् विस्तार।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ० ६३, १)

[5] रवि शशि हैं आलोकित आँखें, यह विराट् है अंबर वस्त्र,
हैं शृंगार सुमन ये तारे, बिजली महाशक्ति का अस्त्र।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी पृ०, ६१, ४)

[6] वही, पृ०. ६१, ७.

[7] हृदय पर भूगोल और खगोल ले उतरीं धरा पर।
(मोहनलाल महतो- नारी : विश्वमित्र, नवंबर, १९४३)

तेरे आकर्षण से ही घूमा, करते हैं रवि शशि अविराम।
करती रहती उन्हें प्रकाशित ज्योतिर्मयि, तू ही अभिराम।'[1]

इस प्रकार वह चराचर धात्रि है जो अशेष है, जिसका "अथ" असीम है और "इति" चरणों में नत है।[2] वह एक व्यापक शक्ति है जो सुवास की भांति प्रत्येक स्थान पर बसी हुई है।[3]

आधुनिक कवि ने नारी के शक्ति रूप में कला का समन्वय देखा है। कविवर रवीन्द्र ने लिखा था "जब विधाता पुरुष का निर्माण कर रहा था तब वह एक स्कूलमास्टर था और उसके बस्ते में उपदेश और सिद्धान्त भरे हुए थे, किन्तु जब वह नारी निर्माण के लिए उद्यत हुआ तो वह सहसा एक कलाकार हो गया और उसके हाथ में केवल रंग और तूली थी"।[4] हिन्दी का आधुनिक कवि इन शब्दों की प्रतिध्वनि करता हुआ नारी को विधाता की कलाकृति साक्षात काव्य-रूपा कहता है।[5] नारी को कलाकृति इसलिए माना गया है कि नारी के चरित्र में कुछ ऐसी विशेषतायें हैं जो वास्तव में कलात्मक हैं: "नारी की आत्मा एक कलाकार की आत्मा होती है। उसमें सौंदर्य है जो एक संदेश-वहन करता है। उसमें शोभा, सुघरता और भावों की निर्मलता है जो कला की अभिव्यक्ति है।"[6] इसी दृष्टिकोण से निराला ने "कला और देवियां" नामक निबंध में समुद्रमंथन के रूपकात्मक रहस्य का उद्‌घाटन करते हुए उर्वशी को "कला, गति और गीति की प्रतिमा" के रूप में देखा है। यह उर्वशी रूप, लक्ष्मी रूप (स्नेह, सेवा तथा रक्षा भाव से मंचित गृहस्वामिनी) के साथ-साथ प्रत्येक नारी में पाया जाता है और प्रियाभाव में उसकी अभिव्यक्ति होती है। "प्रिया भाव में गीति और गति के साथ रचना भी आती है, वह ललित वाक्य रचना हो या छंद रचना। यह शब्दों के साथ भी मिली हुई है और

---

[1] हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, ६०,१.

[2] तुम चराचर धात्रि, मृदुबाला, प्रमत्ताभामिनी
रवि विभामय है तुम्हारी मांग के सिन्दूर से ही,
तुम अशेष असीम 'अथ' हो इति' प्रणत है दूर से ही।
(मोहनलाल महतो—नारी : विश्वमित्र, नवंबर १६४३)

[3] कण कण में तेरी सत्ता है, उर-उर में है तेरा वास,
भुवन भुवन के उपवन में तू, बसी हुई बन सुमन सुवास।
(हरिकृष्ण प्रेमी जादूगरनी, पृ०, ९२, ४.)

[4] "When man was being made the Creator was a school-master, his bag full of commandments and principles, but when He came to woman He turned an artist with only His brush and paint."
(शचिन सेन कृत 'पोलिटिकल फ़िलासफ़ी आव रवीन्द्रनाथ' में उद्‌धृत)

[5]. तुम नियंता की कलाकृति काव्यरूपा कामिनी हो।
(मोहनलाल महतो—नारी: विश्वमित्र, नवंबर १९४३)

[6] श्यामकुमारी नेहरू—अवर कॉज़: रुक्मनी देवी—वुमन ऐज़ आर्टिस्ट पृ० ११६

ताल के साथ नृत्य। उर्वशी के इसी भाव का आरोप देवी सरस्वती पर किया गया है इसलिए कि भाव में शुद्धता रहे।"[1] इस प्रकार देवियों के रूप में कला की सात्विक विवेचना करता हुआ कवि कहता है "कला अपने नाम से ही नारी स्वभाव की सूचना देती है, उसकी कोमलता और विकास में महिलाओं की प्रकृति है।"[1]

अस्तु आधुनिक कवि ने नारी में कला का सहज समन्वय पाया है। व्यापक रूप से उसकी भाव प्रवणता, स्नेह और ममता में, सेवा और त्याग की क्षमता में, तथा सृजन-पालन और संहार की शक्ति में, और संकीर्ण रूप से ललित कलाओं के ज्ञान में है। प्रसाद की श्रद्धा ललित कलाओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ही गंधर्व देश में आई थी।[2] गुप्त जी की उर्मिला को हम एक दक्ष चित्रकार के रूप में पाते हैं।[3] शुक्ल जी की दमयंती चित्रकला, हस्तकला, गान विद्या आदि में निपुण है।[4] प्रेमी ने "जादूगरनी" की वीणा में समस्त कलाओं का सार पाया है और उसके महागान में समस्त प्रकृति के तत्व।[5]

आधुनिक कवि की दृष्टि में नारी न केवल कलाकृति और कलाकार है वरन् कला की मूल प्रेरणा भी है। कवि रवीन्द्र की तो यह धारणा थी कि पुरुष की समस्त कलात्मक रचनाओं के पीछे नारी का प्रभाव रहा है।[1] इसीलिए कवि कलामयी को संबोधित करके कहता है :—

"तुम कलामयी, तुम गीतमयी।"

---

[1]सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला'—चाबुक: कला और देवियाँ.

[2]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : श्रद्धा पृ०, ४४.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ०, १८—२१; सर्ग ९, पृ०, २५१.

[4]शिवरत्न शुक्ल—नल नरेश, पृ०, १५०.

[5]ले जागृति का राग उषा से, निशि से ले मोहनी महान,
मादकता शशि की, शिशु की ले पावनता जल का कल गान,
निर्झर का स्वर सरिता की लय, सागर का लेकर तूफ़ान,
अपने महागान में भर कर गा देती है जब छविमान।
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, १६—१७)

[6]"Had men's mind not been energized by the inner working of woman's vital charm, he would never have attained his success of all the higher achievements of civilization—the devotion of the toiler, the valour of the brave, *the creation of the artist*—the secret is be found in woman's influence" (कीसलिंग कृत "ए बुक ऑव मैरिज": रवीन्द्रनाथ ठाकुर—दि इंडियन आइडियल ऑव मैरिज)

देखिए:—श्यामकुमारी नेहरू कृत 'ऑवर कॉज़' : श्रीमती रुक्मिणी—विमन ऐज़ आर्टिस्ट, पृ०, ११७.

हे देवि तुम्हारे चरणों का जब छुम छुम छुम पायल बोला,
तब कवि की नवल कल्पना ने हौले हौले घूंघट खोला,
नीरवता को झकझोर स्वरों की मादक उठी हिलोर नई।[1]

शिल्पी का सौंदर्यबोध नारी रूप में आकृति पाता है और रसानुभव आनंद उसके बंधन में यति और छंद।[2] उस सौंदर्य और शील की मूर्ति के चरणों में कवि अनायास आत्मसमर्पण करके सुख पाता है। उस ज्योतिष्मती के प्रति कवि के भाव शलभ की भाँति आकर्षित होते हैं, और तब कवि के भाव भी ज्योतिर्मय हो उठते हैं। कवि ने स्वयं स्वीकार किया है कि अपने गीतों के लिए वह उन प्रिया के नयनों का ही कृतज्ञ है :—

आज दे रहा हूँ वाणी जिन भावों को लिख गीत मधुर,
है उनके हित ही चिर कृतज्ञ, उन नयनों के प्रति मेरा उर।[4]

तुलसी के उदाहरण को हमें भूलना न चाहिए जिन्होंने निज पत्नी में ही सरस्वती के दर्शन पाये थे :—

देखा, शारदा नील वसना
है सम्मुख स्वयं सृष्टि रशना,
जीवन समीर शुचि निश्वसना, वरदात्री,
वीणा वह स्वयं सुवादित स्वर
फूटी तर अमृताचर निर्झर
यह विश्व हंस, हैं चरण सुघर जिस पर श्री।[5]

इस प्रकार परिवर्तन युग के कवि ने अपनी आदर्शवादी तथा छायावादी प्रवृत्तियों के कारण नारी को सर्वगुणसम्पन्ना महान शक्ति के रूप में देखा है। उसके वाह्य तथा आंतरिक सौंदर्य, उसकी रहस्यपूर्णता तथा कलात्मकता को देखते हुए एक कौतूहलपूर्ण पूजात्मक दृष्टिकोण का निर्माण किया है।

———

[1] मोहनलाल महतो – नारी : विश्वमित्र, नवंबर १९४३.
[2] हरिकृष्ण प्रेमी - जादूगरनी, पृ०, ५७, ४.
[3] नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन : आत्म समर्पण, पृ०, १०.
[4] नरेन्द्र शर्मा – प्रवासी के गीत, पृ०, २३, १४.
[5] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० २३, १४.

अध्याय ५

विविध सम्बन्धों में सत् रूप का विकास

पीछे हमने देखा कि इस युग के कवि ने नारी शक्ति को एक विराट् और व्यापक रूप प्रदान कर दिया है। कवि की धारणा है कि यही विराट शक्ति विविधरूपों में विभक्त होकर गृह में अपने आलोक का प्रसार करती है[1] उसकी शक्तियों का विकास उन विविध सम्बन्धों में होता है जो वह पुरुष के साथ स्थापित करती है। मुख्य सम्बन्ध तीन हैं: १. प्रेयसी और प्रणयिनी २. पत्नी ३. माता।[2] यद्यपि प्रेयसी तथा पत्नी दोनों ही भावनाओं का मूल रतिभाव है तो भी इनमें भेद है। प्रेयसी भावना में स्वच्छंद प्रेम की भावना अंतर्निहित रहती है। उसमें एक प्रकार से जीवन की एक अतृप्त वासना अभिव्यक्ति होती है। इसके विपरीत पत्नी एक संस्कारबद्ध रूप है जिसके पगों में कर्तव्य की पुकार का उत्तर है और जिसके जीवन में वह तृप्ति है जो मातृत्व का चरम मार्ग है। नारी के यह तीनों ही रूप आपस में परस्पर अभिन्न रूप से हुए हैं। प्रत्येक पत्नी का भी एक प्रेयसी और प्रणयिनी रूप होता है जिसे निराला ने नारी का "उर्वशी भाव" कहा है।[3] साथ ही प्रत्येक पत्नी में मातृभाव भी पाया जाता है। एक दृष्टिकोण से नारी के ये तीन रूप उसके जीवन की तीन अवस्थाएँ हैं। किन्तु आधुनिक युग में प्रबन्ध काव्यों की कमी है, और प्रायः गीतों में ही नारी के विविध रूप बिखरे हुए मिलते हैं। फलतः उक्त रूपों से सम्बन्धित कवि की भावना को पृथक्-पृथक् रूप से देखना ही उचित होगा।

१ प्रेयसी और प्रणयिनी रूप

छायावादी काव्य में नारी के इस रूप ने विशेष प्रधानता पाई है। पहले भी संकेत किया जा चुका है[4] कि इसका मूल है अभाव की भावना में—अभाव उस द्वितीय

---

[1] घर घर में तेरी ही प्रतिछवि, भरती है आलोक अनूप।
अगणित अणुओं में बँट जाता, एक महत्तम नारी रूप॥
(हरिकृष्ण प्रेमी—जादूगरनी, पृ०, २६, ४)

[2] यहां तीन सम्बन्धों—भगिनी, भ्रातृ-जाया और कन्या का उल्लेख नहीं किया गया है। प्रथम का इसलिए कि उसका महत्त्व आधुनिक काव्य में केवल राष्ट्रीय भावना के साथ है जिसको हम पृथक् रूप से देखेंगे। द्वितीय बहुत कम मिलता है। जहाँ है भी वहाँ मातृत्व ही लेकर आता है क्योंकि भारतीयों ने ज्येष्ठ भ्राता की पत्नी को मातृवत् ही माना है। तृतीय का कोई महत्वपूर्ण स्थान आधुनिक काव्य में नहीं मिलता।

[3] निराला—चाबुक: 'कला और देवियाँ'.

[4] अध्याय १, पृ०: १२—१४

का जो निजगत आवश्यकताओं की पूर्ति हो, जो मानसिक और शारीरिक सुख की प्राप्ति में सहायक हो, शरीर विज्ञान के शब्दों में तथा मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से, जो भिन्नलिंगी हो। वास्तव में यह भावना सृष्टि का बीजतत्व है। इसीलिए उपनिषद्कार ने भी ब्रह्म के संबंध में इस प्रकार की कल्पना की थी।[१]

छायावादी कवि दुःखवाद का पल्ला पकड़े पलायन-प्रिय है। फलतः उसके जीवन में अभावों की कमी नहीं। "सपने की प्रतिमा"[२] का निर्माण कर वह अपने अभावों की काल्पनिक पूर्ति करना चाहता है और अपने हृदय का भार किसी अन्य के जीवन में उतारने की इच्छा रखता है।[३] जब कवि प्रकृति में प्रीति का आदान-प्रदान देखता है तो निज एकाकीपन से विह्वल हो उठता है[४] फलतः वह अपने अभाव की अनुभूति को दूर करने के लिए "सपने की प्रतिमा" की रचना करता है। कवि के गान इस स्वप्निल मोहिनी छवि पर केन्द्रित हो जाते हैं।[५]

अस्तु प्रेयसी पुरुष के सपने की प्रतिमा होने के साथ अभिलाषा की प्यास भी है।[६] वह उसके "भूले हृदय की चिर खोज" है।[७] इसलिए कवि कह उठता हैः—

"मेरी आँखों पर सुकुमारी की आँखों का चितवन हो।
मेरी साँसों में उसकी साँसों का सुरभित स्पंदन हो।
उसके स्वर से संचालित ही मेरे मन की धड़कन हो।
विस्मृति की मादकता से मेरा मन ही उसका मन हो।"[८]

---

[१] स वै नैव रेमे तस्मादेकाकी न रमते सद्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्री पुमांसौ संपरिष्वक्तौ स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां तस्मादिदमर्धवृगलमिव स्व इति स्माह याज्ञवल्क्यस्तस्मादयमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव तां समभवत्ततो मनुष्या अजायन्त।

(बृहदारण्यक उपनिषद् १, ४, ३।

[२] भगवतीचरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० ३१, ११५.

[३] हाय किसके उर में उतारूं अपने उर का भार,
किसे अब दूं उपहार गूंथ यह अश्रु कणों के हार।
(सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : आँसू, भादों की भरन पृ० १७)
देखिए शम्भूनाथ सिंह कृत—रूपराशि : पृ०, १४ १५६

[४] पन्त—पल्लव : आँसू : भादों की भरन पृ०, १९।

[५] तैरती स्वप्नों में दिन रात मोहिनी छवि-सी तुम अम्लान,
कि जिसके पीछे-पीछे नारि! रहे फिर मेरे भिक्षुक गान।
(रामधारीसिंह दिनकर—रसवंती : नारी, पृ०, ३०)

[६] भगवतीचरण वर्मा—मधुकण : स्वागत.

[७] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ०, ७०.
देखिएः—नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल : "कौन है", "किस विधि".

[८] रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ०, ७, ६.

हृदय में उस अनुपम प्रेम-मूर्ति का प्रवेश अज्ञात रूप से ही अनायास हो जाता है, वह धीरे से आकर हृदय के द्वारों को खोल देती है।[१] तब कवि जानता है कि जिसे वह मधुप की भाँति खोज रहा था वह यही चिरपरिचिता है।[२] आदान-प्रदान की सहज आकांक्षा से कवि प्रेयसी से अपने सुख-दुख की गाथा कहना तथा अमर संदेश सुनना चाहता है।[३] कवि मरु की तरंगिणी के समान उस संगिनी के स्नेहावलंब का इच्छुक है जिसका विकास द्वेष, दंभ और दुःख पर विजय पाकर हुआ है और जिसकी दृष्टि स्नेह-का संभार लिए हुए है।[४] जीवन क्षणिक और अचिर है, उसमें प्रेयसी के सामीप्य का क्षण, उसके रूप का दर्शन और गान का श्रवण मधुरता भर देता है।[५] बादल के समान लघुतम जीवन को अपनी शीतल किरणों से उज्ज्वल बनाने के लिए कवि प्रेयसी को ही पुकारता है।[६] प्रेयसी जीवन के सूनेपन में विद्युत् के समान, और निराशा में आशा के समान प्रवेश करती है।[७] कवि ने इसका प्रमाण प्रकृति के कार्य-कलापों में पाया है: यों तो उपवनों और वनों में धूल उड़ती रहती है, क्यारियों में शूल बिछे रहते हैं—

"पर जब आता नव वसंत है, खिल उठते वन फूल
सजती डाल, पवन चलता है, डाल डाल पर फूल।"[८]

इसलिए कवि प्रिया से सूने जीवन को नूपुरों की झंकार से भर देने के लिए तथा प्यासे

---

[१]दबे पांव आई तुम रानी बिना वचन कुछ बोले
आकर द्वार हृदय के तुमने आहिस्ते से खोले
(गोपालसिंह नैपाली—नीलिमा : दबे पांव आई तुम रानी, पृ० ४४)

[२]तुम ऐसे मिल गयी कि जैसे हो तुम पहचानी सी। (वही)

[३]तुम एक अमर संदेश बनो मैं मन्त्र मुग्ध सा मौन रहूँ।
तुम कौतूहल सी मुस्का दो जब मैं सुख दुख की बात कहूँ।
(भगवतीचरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २८, ४)

[४]द्वेष दंभ दुख पर जय पाकर खिले सकल नव अंग मनोहर,
चितवन संसृति की सरिता तर खड़ी स्नेह के सिंधु किनारे।
जग के रंग मंच की संगिनि, अयि परिहास हास रस रंगिनि,
उर मरु पथ की तरल तरंगिनि, दो अपने प्रिय स्नेह सहारे।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, ३८)

[५]राजेश्वरगुरु—शेफाली, पृ० ३६, १९.

[६]मैं तो लघु बादल हूँ जीवन है क्षण दो चार
प्रेयसी तुम चन्द्र कला सी आजाओ मेरे द्वार
उज्ज्वल अधरों से दे दो उज्ज्वल जीवन का सार।
(रामकुमार वर्मा—रूप राशि, पृ० २५, २२)

[७]भरे हुए सूनेपन के तम में विद्युत की रेखा सी,
असफलता के पट पर अंकित तुम आशा की लेखा सी।
(भगवतीचरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० १८, १)

[८]. गोपालसिंह नैपाली—नीलिमा : अनुरोध, पृ० ४.

प्राणों को प्रेम की संजीवनी सुधा पिलाकर ममता-जल छिड़क कर तृप्त करने तथा जीवित करने की प्रार्थना करता है [1] जिस प्रकार वन में निर्झरिणी का गान गूँजता है, अंधकारमयी रात्रि में कोकिल की तान गूँजती है, उसी प्रकार निज गूँज से:—

"जीवन की इस अर्धरात्रि में आओ राह सुझाओ ना।"[1]

जब पीड़ा आँसुओं में बहने लगती है तब प्रेयसी साड़ी के छोर से उन्हें पोंछ दे तथा करुणा-दृष्टि की छाया से आच्छादित कर ले यह आज के दुःखी कवि की आकांक्षा है।[2] इस समय वह समस्त भव बाधाओं को भूल जाता है।[3] यह क्षण ही दुःख और निराशा से भरे जीवन में विजय के क्षण हैं। प्रेयसी से कवि युग-युग व्यापी उत्पीड़न से प्राणों की रक्षा करने का अनुरोध करता है।[4] एकाकी निर्बल और श्रांत जीवन को ज्योति और शांति देने के लिए कवि ने प्रेयसी-रूपा किरण को ही पुकारा है।[5] जीवन में उसका प्रवेश विषाद की काली घटा को नष्ट कर देता है, मलिन भावनाएं विलीन हो जाती हैं और:—

"होजाता है पल में मेरा कुछ और, और से और रूप।"[6]

प्रेयसी के मधुराधरों में दुखों का निर्वाण है, सुन्दर शरीर की छाया में पीड़ित मन की शांति है और हँसी में प्रसन्नता की स्फूर्ति।[7] करुणा और सुख की साकार मूर्ति प्रेयसी जीवन

---

[1] वही.

[2] आओ मेरे पलक पोंछ दो,
प्रिय! अपने सुकुमार करों में ले साड़ी का छोर।
बड़े बड़े करुणार्द्र दृगों से देखो ना इस ओर।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल : स्वप्न की बात, पृ० ३८)

[3] देता बिसार सब दोष रोष अपने और परायों के,
मैं नयन मूंद अलका नगरी के स्वप्न देखता पल भर को।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल : पलभर को, पृ० ३९)

[4] जन्म जन्म की हार और यह दो दो क्षण की जीत
युग युग व्यापी उत्पीड़न से मेरे प्राण बचाओ ना।
(गोपाल सिंह नेपाली—नीलिमा : अनुरोध, पृ० ४)

[5] जब निर्बल ओस बिंदु सा पड़ा रहूँगा श्रांत
एक किरण सी आजाना तुम मेरे उर में शांत
प्रिये, रहूँगा फिर भविष्य में नहीं अकेला।
(रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० २८, २५)

[6] नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत : तुम आती हो, पृ० २.

[7] प्रिय, मधुराधर की सुधा पिला कितने दुःख भुला चुकी हो तुम
× × ×
दुलरा भव-भार-भरा मानस कर नई लालसा से सालस,
नयनों की श्यामल माया में, काया की कंचन छाया में,
सहला तन सुला चुकी हो तुम सहसा दामिनी सी हंस, मोहनि।
तुम हंसा चुकी हो घन सा मन
(नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल : तुम, पृ० २०—२१)

में ज्योति बन कर आती है। इसलिए कवि ने उसका साम्य चांदनी में पाया है जो:—

"डूबते दिल को उबार संवार कहती, जल नहीं हूँ, ज्योति हूँ मैं चाँदनी।"[1]

यह ज्योतिशिखा ही जीवन के अंधकारपूर्ण भाग को आलोकित कर सकेगी इतना कवि को मालूम है।[2] अतः वह उससे किरण बन कर नव आशा का संदेश देने की प्रार्थना करता है।[3] "विश्वतम में ज्योतिकण" के रूप में ही आधुनिक कवि प्रेयसी नारी के प्रेयसी रूप को पहचान सका है।[4] "सतम अंतःकरण" की इस सौदामिनी को कवि कैसे भूल सकता है जब कि वह "मृत्युतम सागरतरण" की तरणी है और जब :—

"पार वैतरणी करूंगा नाम मैं लेकर तुम्हारा,
फिर तुम्हीं कर पकड़ पंकिल तीर पर दोगी सहारा।"[5]

इतना ही नहीं प्रेयसी जीवन की उलझनों की सहज सुलझन भी है।[6] उसकी अनुपस्थिति में भी उसके स्नेह और गौरव का ध्यान मात्र जीवन की बाधाओं का सामना करने का बल प्रदान करती है।[7]

---

[1] नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन : चाँदनी में भ्रम, पृ० ९.

[2] (क) प्रेयसी जग है एक भटकता शून्य सतम अज्ञात,
एक ज्योति सी उठो गिरो पथ पथ पर बन प्रात
(रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ४, ५)

(ख) मेरे सूने जीवन नभ की तुम विरल चांदनी रत्न कनी,
(नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन : तुम, पृ० ४)

[3] देखो प्रकाश की रेखा ने वह तम में किया प्रवेश प्रिये।
तुम एक किरण बन दे जाओ नव आशा का संदेश प्रिये।
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २८, ६)

[4] प्राण तुम मेरे लिए क्या हो, तुम्हें कैसे बताऊँ
मैं नहीं जाना स्वयं ही, तुम्हें किस आसन बिठाऊँ
विश्वतम में ज्योतिकण को किन्तु मैं पहचानता हूँ।
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० १२, ७)

[5] वही, पृ० ११, ७.

[6] (क) जीवन के मौन रहस्यों की तुम सुलझी हुई कहानी हो।
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २९, ४)

(ख) प्रश्न था यदि एक, तो उत्तर द्वितीय उदार
(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ० ६५)

[7] तुम मेरे न हो सके, फिर भी आज तुम्हारे बल पर निर्भय
मैं जीवन पथ पर बढ़ता, शत बाधाएँ स्वीकार करूँ।
(नरेन्द्र शर्मा—मिट्टी और फूल : किस विधि, पृ० ४८)

वह प्रेमलोक की रानी[१] अपने अपार स्नेह और असीम करुणा को लेकर, जीवन की निकटतम वस्तु बन जाती है।[२] उसके अक्षय अनुराग को कवि अपने प्राणों में भरना चाहता है।[३] और उसका पूर्ण वर्णन करने के लिए अपनी कल्पना, अनुभूति और भाषा को छोटा पाता है।[४] यहाँ कवि की दृष्टि अत्यन्त परिष्कृत और महान् हो जाती है। वह प्रेयसी को इंद्रिय ज्ञान से, अंतःकरण के ध्यान से, यहाँ तक कि कल्पना से भी परे पाता है; नाम, रूप, गुण सम्पन्न होने पर भी उसे संबन्ध बंधन से मुक्त देखता है और उसे अजर अमर मानता है।[५] ऐसी प्रेयसी को हृदय में धारण करके कवि अपने को अकिंचन नहीं पाता[६] और उसके मिलन के अमर क्षण में महानंद को प्राप्त करता है[७] फलतः प्रेयसी के अभाव में

---

[१]भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २६, ४.

[२]केवल एक करुण चितवन छू सकी सदा जो अन्ततम,
खिल प्रकट हुये जिसके जादू से मेरे उर के छिपे भरम!
मेरे मस्तक की क्षणिक शिकन को भी पढ़ सकी वही चितवन,
वह देख सकी मेरी आंखों में धूप छांह का परिवर्तन!
× × ×
उससे क्या छिपा रह सका कुछ मन, आत्मा, या पार्थिव शरीर?
हम दोनों ऐसे हिले मिले थे, जैसे चंचल जल समीर!
वह मुझे जानती थी जितना क्या जानेगी शिशु को माता?
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० २१, २४, १४)

[३]अपना अक्षय अनुराग सुमुखि मेरे प्राणों में तुम भर दो
(भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत, पृ० २८, ४)

[४]यदि तुम्हारे स्नेह के अनुरूप कुछ शुभ शब्द पाता,
प्राण तब मैं हृदय से अनुराग के कुछ गीत गाता,
किन्तु सीमाबद्ध हैं सब, कल्पना, अनुभूति, भाषा,
वंदना में सफल हूंगा, हो मुझे किस भाँति आशा,
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ०. ११, ७)

[५]इंद्रियों के ज्ञान से अंतःकरण के ध्यान से भी,
हो परे तुम कल्पना के व्योम रत अनुमान से भी,
देवि यद्यपि दृश्य हो तुम देह भी धारण किये हो,
नाम, गुण औ रूप से, संबंध बंधन से परे हो,
हो अजर तुम काल क्रम में हो अमर जीवन भरण में!
(नरेन्द्र शर्मा—प्रवासी के गीत, पृ० १२, ७)

[६]वही, पृ० ६, ४.

[७]कैसा था अद्भुत अपूर्व वह महानंद का एक अमर क्षण,
विश्व भर गया था जब मधु से क्षण भर का वह प्रेमालिंगन।
(वही पृ० १० १२)

पाषाणत्व का सा, उजड़े उपवन का सा अनुभव होता है,[१] और प्रिया की स्मृति से विह्वल कवि कह उठता है :

"मेरे सूने नभ मे शशि था, थी ज्योत्स्ना जिसकी छवि छाया,
जीवित रहती थीं जिसको छू मेरी चंद्रकान्त मणि-काया,
ठोकर खाते मलिन ठीकरे सा तब मैं निष्प्राण नहीं था।"[१]

आधुनिक कवि ने प्रेयसी में न केवल स्नेह और करुणा तथा सौहार्द्य और सहानुभूति ही पाई है वरन् अपार सौंदर्य भी जिसके संबंध में कवि ने कहा है :—

"अकेली सुंदरता कल्याणी सकल ऐश्वर्यों का संधान"[२]

प्रेयसी के सौंदर्य की छटा को कवि ने प्रकृति में मुकुलित और कुसुमित पाया है।[३] कवि की कल्पना में प्रिया की मंजुल मूर्ति को देख कर मधुवन की ईर्ष्याग्नि किंशुक अनार और कचनार में फूट पड़ी है, कपोलों की मदश्री का पान करके गुलाब रक्तिम हो उठे हैं, नासिका को देख शुक लज्जित है, और पलाश पुष्प झुक गए हैं, चंचल चरणों के स्पर्श से अशोक मंजरित है, और प्रियंगु स्पर्श से पुलकित, चंपक ने प्रिया की सुवास को चुरा लिया है और वह गर्वित हो भ्रमर को पास नहीं आने देती।[४] आधुनिक कवि की यह प्रिया-रूप-कल्पना रीति-कालीन कवियों की याद दिलाती है। किन्तु वस्तुतः दोनों में भेद प्रचुर है। रीति कालीन कवियों ने तो अतिशयोक्ति मात्र के दृष्टिकोण से उक्त प्रकार के भाव व्यक्त किये थे, किन्तु आधुनिक कवि तो नारी को निखिल प्रकृति की जननी के रूप में देखता है[५] प्रेयसी को एक विराट् और विश्ववंद्य रूप में देखता हुआ वह संध्या की छवि, गगन नीलिमा, स्वर्णराग और रक्त मेघ, वनरेखा की श्यामलता, का समन्वय उसमें पाता है

---

[१]वही, पृ० ५३, ३७.

[२]सुमित्रानंदन पंत—पल्लव: नारी रूप, पृ० ७९.

[३]आज मुकुलित कुसुमित चहुं ओर तुम्हारी छवि की छटा अपार
(सुमित्रानंदन पंत—गुंजन : मधुवन, पृ० ४८)

देखिए (क) नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल : भावी पत्नी का ध्यान, पृ० १०८.
(ख) क्षण क्षण में तुमको देखेंगे जग के कन कन में अंकित कर
(वही, नयन भिखारी, पृ० १५)
(ग) सुमित्रानंदन पंत—गुंजन, पृ० ३८, २७.
(घ) रामकुमार वर्मा—रूपराशि, पृ० ११, १०.

[४]सुमित्रानंदन पंत—गुंजन : मधुवन, पृ० ४८.

[५]मेरी थीं तुम प्रिया, प्रकृति की जननी,
(इलाचंद्र जोशी—विजनवती : "तारा", पृ० ३७)

[६]अकस्मात् क्या रूप तुम्हारा देखा ! शोभित थीं तुम अविकल आकृति लेखा।
हरण किए संध्या की छवि मन मोहक नंडल में स्वर्णराग की माया,
नयनों में थी नील गगन की छाया, मुख मंडल में स्वर्णराग की माया,
गुंभ सेंदुर में रक्त मेघ था आया, बिखरे बालों में श्यामल वन रेखा।
(वही, पृ० ३२)

उसकी तनुता में सृष्टिभर का सौंदर्य एकत्र हो गया है, उसके नेत्रों में रवि-शशि का प्रकाश है। तारक उसके आभरण हैं, इस अखिल सौंदर्य ने कवि को बरबस मुग्ध कर लिया है।[१] इस महत् रूप को देख आश्चर्य नहीं यदि प्रकृति भी लज्जित हो जाय[२] तथा विहगगान, जल, पुष्प के साथ उसको वंदना में प्रवृत्त हो जाय।[३] कवि समझ जाता है कि प्रेयसी का ही "दिक् दिगत में व्याप्त चरण रज परिमल स्तब्ध प्रकृति में फूंक रहा था चेतन"[४] और जग में उसी प्रिया का सौंदर्य व्याप्त है जिसका शैशव सागर में और यौवन नंदनवन की कलिकाओं में विकसित हुआ है।[५] यहां हम देखते हैं कि आधुनिक कवि की रोमांटिक रूप-कल्पना रीति-कालीन कवियों की स्थूलता को पीछे छोड़ कहीं अधिक ऊंचे और दार्शनिक स्तर पर पहुँच गई है। "कोमल छवि का मोल" कवि ने "वासना ही के उपहारों में" नहीं किया है।

दार्शनिकता को छोड़ कर जब कवि सहज अनुभूति के स्तर पर उतर आता है तो उसकी मधुर, कोमल, सरल और निश्छल प्रिया को हम निसर्ग कन्या शकुंतला की सीमा को स्पर्श करते हुए पाते हैं जिसके संबंध में कालिदास ने कहा था :

"अनाघ्रातं पुष्पं किसलयमलूनं कररुहै –
रनाविद्धं रत्नं मधुनवमनास्वादित रसम् ॥"[६]

---

[१]कर एक सुनहली रेखा में, सीमित सब अगजग की छवि को,
जाने किस जादू से बंदी कर नयनों में शशि को रवि को,
तारों को जैसे मोह लिया फिर गूंथ लिया आभरणों में
कर लिया बंद उर शत दल में मकरंद मुग्ध अपने कवि को।
(नरेन्द्र शर्मा—पलाशवन : तुम, पृ० ४)

[२]उठती जब नमित चकित चितवन विद्युत सलज्ज छिप जाती
पाटल की लाल पंखुरियों सी वह अरुण उषा शरमा जाती।
(वही)

[३] (क) विहग वृंद नीड़ों में पाकर आश्रय, भजन गा रहे थे करके कल कूजन,
स्खलित कुंज कुसमों से मृदु सौरभमय होता था देवि! तुम्हारा पूजन
जल प्रपात के स्फटिक सलिल से निर्मल धौत हो रहे थे पद-कमल सुकोमल
(इलाचंद्र जोशी—विजनवती : तारा पृ०, ३३)

(ख) भक्ति सहित तुम करते थे पुष्पार्चन, फहराया वन वन में तब जय केवल।
(वही, पृ०, ३५)

[४]वही, पृ० ३३.

[५]क्षीर सिंधु की लहर हिंडोलों में बीता जिसका बालापन।
नंदन वन की कलिकाओं में खिला अखिल जिसका नवयौवन
अब तक क्यों न समझ पाया मैं, थी किसकी जग में छवि छाया ?
(नरेन्द्र शर्मा - पलाशवन : भावी पत्नी का ध्यान, पृ० ११०, १११)

[६]कालिदास—अभिज्ञान शाकुंतलम्, २. १०.

इस संबंध में पंत की "भावी पत्नी" तथा ग्रंथि की नायिका विशेष रूप से दर्शनीय है।

किन्तु सरलता का अर्थ, आधुनिक कवि की भावना में लीला भाव और लालित्य का अभाव नहीं है। लज्जा, गोपन, कौतुक-प्रियता, चातुर्य आदि उसके उपकरण हैं। किन्तु आधुनिक कवि की प्रेयसी का चातुर्य उस नायिका के चातुर्य से दूर है जो गली के कोने में रुक कर बहाने से बांह उठा कर नायक को नाभि दिखाती है या गुरुजनों से छिप कर रात्रि के अंधेरे में दीवार के छेद में से हाथ डाल कर पड़ोसी नायक का हाथ पकड़ती है।[1] आधुनिक कवि की नारी भावना अधिक अऐंद्रिक और सौंदर्य दृष्टि अधिक परिष्कृत होने के कारण उसकी प्रेयसी का लालित्यगुण भी अश्लीलता नहीं है। नरेन्द्र की "चांदनी", "तुम" "मानिनी"[2] आदि कविताओं में यह भावना स्पष्ट है। निराला ने भी "जग के रंगमंच की संगिनि" के लिए "परिहास हास रस रंगिनी" विशेषण का प्रयोग किया है।[3] इस प्रकार की भावना पर रवीन्द्र की "आह्वान" आदि कविताओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

'प्रेयसी' जिसका पुरुष पक्ष है या परगत दृष्टिकोण (Objective view) है, प्रणयिनि उसी का नारी पक्ष या निजगत दृष्टिकोण (Subjective view) है। उसमें हम देखते हैं कि आधुनिक कवियों ने रीतिकालीन ऊहात्मकता का परित्याग कर नारी के भाव-पक्ष देखने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक कवि के विचार में प्रेम "स्त्री-जीवन का सत्य है—जो कहती है मैं नहीं जानती वह दूसरे को धोका तो देती ही है, अपने को भी प्रवंचित करती है"[4] कवि का विश्वास है कि 'जीवन में वह आलोक का महोत्सव' प्रत्येक नारी के जीवन में आता है "जिसमें हृदय हृदय को पहचानने का प्रयत्न करता है, उदार बनता है और सर्वस्व दान करने का उत्साह रखता है।"[5] नारी के जीवन में शैशव के अवसान में जिस तारुण्य का प्रवेश होता है उसका भावात्मक मूल्य कवि ने परखा है यौवन के आगमन से पूर्व जो मन अनविंधे मोती के समान प्रतिमारहित मंदिर के समान[6] होता है उसी में यौवन

---

[1] बिहारी रत्नाकर —८८, २४२, ५७१, तथा ५०५.

[2] नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४१, २८.

[4] प्रसाद—चंद्रगुप्त, ४, ९, पृ० १९२

[5] प्रसाद—ध्रुवस्वामिनी, २, पृ० ६६

[6] "इस आबदार मोती में था तार न खोया।
था प्रणय सूत्र को इसके मनमुक्ता में न पिरोया।
यह मुकुल अभी ही खिल कर मुख खोल अवाक हुआ है।
है अभी अछूता दामन मधुपों ने नहीं छुआ है॥
मन मंदिर सुरुचि बना है, है प्रतिमा अभी न याती।"
(गुरुभक्त सिंह, नूरजहाँ, ६ सर्ग पृ०, ९५)

देखिए—सुमित्रानंदन पंत, 'ग्रन्थि' पृ० १४-१५

"प्रथम प्रणयरश्मि"[1] कर लेकर आता है और हृदय "बहुरंग भाव" से भरजाता है। चारों ओर आनंद झरने लगता है और अंतर कलरव की पुलक से भर जाता है। "विस्तृत दिगंत के पार प्रिय बद्ध दृष्टि" "अलख सखा के ध्यान"[2] को लेकर अमल खुल जाती है। उस उषाकाल में वह देखती है: –

प्रथम किरण कंप प्राची के दृगों में
प्रथम पुलक फुल्ल चुंबित वसंत की
मंजरित लता पर,
प्रथम विहग बालिकाओं का मुखर स्वर
प्रणय मिलन गान,
प्रथम विकच कलिंद वृंत पर नग्न तनु
प्राथमिक पवन के स्पर्श से कांपती।"[3]

और उसके भावक्षेत्र में एक आकांक्षा जाग्रत होती है :—

"सर्वस्व समर्पण करने की विश्वास महातरु छाया में"[4]

उर्मिला के इन शब्दों में इसी भाव की मुखर व्यंजना है : —

"खोजती हैं किन्तु आश्रय मात्र हम, चाहती हैं एक तुम सा पात्र हम।"[5]

जब कल्पना को आकारप्राप्त हो जाता है और मन "फैला समष्टि में खिंच स्तब्ध"[6] हो जाता है तब "इच्छा से प्राण वे दूसरे के हो गए"[6] और

"मिली ज्योति छवि से तुम्हारी ज्योति छवि मेरी"[6]

तब सामाजिक बाधाएँ उपस्थित होकर मार्ग कुंठित कर देती हैं। नारी को "कुल, मान, ग्रंथि में बंध कर" 'मूक संताप हृदय में" लिए अपने से विमुख हो कर—"बद्ध संसार के"[6] संस्कारों के वश में होना पड़ता है। "प्रथुल प्रणय भार"[6] के रहते भी: -

"रूढ़ि, धर्म के विचार, कुल, मान, शीलज्ञान,
उच्च प्राचीर ज्यों घेरे जो थे मुझे जब मैं संसार में रखती थी पदमात्र
छोड़ कल्प-निस्सीम पवन विहार मुक्त।"[6]

गुरुभक्त सिंह ने अनारकली और नूरजहां की जीवन गाथाओं में इन्हीं समस्या चक्रों में पड़े नारी-जीवन पर प्रकाश डाला है। किन्तु उनकी नायिकायें इन उलझनों पर विजय नहीं पासकी हैं। प्रेम के मार्ग में समाज की क्रूरताओं से दलित हो कर भी वे विद्रोह

---

[1] निराला — अनामिका : 'प्रेयसी' पृ० १; देखिए (क) नूरजहां-६ सर्ग पृ० ४५ :
"जब शैशव .. ...झूला"
(ख) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' परिमल: गीत १७.

[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० १७, १७.

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—अनामिका : प्रेयसी, पृ० २०

[4] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : लज्जा, पृ० ८९.

[5] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग १, पृ० १६.

[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—अनामिका : प्रेयसी।

नहीं करती। किन्तु निराला जैसे स्वच्छंदता-प्रिय कवियों ने इन विवशताओं को तोड़ने का प्रयत्न किया है। उनकी अनामिका की "प्रगल्भ प्रेम" और "मुक्ति" नामक कविताओं में तथा गीतिका के ३३ वें गीत[1] में उनकी विद्रोहमयी प्रवृत्ति का परिचय मिलता है, यह प्रवृत्ति 'प्रेयसी' में प्रतिफलित होती दिखाई देती है जब वह प्रिय के आह्वान को सुनकर गृह और समाज के बंधनों की उपेक्षा करके जीवन के पथ में अग्रसर होती है। नारी के नारीत्व (हृदय) को तथा कल्याणी रूप की रक्षा करते हुए कवि ने मुक्त प्रेम के मार्ग को स्वीकार किया है। यहाँ पर पंत की "ज्योत्स्ना" का उल्लेख करना संभवतः अनुचित न होगा जिसमें कवि ने "मनुष्य जाति की सभ्यता में नवीन स्वर्ण युग का समारंभ" करने के लिये जाति वर्ण की सीमाओं को तोड़कर प्रेम के लिए एक स्वच्छ और प्रशस्त मार्ग निर्मित किया है।[2] प्रसाद ने भी कामायनी में अज्ञात रूप से इसी भावना का प्रतिपादन किया है।

किन्तु नारी-जीवन की कहानी का अंत यहीं नहीं हो जाता। उसने अपने अश्रुजल के संकल्प से जीवन के समस्त स्वर्ण स्वप्नों को दान किया है।[3] उसके जीवन का सत्य तो यह है :—

"एक क्षण का मिलन, चिर दिन याद री
एक क्षण सुख, फिर अमर अवसाद री।"[4]

उसका अमर प्रश्न यही रहा है :—

"मिलन का सुख भी विरह की ओर है, मिलन पथ वह, विरह जिसका छोर है"[4]

नारी-जीवन का यह सत्य आधुनिक काव्य में राधा,[5] गोपी[5], अनारकली,[6] सीता,[7] आदि को लेकर उपस्थित होता है। आदर्शवादी कवि ने विरह में नारी-प्रेम की पूर्णता पाई है। जिस प्रकार अग्नि में तप कर स्वर्ण निखर आता है उसी प्रकार वियोग की कसौटी पर प्रेम की उज्ज्वलता, दृढ़ता और वासनाहीनता का विकास होता कवि ने देखा है। वह तो यहाँ तक कह देता है :—

---

[1]"छूट गए सब ठाट ठाट, घर छूट गया परिवार।

× × ×

कर्म कुसुम अपने सब चुन चुन, निर्जन में प्रिय के गिन गिन गुण
गूँथ निपुण कर से, उनको सुन, पहनाया था हार।"

(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ३६, ३३)

[2]सुमित्रानन्दन पन्त—ज्योत्स्ना, पृ० ६९—७७; पृ० ११७—१३१.

[3]क्या कहती हो ठहरो नारी, संकल्प अश्रु जल से अपने।
तुम दान कर चुकी हो पहले जीवन के सोने से सपने।

(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : लज्जा, पृ० ८१)

[4]राजेश्वर गुरु—शेफाली, पृ० १६.

[5]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर.

[6]गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ,

[7]आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव—झांकी : पार्वती और सीता।

धन्य[1] दूरता ही प्रिय की, जो और निकट ले आवे,
चर्म चक्षुओं के बदले यह आत्मा उसको पावे।"[1]

अस्तु; मिलन और विरह के उभय तटों के मध्य आधुनिक कवि की प्रणयिनी अपने अक्षय प्रेम के सागर को लेकर उपस्थित होती है। वह स्नेह की सरिता के तट पर अपार रस अपने वक्ष में लेकर चलती है। उस समय उसके नयनों में निष्कंप ज्ञान है, भाव में नम्रता है और मुख पर प्रफुल्लता। और इस प्रकार वह 'अविचलित" होकर जीवन-पथ पर अग्रसर होती है।[2] प्रेम के प्रथम प्रदर्शन में स्वभावजन्य लज्जा एक आवरण हो जाती है।[3] किन्तु उसका आत्मसमर्पण पूर्ण है,[4] और तन्मयता अपूर्व[5]। नारी-जीवन की संपूर्ण कथा इसी में निहित है। नारी के आत्मसमर्पण में किसी प्रकार की स्वार्थ भावना नहीं है।[6] नारी के इस निरपेक्ष और निष्काम प्रेम को स्वयं सुभद्राकुमारी ने "ठुकरा दो या प्यार करो" नामक कविता में व्यक्त किया है:—

"मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी हृदय दिखाने आई हूँ।
जो कुछ है बस यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूँ॥
चरणों पर अर्पित है इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है, ठुकरा दो या प्यार करो॥"[7]

---

[1]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर।

[2]स्नेह की सरिता के तट पर चल रही युगल कमल घट भर।
नयन ज्योति में ज्ञान अकंपित, चली जा रही नत मुख, विकसित,
जीवन के पथ पर अविचलित, छवि अपार सुंदर।
(सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ४२, २९)

[3]सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल: कलह कारण, पृ० ३.

[4](क) राधा—शरण एक तेरे मैं आई धरे रहें सब काम हरे।
तुझको एक तुझी को अर्पित राधा के सब कर्म हरे॥
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर: राधा, पृ० ३)

(ख) गोपी—सिर माथे इस मनोज्ञ को हमने यहाँ लिया था।
लोक और परलोक सभी कुछ अपना सौंप दिया था॥ (वही)

(ग) जीवन को न्योछावर करके तुच्छ सुखों को लेखा।
अर्पण कर सब कुछ चरणों पर तुममें ही सब देखा।
थे तुम मेरे इष्ट देवता, अधिक प्राण से प्यारे।
तन से, मन से, इस जीवन से कभी न थे तुम न्यारे।
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल: आहत की अभिलाषा, पृ० २९)

(घ) सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५, ५.

[5]मैथिलीशरण गुप्त द्वापर, पृ० १७६: "क्या मतवाले वह वंशीधर" आदि।

[6]जयशंकर प्रसाद - कामायनी: लज्जा, पृ० ८३: "इस अर्पण...झलकता है।"

[7]सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल: ठुकरा दो या प्यार करो।

नारी के प्रेम में तृप्ति है।[1] वह सात्विक और शुद्ध है।[2] साध्वी साधें क्षणिक व तड़प से रहित हैं, स्निग्ध मधुरभाव दाहकता से दूर हैं, अभिलाषायें उन्माद न होकर सुस्थिर हैं, और:—

"है अटूट यह प्रेम शृंखला दुर्बल पीड़ित प्यार नहीं ॥"[3]

आश्चर्य नहीं कि ऐसे प्रेम को लेकर प्रणयिनी नारी-प्रकृति से ही विरक्त पुरुष को ललकार सके :—

'तुम कहते हो आ न सकोगे, मैं कहती हूँ आओगे।
सखे! प्रेम के इस बंधन को यों ही तोड़ न पाओगे।[4]

इतना ही नहीं उसे यह भी विश्वास है कि :—

'मुझे छोड़कर तुम्हें प्राणधन सुख या शांति नहीं होगी।'[5]

प्रणयिनी के रूप में नारी न केवल प्रेम करती है, वरन् पथ-प्रदर्शक, हृदय का हर्ष, उज्ज्वल स्फूर्ति और अभिलाषाओं की पूर्ति भी है।[6] अत. वह पूर्णतः जानती है कि उसके अभाव का अनुभव अवश्य होगा :—

"मैं न रहूँगी जब, सूना होगा जग, समझोगे तब वह मंगल कलरव रव
था मेरे ही स्वर से सुन्दर, जगमग, चला गया सब साथ।"[7]

प्रिय की निष्ठुर उपेक्षा भी उस अचल प्रेम पर आघात नहीं कर पाती[8] और न जग के उपहास और निराशा के झोंके ही उसको लक्ष्य-भ्रष्ट कर पाते हैं—

---

[1] मेरे तृप्त प्रेम से तेरी बुझ न सकेगी सुधा हरे।
निज पथ धरे चले जाना तू अलं मुझे सुधि सुधा हरे।
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर : राधा, पृ० ४)

[2] मेरे इस पवित्र बन्धन में मोह नहीं है, राग नहीं
मेरे इस स्नेही स्वभाव में है कलुषित अनुराग नहीं॥
(सुभद्रा कुमारी चौहान—त्रिधारा—प्रेम शृंखला, पृ० ५१)

[3] वही.

[4] वही पृ० ५२.

[5] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : स्मृतियाँ, पृ० १२.

[6] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : स्मृतियाँ, पृ० १३.

[7] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका.

[8] इस निस्वार्थ प्रेम की पूजा को तुमने ठुकराया॥

× × ×

अब जीवन का ध्येय यही है तुमको सुखी बनाना।
लगी हुई तेरी सेवा में चरणों पर बलि हो जाना॥
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : आहत की अभिलाषा, पृ० १०)

[1]प्रणयिनी नारी अपनी अमर प्रेम की निधि हृदय में लेकर अन्य समस्त संसार को धूलिमात्र समझती हुई अविचल और निश्शंक भाव से अग्रसर होती है। छल, भय, या लोभ उसे पतित नहीं कर पाते। उसके कोमल शरीर के अंदर जो दृढ़ और अनाहत हृदय का कोट है उस पर विजय पाना दुस्तर है।[2] उसकी एक निष्ठता[3] चिर विरह में भी आशा का दीप जलाये प्रेम की ज्वाला को जाग्रत रखती है और प्रिय के प्रति सतत् शुभाकांक्षायें विकीर्ण करती है।[4] अपने कारण प्रिय का अनिष्ट उसे किसी प्रकार भी ग्राह्य नहीं है।[5] वह त्यागमयी है, न तो वह प्रेम का प्रतिदान चाहती है और न अपने कारण प्रिय को कष्ट देना[6]।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि ने नारी के प्रति अपने प्रेमभाव को भली भांति व्यक्त किया है, तथा नारी के प्रेम का आदर किया है। इस प्रकार की नारी-भावना हिन्दी काव्य में इससे पहले नहीं मिलती है। इसके विकास में विशेष रूप से

---

[1]आशाओं अभिलाषाओं का एक एक कर ह्रास हुआ
मेरे प्रबल पवित्र प्रेम का इस प्रकार उपहास हुआ
दुख नहीं सरबस हरने का, हरते हैं, हर लेने दो,
हे विधि इतनी दया दिखाना मेरी इच्छा के अनुकूल
उनके ही चरणों पर बिखरा देना मेरा जीवन फूल।
(सुभद्राकुमारी चौहान)

[2]तू फिर भी समझ न पाया है हृदय अभी नारी का।
उस पर न विजय पा सकता छल बल अत्याचारी का॥
उस कोमल तन के भीतर है हृदय कोट का मंडल।
जिसमें न कभी घुस पाये हैं विश्व लुटेरों के दल॥
ये नयन पताकायें हैं अति गर्व सहित फहरातीं।
जब तक, न प्रेम की चोटें, उसमें घर कर, जय पातीं।
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ४, पृ० २२)

[3]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर : गोपी, पृ० १७४.
देखिए —गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ४, पृ० २९.

[4]हम सौ वर्ष जियेंगी अपनी आशा लेकर उर में
वह प्रसन्नता से प्रमोदरत रहे प्रतिष्ठित पुर में।
(मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर : गोपी, पृ० १८८)

[5]करना क्षमा भूल सब मेरी अब मैं और न जीऊँगी।
तुम्हें धर्म संकट में रख कर विष की घूंट न पीऊंगी॥"
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ५, पृ० ४१)

[6]इन आँखों के मोती से मिट्टी को नहीं भिगोना।
मत मेरे लिए ज़रा भी प्यारे तुम रोना धोना॥
तुम भूल मुझे यों जाना ज्यों बालक स्वप्न सवेरे।
पर हा भुला न मैं पाऊँगी तुमको प्रियतम मेरे॥
(वही, सर्ग पृ० १०४)

अंग्रेज़ी काव्य तथा बंगला काव्य प्रेरक रहे हैं। प्रेम के क्षेत्र में नायिकाओं के भेदाभेद को छोड़ कर कवि की दृष्टि एक शाश्वत् रूप की परख में अधिक सूक्ष्म हो गई है स्थूल ऐन्द्रिकता का परित्याग कर भावना की सूक्ष्मता की ओर अग्रसर हुई है, तथा सुन्दर का संयोग शिव से कर रही है। इस प्रकार वह भारत के अव्यवस्थित समाज तथा द्वंद्वपूर्ण नवयुवक मस्तिष्क के लिए एक नवीन संदेश भी है।

२—पत्नी रूप :

आधुनिक कवि रीतिकालीन कवि की भाँति नारी को केवल प्रेमिका के रूप में ही नहीं देखता, वरन् उसके उस रूप का अन्तर्मन से आदर करता है जो गृह तथा कुटुम्ब के मध्य विकसित होता है—अर्थात् पत्नी रूप। भारतीय अर्धांगिनी और गृह-लक्ष्मी की गरिमा ने उसकी कल्पना को अत्यंत परिष्कृत, सुरुचिपूर्ण तथा गौरवमय बना दिया है। कवि की भावना का झुकाव पूर्णतः गृह और परिवार सम्बन्धी प्राचीन भारतीय पावन आदर्शों की ओर है। किन्तु पौराणिक नायिकाओं को अपनाकर भी आधुनिक कवि ने जान बूझ कर स्मृतियों और पुराणों की उस भावना का परित्याग किया है जो स्त्री के प्रेम को अस्थिर और मिथ्या उसको ऐन्द्रिक तृप्ति मात्र का तथा संतानोत्पत्ति का साधन भर बताती है और उस पर पति-भक्ति के क्रूर नियमों को लाद कर, उसे निर्जीव छाया बना कर उसके व्यक्तित्व और स्वातंत्र्य का हरण करती है।[१] इसके विपरीत वह उन सम्मतियों की ओर आकृष्ट है जो पत्नी को गृह का केंद्र, दुःखों में सबसे बड़ी औषधि, लक्ष्मी-स्वरूपा, तथा गृहस्थाश्रम का सुख-मूल बताती है।[२] वास्तव में इस प्रकार की भावना मूल तया वैदिक है। ऋक् और अथर्व में हमें गृह और परिवार की सरस शांत कल्पना के मध्य पत्नी भी एक गौरवपूर्ण पद पर प्रतिष्ठित मिलती है। वैदिक ऋषियों की नारी-भावना से आधुनिक कवि प्रभावित है, फलतः वह पत्नी को गृह-लक्ष्मी और अर्धांगिनी के रूप में देखता है।

---

[१]क. महाभारत—१३ : ३७ : १२, १५, २७.
ख. महाभारत—१३ : ४१ : ३२.
ग. मनुस्मृति—९ : १४ : १५.
घ. नारद स्मृति—१२ : १९.
च. पद्म पुराण—सृष्टि खंड : ४९ : २० आदि

[२]क. महाभारत—१२ : १४४ : ५.
ख. वही—१२ : १४४ : १४—१६.
ग. महाभारत—१३ : ८१ : १५.
घ. मनुस्मृति—३ : ५२.
च. पद्म पुराण—उत्तरखंड : १२३ : ३७.
छ. रघुवंश—८ : ६७ आदि।

इस युग के कवियों ने यशोधरा[१] और उर्मिला,[२] सीता[३] और दमयंती,[४] मांडवी[५] और श्रद्धा[६] कांचनमाला[७] और रत्नावली,[८] नूरजहाँ[९] और इयुग्रोसिया,[१०] सारंधा[११] और द्रौपदी[१२] आदि पौराणिक और ऐतिहासिक पात्रियों को लेकर पत्नी रूप में नारी की जिन विशेषताओं को आदर भाव से देखा है; तथा जिन विशिष्ट धारणाओं का प्रतिपादन किया है वह निम्नलिखित हैं :—

१. भारतीय पत्नी का एकांत, स्थिर, वासनाहीन, त्यागमय, कर्तव्यतत्पर, धर्मनिष्ठ और तपस्वी प्रेम।

२. नारी का सतीत्व : सती शक्ति।

३. नारी का अर्धांगिनी तथा सहचरी रूप।

४. नारी का शक्ति रूप : प्रेरणा तथा सत्पथ प्रदर्शन।

५. नारी का गृहिणी रूप।

जैसा कि हम नारी के प्रणयिनी रूप की व्याख्या करते हुए देख चुके हैं, प्रेम नारी-जीवन का प्रथम सत्य है, और "जब से स्त्रियाँ प्रेम करना शुरू करती हैं तभी से उनका कर्तव्य भी शुरू हो जाता है। उनकी चिन्ता, विचार, युक्ति, कार्य आदि के प्रारंभ होने का वही समय है।"[१३] साथ ही इस युग के कवि के विचार से :—
"उसे स्वातंत्र्य पूर्णतम तब मिलता है, जब उसका मन पद्म प्रेम रवि से खिलता है।"[१४]
प्रेम की पूर्णता भारतीय कवि ने उस कोमल बंधन में पाई है जहाँ नारी का आत्म-समर्पण

---

[१]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा।
[२]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, शिवरत्न शुक्ल—भरतभक्ति;
[३]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत; अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास।
[४]प्रतापनारायण—"कविरत्न"-नल नरेश।
[५]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत; शिवरत्न शुक्ल—भरतभक्ति।
[६]जयशंकर प्रसाद—कामायनी।
[७]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत।
[८]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास।
[९]गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ।
[१०]मैथिलीशरण गुप्त—अर्जन और विसर्जन।
[११]द्वारकाप्रसाद रसिकेन्द्र—सती सारंधा।
[१२]मैथिलीशरण गुप्त—सैरंध्री तथा वनवैभव; शिवदास गुप्त—कीचक वध।
नोट :—सती स्त्रियों के प्रति विशेष आकर्षण होने पर भी इस युग के काव्य में सावित्री तथा तपस्विनी पार्वती संबंधी काव्य का आश्चर्य जनक अभाव पाते हैं इसका स्पष्ट नहीं हैं।
[१३]रवीन्द्र नाथ ठाकुर—विचित्र प्रबंध : स्त्री पुरुष, पृ० २१३।
[१४]प्रतापनारायण कवि-रत्न—नल नरेश, सर्ग १५, पृ० २७१।

अपनी चरम परिणति को प्राप्त करता है,[1] और उसकी विभूतियाँ घर के आंगन को आलोकित करती हुई संसार में भी अपनी ज्योति बिखेर देती हैं। किन्तु इस अवस्था में उसका प्रेम एक भावना मात्र नहीं रह जाता, वरन् कठोर कर्तव्य के साथ अपनी उज्ज्वलता और विशालता प्रकट करता है। वियोग, जो प्रेम की अनिवार्य स्वीकृति है, नारी-जीवन की परीक्षा है; और क्योंकि वियोगिनी में ही नारी का अप्रच्छन्न निजी व्यक्तित्व स्पष्ट होता है, आधुनिक कवि प्रायः उसे ही अपनाता हुआ देखा जाता। वास्तव में इस युग का कवि प्रेम से सबल, और रीतिकालीन नायिका की निश्चेष्टता के विरुद्ध, सचेष्ट, धीर, प्रशांत, त्यागमयी नारी मूर्ति की ओर अधिक आकर्षित है। आधुनिक कवि ऐन्द्रिक सुख के समर्थक मिलन की अपेक्षा कर्तव्यमय वियोग की ओर अधिक झुका है।

वियोग जैसे नारी के जन्मजात अधिकार के रूप में आता है, किन्तु भारतीय नारी उसे ईश्वरीय दान के रूप में ग्रहण करती हुई देखी जाती है[2]। "निर्दयी पुरुषों के पाले पड़कर हम अबला जनों के भाग्य में रोना ही लिखा है"[3] जैसे विद्रोहात्मक वचन भी उसे अपने प्रेम-पथ से विचलित नहीं करते। इस अवस्था में पत्नी का जीवन एक साधना हो जाता है। प्रिय की इच्छाओं में ही अपने को लीन करके[4] मिलन की मादक आकांक्षा को भूलकर, वह असीम धैर्य और दृढ़ता का परिचय देती है। वह उपेक्षिता अनुरागिनी जीवन में एक आशामय दृष्टिकोण लिए हुए "दुख को सुख कर लेती"[5] हुई सब कुछ सहन करती है, फिर भी उसकी समस्त शुभाकांक्षायें प्रिय की दिशा में विकीर्ण होती हैं। मिलन के ऐन्द्रिक तृप्ति वियोग में अंतर्मुखी होकर प्राणों में ढल जाती है।[6] विरहिणी वियोग को परीक्षा का अवसर समझती है किन्तु वह भयभीत नहीं होती। ऐसे अवसर पर "कुसुमादपि सुकुमारी" "वज्रादपि कठोर" होकर निज योग्यता को सिद्ध करती है।[7] पति

---

[1] वर तरु से लतिका सी तरुणी लिपट एक हो जाती है।
उसके ही संग अपनी लीला कर समाप्त सो जाती है॥
(गुरुभक्तसिंह—नूरजहाँ, सर्ग ११, पृ० ९०)

[2] सिर माथे तेरा यह दान, हे मेरे प्रेरक भगवान।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ९, पृ० ३१८)

[3] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : राहुल जननी, पृ० १०२.

[4] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : शुद्धोधन, पृ० २१—२३; यशोधरा, पृ० ४१.

[5] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : दर्शन, पृ० १७९.

[6] दिव्य मूर्ति वंचित भले चर्म चक्षु बने जाएँ
प्रलय विकल कर प्रिय न जो प्राणों में ढल जाएँ
जैसे गंध पवन में। (मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : यशोधरा, पृ० ४५)

[7] (क) अब कठोर हो वज्रादपि, ओ कुसुमादपि सुकुमारी।
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा, अब है मेरी बारी। (वही, पृ० ४२)
(ख) यदि मैं पतिमना तो मुझको कौन भार-भय भारी
आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी। (वही, पृ० ४४)

को निज कर्तव्यरथ सर देख कर संतुष्ट होती हुई वह आत्मशक्ति का परिचय देती है।[1] एक निरीह अबला के रूप में वह दया की भीख नहीं मांगती। उसमें गर्व है, आत्माभिमान है, तथा विश्वास की दृढ़ता है। उसके आत्माभिमान का मूल है उसका अर्धांगी भाव। उसी के बल पर पति की अनुपस्थिति में भी वह अपने को अनाथ नहीं पाती।[2] अपने अर्धभाग के अधिकार की चेतना लिए हुए वह कह पाती है:—

'देखूं एकाकी क्या लोगे गोपा भी लेगी तुम दोगे।"[3]

अपने प्रेम और सतीत्व को लेकर उसे गर्वभरा विश्वास है कि: –

"नाथ तुम जाओ, किन्तु लौट आओगे, आओगे, आओगे।"[4]

जिस प्रकार भक्त आत्मसमर्पण करने के बाद भगवान की दया में पूर्ण विश्वास रखता है उसी प्रकार नारी अपनी निश्चल पति-भक्ति के बल पर कह सकती है:—

'उन्हें समर्पित कर दिए यदि मैंने सब काम
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम।
यहीं, इस आंगन में,"[5]

इसी अचल प्रतीति को लेकर तो वह मान भी कर सकती है।[6] यह मान रीतिकालीन नायिका के मान से बहुत भिन्न है। इसके पीछे काम प्रेरणा नहीं वरन् सिद्धांतोंयुक्त विचारधारा है। यह मान नारी के व्यक्तित्व का परिचायक है।

वियोग में आधुनिक कवि की नारी का प्रमुख सिद्धान्त कर्तव्य-पालन है। मोह उसकी बुद्धि को आवृत्त नहीं कर पाता;[7] समाज में अपने उत्तरदायित्व को समझती है और वह वधूवंश की लज्जा सुरक्षित रखने के लिए दृढ़ भाव से उद्यत हो जाती है।[8] किसी रूप

---

[1] जायँ, सिद्धि पावें वे सुख से, दुखी न हों इस जन के दुख से,
उपालंभ दूँ मैं किस मुख से आज अधिक वे भाते। (वही, पृ० २३)
देखिए – मैथिली शरण गुप्त--साकेत, सर्ग ९, पृ० ३१३.

[2] अर्ध विश्व में व्याप्त शुभाशुभ मेरी भी कुछ मति है।
मैं भी नहीं अनाथ जगत में, मेरा भी प्रभु पति है। (वही, पृ० ४४)

[3] वही, पृ० २५.

[4] वही, तथा पृ० २४ : "मेरे यह विश्वास व्यर्थ यदि तुमको खींच न लाये"

[5] वही, पृ० ४६.

[6] उद्धारक चाहें तो आवें, यहीं रहे यह चेरी।' (वही, पृ० २०२)

[7] वही, पृ० ३३, तथा साकेत, सर्ग ६, पृ० १४७.

[8] यशोधरा के भूरि भाग्य पर ईर्ष्या करने वाली,
तरस न खाओ कोई उस पर, आओ भोली भाली।
तुम्हें न सहना पड़ा दुःख यह, मुझे यही सुख आली।
वधूवंश की लाज दैव ने आज मुझी पर डाली।
(मैथिलीशरण गुप्त- यशोधरा : यशोधरा, पृ० ४४)

में भी वह उस प्रिय की, जो समाजहित में प्रवृत्त है, वाधा बनना उसे स्वीकार नहीं है; इस प्रकार उसका स्वार्थ त्यागपूर्ण तथा अनुराग-विरागमय हो उठता है।[1] वाधा बनने के स्थान पर श्रेयस्पथ के पथिक को समुचित विदा देना ही वह चाहती है।[2] प्रिय का गौरव ही उसका गर्व हो जाता है, और वियोग की विकलता उसमें सफलता पाती है। समाज के सुख में उसके आँसू डूब जाते हैं।

आधुनिक कवि ने पत्नी के प्रेम में वासनाहीनता और विवेकपूर्णता पाई है। यह भावना परंपरागत नारी भावना के सर्वथा विरुद्ध है तथा नवीन है। पुरुष नारी को "वासना की मधुर छाया" के रूप में देखता है किन्तु नारी की वास्तविकता यह नहीं है। "नव वय में विश्लेष" होने पर भी काम उस पर विजय पाने में असमर्थ है। "सती शिवा सी तपस्विनी" संयमित जीवन व्यतीत करने के लिए अलंकारों और शृंगारों का परित्याग करती है,[3] किन्तु उसका सिंदूरविंदु एक जलता अंगार है जो पति-पथ के विघ्नों को दूर करने[4] के साथ साथ काम के लिए हरनेत्र भी है। अभिमानिनी विरहिणी काम को ललकार कर कह उठती है :—

"नहीं भोगिनी यह मैं कोई, जो तुम जाल पसारो
बल हो तो सिंदूरविंदु यह, यह हरनेत्र, निहारो।
रूप दर्प कंदर्प तुम्हें तो मेरे पति पर वारो,
लो यह मेरी चरणधूलि, उस रति के सिर पर धारो।"[5]

उर्मिला जो विदेह की पुत्री तथा एक प्रतिष्ठित कुल की वधू है, "देह भोग" की लालसा से लक्ष्मण को एक गौरवमय व्रत से वंचित नहीं करती।[6] इसके विपरीत वह यही कहती है:—

"रहते घर नाथ, तो निरा कहती स्त्रैण उन्हें यह गिरा।
जिसमें पुरुषार्थ ग था, मुझको तो वह एक पर्व था।"[7]

उर्मिला की कर्तव्य-भावना इतनी प्रबल है कि अचेतन अवस्था में भी जब उसे भ्रम हो जाता है कि लक्ष्मण प्रेमवश कर्तव्य-च्युत हो गए हैं, तो वह चिल्ला उठती है :—

प्रिय, फिरो, फिरो हा फिरो फिरो। न इस मोह की धूम से घिरो।
विकल मैं यहाँ किन्तु गर्विणी। न कर दो मुझे नष्टपर्विणी।

---

[1] मेरी नयन मालिके माना तूने बंधन तोड़ा।
पर तेरा मोती न बनें हा प्रिय के पथ का रोड़ा। (वही, पृ० ९०)
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, सर्ग ४, पृ० ९३.

[2] साकेत : सर्ग ६, पृ० १४८; तथा यशोधरा : यशोधरा, पृ० २१. २२.

[3] यशोधरा : यशोधरा, पृ० ३८.

[4] बस सिंदूरविंदु से मेरा जगा रहे यह भाल।
यह जलता अंगार, जला दे उनका सब जंजाल॥ (वही, पृ० ३८)

[5] साकेत—सर्ग, ९, पृ० २९२.

[6] साकेत, सर्ग १०, पृ० ३६२.

[7] वही, पृ० ३६१.

च्युत हुए अहो नाथ जो यथा, धिक्, वृथा हुई उर्मिला-व्यथा।
× × ×
तुम मिलो मुझे धर्म छोड़ के, फिर मरूँ न क्यों मुंड फोड़ के।''[1]

इस अविचल भाव से कर्तव्य और धर्म का पालन करती हुई पत्नी पति की शुभ प्रेरणा और पथ-प्रदर्शक हो जाती है। इस युग के कवि ने पुरुष में नारी से अधिक विलास-प्रेम तथा वासना की प्रधानता देखी है। ''मत्त गज बनकर'' जब वह विवेक छोड़ने के तट पर होता है तब स्त्री ही उसको सन्मार्ग दिखाती है।[2] जब दमिश्क अरबों के आक्रमण से त्रस्त है तब सीरियन सेनानायक की पुत्री इयुडोसिया मातृभू के संकट-निवारण को प्रथम कर्तव्य जानती हुई भावी पति जोनस के विवाह प्रस्ताव से पीड़ित हो उठती है।[3] उस समय कामुकता के अभाव में कर्तव्य-प्रेरणा से पूर्ण नारी का कठोर रूप साक्षात चंडी के समान दीखता है।[4] इसी प्रकार रसिकेन्द्र की सारंधा पति की विलासिता को दूर कर कर्तव्यच्युत होने से कई बार बचाती है[5] और निराला की रत्नावली तुलसी को वासना-मुक्त करके चिर शांति की ओर अग्रसर करती है।[6]

इतनी कर्तव्यनिष्ठा से भरी नारी को कवि वियोग में असहाय की भांति रोते और प्रेमांध होते कैसे देख सकता है। आधुनिक कवि की नायिका तो क्षणिक आवेश पर विजय पाकर पतिहित और लोकाराधन हेतु निर्वासन को भी सहर्ष स्वीकार कर लेती है,[7] और चाँदनी भी जो पूर्ववर्ती काव्य में विरहिणियों के लिए दाहक कही जाती रही है, अब शुभ्र, भावों की वाहक हो जाती है।[8]

---

[1] वही, सर्ग ९, पृ० ३१३.

[2] जहाँ जहाँ पर पुरुष अंध बन कर ठोकर खाता,
वहाँ वहाँ मस्तिष्क काम में स्त्री का आता।
मानव का उद्धार किया करती है नारी,
मैं ही क्या, यह बात कथाएँ कहती सारी।
(प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १५, पृ० २७८, ७१)

[3] अजमिति हृत्य सखे, आज जब सबके सम्मुख उपस्थित है जीवन मरण का प्रश्न, तब व्यक्तिगत स्वार्थ क्या उचित है? कातर हमारी मही माता दस्यु पालिता।
× × ×
और हम उसकी प्रसूति युवा युवती, कामियों का क्रंदन करें हा! यहाँ बैठके?
प्रेम के प्रलय रहें, आज सब ओर से, निष्ठुर कर्तव्य ही पुकारता है हमको।
(मैथिलीशरण गुप्त—अर्जन और विसर्जन : अर्जन, पृ० ५)

[4] वही, पृ० ७—८.

[5] द्वारकाप्रसाद 'रसिकेन्द्र'—सारधा, सर्ग, ५, पृ० ४४—४५.

[6] सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—तुलसीदास, ८५ – ८६

[7] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग ६, पृ० ५९—६०, २५—३१, तथा पृ० ६३—६४, ४७—५७.

[8] वही, सर्ग १०, पृ० १२१.

नारी को इतना कर्तव्य-तत्पर और धर्मनिष्ठ देखने का तात्पर्य यह नहीं है कि कवि ने उसे मानवी न मान कर आदर्शों की प्रस्तरमूर्ति माना है। कवि ने नारी के हृदय में प्रेम का अगाध सागर देखा है मानव सुलभ दुर्बलतायें भी देखीं हैं, किन्तु नारी को उसने महत् और लोककल्याण की ओर लक्ष्य करनेवाली शक्ति के रूप में देखा है। फलतः उसका प्रेम कामुक दुर्बलता मात्र नहीं है। त्याग और संयम के आदर्श लेकर वह वास्तविक मंगलमय लक्ष्य की ओर अग्रसर होती है।

इस युग के कवि ने नारी के पतिव्रत और सतीत्व को अत्यंत प्रशस्त दृष्टिकोण से देखा है। किन्तु अब उसका आदर्श सहमरण तक ही सीमित[3] नहीं रह गया है; इसके विपरीत वह कहता है :—

"सहमरण के धर्म से भी ज्येष्ठ, आयु भर स्वामि-स्मरण है श्रेष्ठ।"[4]

आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव ने एक पग और आगे बढ़ाया है। उनकी नूरजहाँ पति की स्मृति को अमर बनाने के लिए ही तथा अपनी दुर्बलता पर विजय पाने के लिए शेर अफ़गन की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर का वरण करती देखी जाती है।[5]

---

[3]साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनादृते।
नान्यो धर्मोऽस्ति विज्ञेयो मृते भर्तरि कुत्रचित्॥
(याज्ञवल्क्य स्मृति में अपरार्क द्वारा उद्धृत : १, ८७)

[4]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ७, पृ० १९३.

[5]उनकी पत्नी होने का सौभाग्य भी
मुझे प्राप्त था, उनका कठिन वियोग जो
था असह्य, मेरे मन ने उनको सहा जो
मैंने वर लिया पुनः सम्राट को।
वह उनके प्रति उदासीनता थी नहीं,
थी कठोरता नहीं, दोष उसमें न था,
किन्तु सफलता थी वह मेरे हृदय की
मुझ में थी पति-भक्ति नहीं कम आज भी
मन में उनकी स्मृति ज्वलंत है अग्नि सी,
किन्तु बैठ कर रोना उनके लिए
मानवता के थी अयोग्य गुरु-दीनता।
वीर श्रेष्ठ थे वे, मुझको भी वीरता
धारण कर जीवित रहना था जगत् में
हृदय कड़ा कर लिया इसी से शीघ्र ही
कर लेने को स्वीय सफल संसार को।
यदि कोने में एक पड़ी रहती कहीं
दीन हीन मैं, निर्बल बन, असहाय बन,
कौन पूछता मुझे, उन्हें भी जानता
कौन जगत में ?

× × ×

मन था जिसका रहा उसी का नित्य ही, तन में क्या वह एक तुच्छ सी वस्तु है।
(आनंदीप्रसाद श्रीवास्तव झाँकी, पृ० ५३—५६)

एकनिष्ठ और स्थिर प्रेम ही नारी को सती बना देता है। सतीत्व नारी की शक्ति है जिसको लेकर कामी तथा अत्याचारी के नाश के लिए कोमल अबला भी चंडिका हो जाती है[1]। "पतिव्रता के कोपानल" में संसार को भी भस्म कर देने की शक्ति वर्तमान है[2]। विभीषण ने रावण का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया था[3] किन्तु मदान्ध रावण ने उसकी सत् सम्मति को न माना; उसका परिणाम तो हमें ज्ञात ही है।

आधुनिक कवि ने पत्नी को अर्धांगिनी और सहधर्मिणी के रूप में देखा है और उसे पति की शक्ति माना है। कवि के सम्मुख आदर्श देवताओं का है:—

"शिव शक्ति हीन शव हों जो छोड़ दे भवानी।"[4]

पूर्वजों के कथनों की प्रतिध्वनि करता हुआ कवि कहता है कि विवाह एक अनिवार्य आवश्यकता है क्योंकि उसके बिना मनुष्य अधूरा ही है[5] और :—

"माता, भगिनी, पत्नी, कन्या, नारी ही नर कुल धन धन्या
पत्नी रूप प्रकृत नारी का, मूलभूत इस फुलवारी का
जब मेरे सम्मुख आवेगा सहधर्मिणी उसे पावेगा।"[6]

अर्धांगिनी के बिना पुरुष कोई कार्य सफलतापूर्वक कर सकता है इसमें भी कवि को संदेह है[7]।

---

[1]जो सकंप तनुयष्टि झूलती रज्जु सदृश थी,
शिथिल हुई निर्जीव दीख पड़ती अति कृश थी,
आहा अब हो उठी अचानक वह हुँकरिता,
दाव-पेंच खा बनी काल फणिनी फुंकरिता,
मैं अबला हूँ किंतु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चंडिका बनी रहूँगी।
(मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : सैरंध्री, पृ० ३९—४०)
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त—काबा और कर्बला : काबा : न्याय पृ० ५५.
गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, सर्ग १५, पृ० ११२; तथा
प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १२, पृ० २२०, ९६.

[2]पतिव्रता के कोपानल में भस्म हो सके यह संसार,
सती शक्ति है सती स्वरूपा, सदा सर्वदा अपरंपार।
(नलनरेश, सर्ग १२, पृ० २१८, ८८)

[3]उड़ जावेगा दग्ध देश का सती श्वास से ही बल वित्त,
राम और लक्ष्मण तो होंगे कहने भर के लिए निमित्त।
(साकेत, सर्ग ११, पृ० ३९१)

[4]मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : 'आर्य भार्या', पृ० ८१.

[5]मुझ अर्धांगिनी के बिना अभी हैं अर्धांग अधूरे ही,
(साकेत, सर्ग ४, पृ० १००)

[6]मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ५२.

[7]हूँ मैं आधा अंग तुम्हारा, मेरे बिना कभी कुछ काम
कर सकते तुम नहीं कहीं पर,'सच कहती हूँ हे छविधाम।
(नल नरेश, १२ सर्ग, पृ० २०९)

जनसेवा, जो आधुनिक युग की प्रबल माँग है, वह भी सहधर्मिणी के बिना अपूर्ण ही है।[1] सहधर्मिणी को आधुनिक कवि ने प्रत्येक कार्य में पति का सहयोग देते हुए देखा है; यहाँ तक कि राजनीति भी उसके विचार के बाहर की वस्तु नहीं समझी गई है। नीति-निपुण और न्याय-निरत राम को भी कभी-कभी गूढ़ समस्यायें विचलित कर देती हैं,[2] तब सीता ही उनकी सहायता के लिए पहुँचती हैं।[3] इसीलिए कवि कहता है:—

"है विपत्ति निधि पोत स्वरूपा। सहकारी सिद्धियों की है॥
है पत्नि न केवल गेहिनी। सहधर्मिणी मंत्रिणी भी है।[4]

इस प्रकार सहयोग देती हुई कल्याणी नारी पति की सच्ची मित्राणी,[5] सुख तथा दुख की संगिनी,[6] छाया के समान उसको शीतलता और सुख प्रदान करने वाली,[7] अवलंब[8] और शक्ति हो जाती है।[9] निराशा के अवसर पर वह आशा और उत्साह का संदेश लेकर उपस्थित होती है, राक्षसी माया से "आलोक किरण" बनकर रक्षा करती है, और साथ ही साथ "जीवन जलनिधि से मुक्ता निकालने" का प्रयत्न करती है; वह पुरुष की पाशविक वृत्तियों का शमन करके उसमें मानवता का समावेश करती है, हिंस्र क्रूरता को

---

[1] मुझे है इष्ट जन सेवा, सदा सच्ची भुवन सेवा।
न होगी पूर्ण वह तब तक न हो सहधर्मिणी जब तक।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ९१)

[2] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास: ६ सर्ग, पृ० ७२, ४२.

[3] वही—पृ० ७२, ४३.
देखिए—नलनरेश ९ सर्ग, पृ० १५२.

[4] वैदेही वनवास, ६ सर्ग, पृ० ७२, ४४.

[5] पत्नी सदृश नहीं त्रिभुवन में कहीं मिलेगा सच्चा मित्र।
(प्रतापनारायण कविरत्न—नल नरेश, सर्ग १२, पृ०. २०९, ४१)

[6] सुख दुख के संगी सखा से यों अपना मन मोड़ चले। (वही, पृ० २०९, ४२)

[7] सचमुच ही तुम छाया मेरी, कितनी शीतल सघन अँधेरी।
तो क्यों मेरा श्रमणशील यह जीवन कहीं टरे?
(मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत, पृ० ६३, ४०)

[8] पथ हो विषम रात हो काली, तुम जो हो ले चलने वाली।
जब अंचल की छाया वाली, तब क्या तप, क्या वृष्टि। (वही, पृ०, ६४, ४०)

[9] जिसकी तुम हो शक्ति स्वरूपा। जो तुमसे पौरुष पाता॥
जिसकी सिद्धिदायिनी तुम हो। तुम सच्ची गृहिणी हो जिसकी॥

× × ×

कैसे काल कटेगा उसका, उसको क्यों न वेदना होगी।
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग ६, पृ०. ७१ ३७-४०)

विश्व-प्रेम और क्षमा में परिवर्तित करने के लिए "जग-मंगलमय संगीत सुनाती है।"[1] विविध अवसरों पर विविध रूपों में आकर वह स्नेहदान करती है—कभी माता-रूपिणी है, तो कभी भगिनी-सदृश और कभी सेविका है तो कभी सुखदा कामिनी।[2] साथ ही कभी-कभी वह प्रेरणामयी उत्तेजना भी हो जाती है :—

"रवन वह जो जिलाती है, और झोंके भी लाती है।"[3]

अपमानिता द्रौपदी के अश्रुओं ने पांडवों के वैरांकुरों को सींचा था,[4] और उसके वचन तो मृत को भी उत्तेजित कर देने वाले हैं :—

"करो सजगता की न नाथ, तुम और ठठोली।
आज आत्म सम्मान तुम्हारा जाग रहा क्या !
आघात हुए इतने तदपि नहीं हुआ प्रतिघात कुछ।
× × ×
जिसके पति हों पांच-पाच ऐसे बलशाली,
सुरपुर में भी करे कीर्ति जिनकी उजियाली।
काली हो अरि कांति देखकर जिनकी लाली,
सहूँ लांछना प्रिया उन्हीं की मैं पांचाली।"[5]

किन्तु यह प्रेरणा प्रायः पतन की ओर ले जाने वाली नहीं होती, वरन् पौरुष और महत्वाकांक्षा का संचार ही करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करती है।[6] इस प्रकार पथ-भ्रष्ट को मार्ग-प्रदर्शन करती हुई, पतन से उसकी रक्षा करती हुई नारी न केवल

---

[1]जयशंकर प्रसाद—कामायनी, पृ० ४६, ८७-८८, पृ० १०१ १०५ आदि.

[2]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत, पृ० ४३, २५, तथा
प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १०, पृ० १८१.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वन वैभव, पृ० १४, २२.

[4]विषम वैरांकुर पतियों के, न सींचें क्यों दृग सतियों के।
मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वन वैभव, पृ० १३, २१.

[5]वही पृ० ५१.

[6]दशा दलित हो गई यहाँ तक तुम्हें सूझती हरी हरी,
पौरुषहीन बने हा कब तक सेवोगे यों लालपरी।
× × ×
देखो समझो निज मर्यादा, अपने पुरुषों का सम्मान,
यों मत मिट्टी में मिल जाने दो अपने गौरव का ज्ञान।
× × ×
इस संसार समर प्रांगण में जीवन है क्या इक संग्राम,
रंगमंच पर नायक बनकर दिखलावें हम अपना काम।
हम मनुष्य हैं, क्यों निराश हो बैठें, धरे हाथ पर हाथ,
यहाँ नहीं तो और देश में परखें भाग धैर्य के साथ।
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, ११ सर्ग पृ० ६—७)

विश्व-प्रेम और क्षमा में परिवर्त्तित करने के लिए "जग-मंगलमय संगीत सुनाती है।"[1] विविध अवसरों पर विविध रूपों में आकर वह स्नेहदान करती है—कभी माता-रूपिणी है, तो कभी भगिनी-सदृश और कभी सेविका है तो कभी सुखदा कामिनी।[2] साथ ही कभी-कभी वह प्रेरणामयी उत्तेजना भी हो जाती है :—

"रचन वह जो जिलाती है, और झोंके भी लाती है।"[3]

अपमानिता द्रौपदी के अश्रुओं ने पांडवों के वैरांकुरों को सींचा था,[4] और उसके वचन तो मृत को भी उत्तेजित कर देने वाले हैं :—

"करो सजगता की न नाथ, तुम और ठठोली।
आज आत्म सम्मान तुम्हारा जाग रहा क्या!
आघात हुए इतने तदपि नहीं हुआ प्रतिघात कुछ।
× × ×
जिसके पति हों पांच-पाच ऐसे बलशाली,
सुरपुर में भी करे कीर्ति जिनकी उजियाली।
काली हो अरि कांति देखकर जिनकी लाली,
सहूँ लांछना प्रिया उन्हीं की मैं पांचाली।"[5]

किन्तु यह प्रेरणा प्रायः पतन की ओर ले जाने वाली नहीं होती, वरन् पौरुष और महत्वाकांक्षा का संचार ही करके आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करती है।[6] इस प्रकार पथ-भ्रष्ट को मार्ग-प्रदर्शन करती हुई, पतन से उसकी रक्षा करती हुई नारी न केवल

---

[1]जयशंकर प्रसाद—कामायनी, पृ० ४६, ८७-८८, पृ० १०१ १०५ आदि.

[2]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत, पृ० ४३, २५, तथा
प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, सर्ग १०, पृ० १८१.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वन वैभव, पृ० १४, २२.

[4]विषम वैरांकुर पतियों के, न सींचें क्यों दृग सतियों के।
मैथिलीशरण गुप्त—त्रिपथगा : वन वैभव, पृ० १३, २१.

[5]वही पृ० ५१.

[6]दशा दलित हो गई यहाँ तक तुम्हें सूझती हरी हरी,
पौरुषहीन बने हा कब तक सेवोगे यों लालपरी।
× × ×
देखो समझो निज मर्यादा, अपने पुरुषों का सम्मान,
यों मत मिट्टी में मिल जाने दो अपने गौरव का ज्ञान।
× × ×
इस संसार समर प्रांगण में जीवन है क्या इक संग्राम,
रंगमंच पर नायक बनकर दिखलावें हम अपना काम।
हम मनुष्य हैं, क्यों निराश हो बैठें, धरे हाथ पर हाथ,
यहाँ नहीं तो और देश में परखें भाग धैर्य के साथ।
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, ११ सर्ग पृ० ६—७)

गुप्त जी की यशोधरा इस भावना का वैषम्य उपस्थित करती है। वास्तव में गुप्त जी भगवान बुद्ध और उनके अमृत-तत्व की ओर इतने आकृष्ट नहीं हैं जितने उस समस्त तपस्या के मूल-केन्द्र गोपा की ओर। गुप्त जी की गोपा को महाभिनिष्क्रमण करते हुए सिद्धार्थ त्याग कर नहीं जाते। उसे न जगाने का कारण यह है कि "अब भी है अप्राप्त सार।"[1] सिद्धार्थ के चले जाने पर यशोधरा इस भावना से सिहर उठती है कि उसे सिद्धि-मार्ग की बाधा समझा गया।[2] उसके हृदय पर सिद्धि हेतु जाने वाले का छिप कर जाना एक कठोर आघात हो जाता है।[3] और भलीभाँति विदा देने के अवसर का चूक जाना क्षोभ उत्पन्न करता है। फिर भी यशोधरा का प्रेम गौतम के महत् रूप को देख कर और भी गहन हो जाता है और मिलन के स्थान पर वह यही चाहती है :—

"जायँ सिद्धि पावें वे सुख से, दुखी न हों इस जन के दुःख से।"[4]

गौतम के प्रत्यागमन का समाचार सुन कर सखी से यशोधरा का सर्वप्रथम प्रश्न यही होता है —"आली उन्हें सिद्धि तो मिली है?" यशोधरा की सहानुभूति और सद्भावना की चरम परिणति गौतमबुद्ध के ही शब्दों में अभिव्यक्त होती है : —

"आया जब मार मुझे मारने को बारबार
अप्सरा अनीकिनी सजाये हेम हीर से।
तुम तो थीं यहाँ, धीर ध्यान तुम्हारा वहाँ
जूझा मुझे पीछे कर पंचशर वीर से।"[5]

इस प्रकार गुप्त जी ने एक प्राचीन आख्यान को लेकर ही मौलिक भावना की उद्भावना की है। उन्होंने पत्नी को निर्वाणमार्ग की बाधा के रूप में नहीं वरन् सहयोगिनी के रूप में देखा है। उनका कुणाल भी, इसी प्रकार, अपने विरक्त जीवन में पत्नी कांचनमाला को ज्योति रूप में ग्रहण करता है और उससे परलोक मार्ग की ओर ले चलने को कहता है :—

"लोक जाय परलोक खड़ा है, चलो, सींचती बोती।"[6]

इस भावना ने आधुनिक कवि की कल्पना में तुलसीदास की पत्नी रत्नावली की स्मृति जाग्रत कर दी है, जो तुलसी की भक्ति-भावना की मूल प्रेरणा हुई। देश पर्यटन करते हुए तुलसी में देश की दुरावस्था और लोगों की अज्ञता देख कर अज्ञान नाश करने

[1]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : महाभिनिष्क्रमण, पृ० १६.

[2]सिद्धि मार्ग की बाधा नारी। फिर उसकी क्या गति है। तथा—

"हाय स्वार्थिनी थी मैं ऐसी, रोक तुम्हें रख लेती"
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती"
(मैथिलीशरण गुप्त— यशोधरा : यशोधरा, पृ० ४४ तथा पृ० ४१)

[3]वही, पृ०, २१, तथा पृ० ४०.

[4]वही, पृ० २३.

[5]वही, बुद्धदेव, पृ० २११.

[6]मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत : पृ० ४१, २३.

की व्याकुल प्रेरणा है, किन्तु पत्नी के रूप पर आसक्त और मुग्ध तुलसी अपनी इच्छा को क्रिया रूप में परिणत नहीं कर पाते। उनके मस्तिष्क में बनी हुई रत्नावली की मूर्ति बाधक हो जाती है। उसके करुण नयन "निर्वाण के पथिक के वारण" से प्रतीत होते हैं। किन्तु यह प्रेमांध तुलसी की कल्पना की छलना ही है जो नारी का मोहक रूप उपस्थित करके तुलसी को विचलित कर रही है। वास्तविकता तो तब व्यक्त होती है जब तुलसी अपनी समस्त शिक्षा और ज्ञान को प्रिया के चरणों में न्योछावर करने पहुँचते हैं, और रत्नावली उन्हें इस पर धिक्कारती है। इस समय वह साक्षात अनल प्रतिमा बन जाती है, जिसकी ज्वाला में समस्त अज्ञान और वासना जल जाती है, और तुलसी को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है :—

"इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान, हो गया भस्म वह प्रथम मान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।"[1]

अब तुलसी को रत्नावली साधारण नारी—काम के आलंबन—के रूप में नहीं वरन् ज्योति की तारिका के रूप में दृष्टिगोचर होती है और :—

"जिस कलिका में कवि रहा बंद वह आज इसी में खुली मंद।"[2]

काम की पुत्री श्रद्धा को चिरंतन आनंद की पथप्रदर्शक के रूप में उपस्थित करके प्रसाद ने इस प्रकार की नारी भावना को और भी चमत्कृत कर दिया है। श्रद्धा "महा-ज्योति की रेखा सी बन कर" अपने मुख पर "विश्वास भरी स्मिति निश्छल" लिए हुए दग्ध और भ्रांत मनु को निज अवलंब देकर इच्छा, कर्म और ज्ञान भूमियों का दर्शन कराती हुई वहाँ ले जाती है जहाँ :—

"समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखंड घना था।"[3]

इस प्रकार आधुनिक कवि ने पत्नी को न केवल भौतिक क्षेत्र में वरन् आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी एक प्रेरक, सहायक और दीपस्तंभ के रूप में देखा है।

पत्नी रूप में नारी प्रेमिका है, सहचरी है, पतिव्रता है, अर्धांगिनी है, और सती है, साथ ही वह गृहिणी भी है। इस युग का कवि भारतीय कुटुंब भावना का प्रेमी है[4]। फलतः स्त्री जो कुटुंब का केन्द्र है, प्रायः गृहलक्ष्मी के ही रूप में कवि की भावना में अवतरित होती है। इस युग का आदर्शवादी कवि 'आर्यनारी' को लक्ष्मी रूप में देखता

---

[1] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ८६, ८७.

[2] सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ८८, ९०.

[3] जयशंकर प्रसाद—कामायनी : आनंद, पृ० २२०.

[4] जाति बड़ी है, देश अभी बड़ा, विश्व का क्या कहना.
जल में थल में और गगन में मैं हूँ कौटुम्बिक कवि मात्र। (मैथिलीशरण गुप्त)

गुप्त जी की यशोधरा इस भावना का वैपम्य उपस्थित करती है। वास्तव में गुप्त जी भगवान बुद्ध और उनके अमृत-तत्व की ओर इतने आकृष्ट नहीं हैं जितने उस समस्त तपस्या के मूल-केन्द्र गोपा की ओर। गुप्त जी की गोपा को महाभिनिष्क्रमण करते हुए सिद्धार्थ त्याग कर नहीं जाते। उसे न जगाने का कारण यह है कि "अब भी है अप्राप्त सार।"[1] सिद्धार्थ के चले जाने पर यशोधरा इस भावना से सिहर उठती है कि उसे सिद्धि-मार्ग की बाधा समझा गया।[2] उसके हृदय पर सिद्धि हेतु जाने वाले का छिप कर जाना एक कठोर आघात हो जाता है।[3] और भलीभाँति विदा देने के अवसर का चूक जाना क्षोभ उत्पन्न करता है। फिर भी यशोधरा का प्रेम गौतम के महत् रूप को देख कर और भी गहन हो जाता है और मिलन के स्थान पर वह यही चाहती है :—

"जायँ सिद्धि पावें वे सुख से, दुखी न हों इस जन के दुःख से।"[4]

गौतम के प्रत्यागमन का समाचार सुन कर सखी से यशोधरा का सर्वप्रथम प्रश्न यही होता है —"आली उन्हें सिद्धि तो मिली है?" यशोधरा की सहानुभूति और सद्भावना की चरम परिणति गौतमबुद्ध के ही शब्दों में अभिव्यक्त होती है: —

"आया जब मार मुझे मारने को बारबार
अप्सरा अनीकिनी सजाये हेम हीर से।
तुम तो थीं यहाँ, धीर ध्यान तुम्हारा वहाँ
जूझा मुझे पीछे कर पंचशर वीर से।"[5]

इस प्रकार गुप्त जी ने एक प्राचीन आख्यान को लेकर ही मौलिक भावना की उद्भावना की है। उन्होंने पत्नी को निर्वाणमार्ग की बाधा के रूप में नहीं वरन् सहयोगिनी के रूप में देखा है। उनका कुणाल भी, इसी प्रकार, अपने विरक्त जीवन में पत्नी कांचन-माला को ज्योति रूप में ग्रहण करता है और उससे परलोक मार्ग की ओर ले चलने को कहता है :—

"लोक जाय परलोक खड़ा है, चलो, सींचती बोती।"[6]

इस भावना ने आधुनिक कवि की कल्पना में तुलसीदास की पत्नी रत्नावली की स्मृति जाग्रत कर दी है, जो तुलसी की भक्ति-भावना की मूल प्रेरणा हुई। देश पर्यटन करते हुए तुलसी में देश की दुरावस्था और लोगों की अज्ञता देख कर अज्ञान नाश करने

---

[1] मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : महाभिनिष्क्रमण, पृ० १६.

[2] सिद्धि मार्ग की बाधा नारी। फिर उसकी क्या गति है। तथा—

"हाय स्वार्थिनी थी मैं ऐसी, रोक तुम्हें रख लेती"
जहाँ राज्य भी त्याज्य, वहाँ मैं जाने तुम्हें न देती"
(मैथिलीशरण गुप्त— यशोधरा : यशोधरा, पृ० ४४ तथा पृ० ४१)

[3] वही, पृ०, २१, तथा पृ० ४०.

[4] वही, पृ० २३.

[5] वही, बुद्धदेव, पृ० २११.

[6] मैथिलीशरण गुप्त—कुणालगीत : पृ० ४३, २३.

की व्याकुल प्रेरणा है, किन्तु पत्नी के रूप पर आसक्त और मुग्ध तुलसी अपनी इच्छा को क्रिया रूप में परिणत नहीं कर पाते। उनके मस्तिष्क में बनी हुई रत्नावली की मूर्ति बाधक हो जाती है। उसके करुण नयन "निर्वाण के पथिक के वारण" से प्रतीत होते हैं। किन्तु यह प्रेमांध तुलसी की कल्पना की छलना ही है जो नारी का मोहक रूप उपस्थित करके तुलसी को विचलित कर रही है। वास्तविकता तो तब व्यक्त होती है जब तुलसी अपनी समस्त शिक्षा और ज्ञान को प्रिया के चरणों में न्योछावर करने पहुँचते हैं, और रत्नावली उन्हें इस पर धिक्कारती है। इस समय वह साक्षात अनल प्रतिमा बन जाती है, जिसकी ज्वाला में समस्त अज्ञान और वासना जल जाती है, और तुलसी को ज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है :—

"इस ओर ज्ञान, उस ओर ज्ञान, हो गया भस्म वह प्रथम मान,
छूटा जग का जो रहा ध्यान, जड़िमा वह।"[1]

अब तुलसी को रत्नावली साधारण नारी—काम के आलंबन—के रूप में नहीं वरन् ज्योति की तारिका के रूप में दृष्टिगोचर होती है और :—

"जिस कलिका में कवि रहा बंद वह आज इसी में खुली मंद।"[2]

काम की पुत्री श्रद्धा को चिरंतन आनंद की पथप्रदर्शक के रूप में उपस्थित करके प्रसाद ने इस प्रकार की नारी भावना को और भी चमत्कृत कर दिया है। श्रद्धा "महा-ज्योति की रेखा सी बन कर" अपने मुख पर "विश्वास भरी स्मिति निश्छल" लिए हुए दग्ध और भ्रांत मनु को निज अवलंब देकर इच्छा, कर्म और ज्ञान भूमियों का दर्शन कराती हुई वहाँ ले जाती है जहाँ :—

"समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था,
चेतनता एक विलसती आनन्द अखंड घना था।"[3]

इस प्रकार आधुनिक कवि ने पत्नी को न केवल भौतिक क्षेत्र में वरन् आध्यात्मिक उन्नति के लिए भी एक प्रेरक, सहायक और दीपस्तंभ के रूप में देखा है।

पत्नी रूप में नारी प्रेमिका है, सहचरी है, पतिव्रता है, अर्धांगिनी है, और सती है, साथ ही वह गृहिणी भी है। इस युग का कवि भारतीय कुटुंब भावना का प्रेमी है[4]। फलतः स्त्री जो कुटुंब का केन्द्र है, प्रायः गृहलक्ष्मी के ही रूप में कवि की भावना में अवतरित होती है। इस युग का आदर्शवादी कवि 'आर्यभार्या' को लक्ष्मी रूप में देखता

[1]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ८६, ८७.
[2]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तुलसीदास, पृ० ८८, ९०.
[3]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : आनंद, पृ० २२०.
[4]जाति यहीं है, देश यहीं बड़ा, विश्व का क्या कहना,
जल में थल में और जगत में मैं हूँ कौटुम्बिक कवि मात्र। (मैथिलीशरण गुप्त)

है[1]। स्त्री में लक्ष्मीत्व की व्याख्या करते हुए निराला लिखते हैं "लक्ष्मी से नारी की महिमा व्यंजित होती है। जिस प्रकार सुलक्षणता से वह गृह की कर्तृ है, ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, और दूसरों को भोजन-पान और स्नेह देकर तृप्त करती है और गृह के समस्त वातावरण को शांति से ढके हुए चारुता देती हुई वह पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा मूर्ति बन कर आती है, वह उसका लक्ष्मी भाव है। रक्षा, सेवा आदि इसके अंतर्गत हैं। इसी का विकास मातृत्व में होता है। मनुष्य का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।[2] फलत : दुखदग्ध भारत के उद्धार के लिए कवि "जीवन और स्फूर्ति" तथा 'सुख और संपद की पूर्ति" गृहलक्ष्मी को ही पुकारता है :—

' घर की लक्ष्मी तुम्हीं हमारी, लालन पालन करो उठो,
पुन्य भूमि भारत के सारे, दुःख शोक हरो, उठो।"[3]

नारी में जो निर्माण और ममता की मनोवृत्ति है वह परिवार में ही सफलता पाती है। आधुनिक कवि ने उस स्वभाव का आदर किया है। इसीलिए कवि की आदि मानवी गृह के उपकरण जुटाती[4] हुई देखी जाती है जब मनु "काम के संदेश से ही भर रहे थे कान।" जब मनु श्रद्धा से "एकान्त दुलार" की याचना करते हैं तब श्रद्धा उन्हें निज निर्मित कुटीर दिखाती है जहाँ : —

"उस गुफा समीप पुआलों की छाजन छोटी सी शांति पुंज,
कोमल लतिकाओं की डालें मिल सघन बनाती जहाँ कुंज।
थे वातायन भी कटे हुए प्राचीर पर अमिय रचित शुभ्र,
आवें क्षण भर तो चले जायँ रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र।"[5]

इस कुटीर में बैठ कर गान के साथ श्रद्धा चिरनग्न प्राणों को ढकने के लिए ऊनी वस्त्र

---

[1]तू धन्य आर्य भार्ये, तू प्रेम राज्य रानी।
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती,
बनता अहा! अमृत है तेरा पुनीत पानी॥

× × ×

हे देवि, घर हमारे मंदिर बने तुम्हीं से,
सब दुःख दूर करती संतोषपूर्ण वाणी।"

(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत, पृ० ८१)

[2]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' चाबुक : कला और देवियाँ, पृ० ६१.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : मातृ मंगल, पृ० ८२.
देखिए, प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, पृ० २१०.

[4]इधर गृह में आ जुटे थे उपकरण अधिकार,
शस्य पशु या धान्य का होने लगा संचार।

(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ० ६६)

[5]वही, ईर्ष्या, पृ० ११६.

चुनती है।[1]यद्यपि निज ममत्वमात्र चाहने वाले पुरुष को "यह गृह-लक्ष्मी का गृह विधान" अच्छा नहीं लगता, तो भी इस विधान के पीछे जो भावी नवागंतुक की मधुर कल्पना है और "मीठी अभिलाषाएं" हैं वह पत्नी का धन है। क्योंकि वह पत्नी ही नहीं 'जाया" भी है। जाया शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए ऋषियों ने कहा है "जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः"। अस्तु भारतीयों में प्रेम का आधार केवल "स्त्रीभाव" नहीं वरन् स्त्री भाव में छिपा हुआ मातृभाव था, जो गृह और परिवार में अपनी अभिव्यक्ति पाता है।

३. मातृ-रूप :—

कुटुंब की कल्पना में मुग्ध और नारी के जाया रूप के उपासक आधुनिक कवि के लिए माता रूप में नारी की कल्पना अत्यंत आकर्षक हो गई है। अदिति में वैदिक कवियों ने जिस निखिल मातृरूप का समावेश किया था, वह इस युग में पुनः कविप्रिय हो उठा है।

प्राचीन मनीषियों ने नारी जीवन की सफलता मातृत्व में देखी थी। पत्नी के आदर का विशेष कारण उसका पुत्रवती होना था।[2] इस कृषि प्रधान देश में जब समाज निर्माण की अवस्था में ही था, उर्वरता की पूजा करते हुए भारतवासियों ने स्त्री को 'क्षेत्र' कहा था[3] और उसे 'सीता' (=पृथ्वी) नाम भी दिया था। पुत्र को नरक से तारने वाला कह कर[4] प्राचीन भारतीयों ने पुत्रवती माता के पद को पुत्रहीना की तुलना में बहुत ऊँचा उठा दिया था।[5] किन्तु आधुनिक कवि का दृष्टिकोण इस संबन्ध में कुछ भिन्न और अधिक उदार हो गया है। आधुनिक कवि के मस्तिष्क में पुत्र की वर्तमानता तथा तर्पण आदि के लिए पुत्र की अनिवार्यता ही नारी के मातृरूप के आदर का कारण नहीं है वरन, नारी की स्वभावज ममता, स्नेह, वात्सल्य, सेवाभाव आदि अपना चरम उत्कर्ष माता में ही पाते हैं, नारी की पालन-पोषण की शक्ति मातृरूप में विशेषतया व्यक्त होती है, नारी का मातृरूप लोक-कल्याण की क्षमता रखता है—इन भावनाओं से प्रेरित होकर इस युग के लगभग समस्त कवियों ने शाश्वत मातृरूप की उपासना की है। उनकी भावना "विश्व मातृ-मूर्ति" में विकसित होकर अधिक व्यापक और उज्ज्वल हो गई है।

आधुनिक कवि ने नारी से एक जन्म-जात मातृत्व पाया है। स्वभावज मातृत्व के कारण नारी "जीवन के शैशव प्रभात में गुड़िया" बनाती है, उसी को नव यौवन में गोदी

---

[1]वही, ईर्ष्या, पृ० ११०.
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० २०४—२०९.
[2]अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.
[3]स्त्रीक्षेत्रं बीजिनो नरा :—नारदस्मृति, १२, १९.।
[4]पुन्नाम नरकात् त्रायत इति पुत्रः।
[5]अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीजेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.
तथा, बजेरिशि वेडर—विमेन इन एन्शियंट इंडिया, पृ० ६.

है[1]। स्त्री में लक्ष्मीत्व की व्याख्या करते हुए निराला लिखते हैं "लक्ष्मी से नारी की महिमा व्यंजित होती है। जिस प्रकार सुलक्षणता से वह गृह की कर्तृ है, ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, और दूसरों को भोजन-पान और स्नेह देकर तृप्त करती है और गृह के समस्त वातावरण को शांति से ढके हुए चारुता देती हुई वह पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा मूर्ति बन कर आती है, वह उसका लक्ष्मी भाव है। रक्षा, सेवा आदि इसके अंतर्गत हैं। इसी का विकास मातृत्व में होता है। मनुष्य का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।[2] फलत: दुखदग्ध भारत के उद्धार के लिए कवि "जीवन और स्फूर्ति" तथा 'सुख और संपद की पूर्ति" गृहलक्ष्मी को ही पुकारता है :—

'घर को लक्ष्मी तुम्हीं हमारी, लालन पालन करो उठो,
पुन्य भूमि भारत के सारे, दुःख शोक हरो, उठो।"[3]

नारी में जो निर्माण और ममता की मनोवृत्ति है वह परिवार में ही सफलता पाती है। आधुनिक कवि ने उस स्वभाव का आदर किया है। इसीलिए कवि की आदि मानवी गृह के उपकरण जुटाती[4] हुई देखी जाती है जब मनु "काम के संदेश से ही भर रहे थे कान।" जब मनु श्रद्धा से "एकान्त दुलार" की याचना करते हैं तब श्रद्धा उन्हें निज निर्मित कुटीर दिखाती है जहाँ :—

"उस गुफा समीप पुआलों की छाजन छोटी सी शांति पुंज,
कोमल लतिकाओं की डालें मिल सघन बनाती जहाँ कुंज।
थे वातायन भी कटे हुए प्राचीर पर अमिय रचित शुभ्र,
आवें क्षण भर तो चले जायँ रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र।"[5]

इस कुटीर में बैठ कर गान के साथ श्रद्धा चिरनग्न प्राणों को ढकने के लिए ऊनी वस्त्र

---

[1]तू धन्य आर्य भार्ये, तू प्रेम राज्य रानी।
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती,
बनता अहा! अमृत है तेरा पुनीत पानी॥

× × ×

हे देवि, घर हमारे मंदिर बने तुम्हीं से,
सब दुःख दूर करती संतोषपूर्ण वाणी।"

(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत, पृ० ८१)

[2]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' चाबुक : कला और देवियाँ, पृ० ६१.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : मातृ मंगल, पृ० ८२.
देखिए, प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, पृ० २१०.

[4]इधर गृह में आ जुटे थे उपकरण अधिकार,
शस्य पशु या धान्य का होने लगा संचार।

(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ० ६६)

[5]वही, ईर्ष्या, पृ० ११६.

चुनती है।[1] यद्यपि निज ममत्वमात्र चाहने वाले पुरुष को "यह गृह-लक्ष्मी का गृह विधान" अच्छा नहीं लगता, तो भी इस विधान के पीछे जो भावी नवागंतुक की मधुर कल्पना है और "मीठी अभिलाषाएं" हैं वह पत्नी का धन है। क्योंकि वह पत्नी ही नहीं "जाया" भी है। जाया शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए ऋषियों ने कहा है "जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः"। अस्तु भारतीयों में प्रेम का आधार केवल "स्त्रीभाव" नहीं वरन् स्त्री भाव में छिपा हुआ मातृभाव था, जो गृह और परिवार में अपनी अभिव्यक्ति पाता है।

३. मातृ-रूप :—

कुटुंब की कल्पना में मुग्ध और नारी के जाया रूप के उपासक आधुनिक कवि के लिए माता रूप में नारी की कल्पना अत्यंत आकर्षक हो गई है। अदिति में वैदिक कवियों ने जिस निखिल मातृरूप का समावेश किया था, वह इस युग में पुनः कविप्रिय हो उठा है।

प्राचीन मनीषियों ने नारी जीवन की सफलता मातृत्व में देखी थी। पत्नी के आदर का विशेष कारण उसका पुत्रवती होना था।[2] इस कृषि प्रधान देश में जब समाज निर्माण की अवस्था में ही था, उर्वरता की पूजा करते हुए भारतवासियों ने स्त्री को 'क्षेत्र' कहा था[3] और उसे 'सीता' (=पृथ्वी) नाम भी दिया था। पुत्र को नरक से तारने वाला कह कर[4] प्राचीन भारतीयों ने पुत्रवती माता के पद को पुत्रहीना की तुलना में बहुत ऊँचा उठा दिया था।[5] किन्तु आधुनिक कवि का दृष्टिकोण इस संबन्ध में कुछ भिन्न और अधिक उदार हो गया है। आधुनिक कवि के मस्तिष्क में पुत्र की वर्तमानता तथा तर्पण आदि के लिए पुत्र की अनिवार्यता ही नारी के मातृरूप के आदर का कारण नहीं है वरन्, नारी की स्वभावज ममता, स्नेह, वात्सल्य, सेवाभाव आदि अपना चरम उत्कर्ष माता में ही पाते हैं, नारी की पालन-पोषण की शक्ति मातृरूप में विशेषतया व्यक्त होती है, नारी का मातृरूप लोक-कल्याण की क्षमता रखता है—इन भावनाओं से प्रेरित होकर इस युग के लगभग समस्त कवियों ने शाश्वत मातृरूप की उपासना की है। उनकी भावना "विश्व मातृ-मूर्ति" में विकसित होकर अधिक व्यापक और उज्ज्वल हो गई है।

आधुनिक कवि ने नारी से एक जन्म-जात मातृत्व पाया है। स्वभावज मातृत्व के कारण नारी "जीवन के शैशव प्रभात में गुड़िया" बनाती है, उसी को नव यौवन में गोदी

---

[1] वही, ईर्ष्या, पृ० ११७.
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० २०४—२०९.

[2] अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.

[3] क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजभूतः स्मृतः पुमान्... नारदस्मृति, १२, १९.

[4] पुन्नाम नरकात् त्रायत इति पुत्रः।

[5] अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.
तथा, क्लेरिसि बेडर—विमेन इन एन्शियंट इंडिया, पृ० ६.

है[1]। स्त्री में लक्ष्मीत्व की व्याख्या करते हुए निराला लिखते हैं "लक्ष्मी से नारी की महिमा व्यंजित होती है। जिस प्रकार सुलक्षणता से वह गृह की कर्तृ है, ऐश्वर्य को स्थितिशील करती है, और दूसरों को भोजन-पान और स्नेह देकर तृप्त करती है और गृह के समस्त वातावरण को शांति से ढके हुए चारुता देती हुई वह पति तथा दूसरों की दृष्टि में महिमा मूर्ति बन कर आती है, वह उसका लक्ष्मी भाव है। रक्षा, सेवा आदि इसके अंतर्गत हैं। इसी का विकास मातृत्व में होता है। मनुष्य का पालन करने वाले विष्णु की शक्ति लक्ष्मी इसी मातृत्व में पूर्णत्व प्राप्त करती है।[2] फलत: दुखदग्ध भारत के उद्धार के लिए कवि "जीवन और स्फूर्ति" तथा 'सुख और संपद की पूर्ति" गृहलक्ष्मी को ही पुकारता है :—

'घर की लक्ष्मी तुम्हीं हमारी, लालन पालन करो उठो,
पुन्य भूमि भारत के सारे, दुःख शोक हरो, उठो।"[3]

नारी में जो निर्माण और ममता की मनोवृत्ति है वह परिवार में ही सफलता पाती है। आधुनिक कवि ने उस स्वभाव का आदर किया है। इसीलिए कवि की आदि मानवी गृह के उपकरण जुटाती[4] हुई देखी जाती है जब मनु "काम के संदेश से ही भर रहे थे कान।" जब मनु श्रद्धा से "एकान्त दुलार" की याचना करते हैं तब श्रद्धा उन्हें निज निर्मित कुटीर दिखाती है जहाँ :—

"उस गुफा समीप पुआलों की छाजन छोटी सी शांति पुंज,
कोमल लतिकाओं की डालें मिल सघन बनाती जहाँ कुंज।
थे वातायन भी कटे हुए प्राचीर पर अमिय रचित शुभ्र,
आवें क्षण भर तो चले जायँ रुक जायँ कहीं न समीर, अभ्र।"[5]

इस कुटीर में बैठ कर गान के साथ श्रद्धा चिरनग्न प्राणों को ढकने के लिए ऊनी वस्त्र

---

[1]तू धन्य आर्य भार्ये, तू प्रेम राज्य रानी।
प्रत्येक धाम तेरी है रम्य राजधानी।
लक्ष्मी स्वरूपिणी तू सुख है सदैव देती,
बनता अहा! अमृत है तेरा पुनीत पानी॥

× × ×

हे देवि, घर हमारे मंदिर बने तुझी से,
सब दुःख दूर करती संतोषपूर्ण वाणी।"

(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत, पृ० ८१)

[2]सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' चाबुक : कला और देवियाँ, पृ० ६१.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : मातृ मंगल, पृ० ८२.
देखिए, प्रतापनारायण कविरत्न—नलनरेश, पृ० २१०.

[4]इधर गृह में आ जुटे थे उपकरण अधिकार,
शस्य पशु या धान्य का होने लगा संचार।

(जयशंकर प्रसाद—कामायनी : वासना, पृ० ६६)

[5]वही, ईर्ष्या, पृ० ११६.

बुनती है।[1]यद्यपि निज ममत्वमात्र चाहने वाले पुरुष को "यह गृह-लक्ष्मी का गृह विधान" अच्छा नहीं लगता, तो भी इस विधान के पीछे जो भावी नवागंतुक की मधुर कल्पना है और "मीठी अभिलाषाएं" हैं वह पत्नी का धन है। क्योंकि वह पत्नी ही नहीं 'जाया" भी है। जाया शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए ऋषियों ने कहा है "जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः"। अस्तु भारतीयों में प्रेम का आधार केवल "स्त्रीभाव" नहीं वरन् स्त्री भाव में छिपा हुआ मातृभाव था, जो गृह और परिवार में अपनी अभिव्यक्ति पाता है।

३. मातृ-रूप :—

कुटुंब की कल्पना में मुग्ध और नारी के जाया रूप के उपासक आधुनिक कवि के लिए माता रूप में नारी की कल्पना अत्यंत आकर्षक हो गई है। अदिति में वैदिक कवियों ने जिस निखिल मातृरूप का समावेश किया था, वह इस युग में पुनः कविप्रिय हो उठा है।

प्राचीन मनीषियों ने नारी जीवन की सफलता मातृत्व में देखी थी। पत्नी के आदर का विशेष कारण उसका पुत्रवती होना था।[2] इस कृषि प्रधान देश में जब समाज निर्माण की अवस्था में ही था, उर्वरता की पूजा करते हुए भारतवासियों ने स्त्री को 'क्षेत्र' कहा था[3] और उसे 'सीता' (=पृथ्वी) नाम भी दिया था। पुत्र को नरक से तारने वाला कह कर[4] प्राचीन भारतीयों ने पुत्रवती माता के पद को पुत्रहीना की तुलना में बहुत ऊँचा उठा दिया था।[5] किन्तु आधुनिक कवि का दृष्टिकोण इस संबन्ध में कुछ भिन्न और अधिक उदार हो गया है। आधुनिक कवि के मस्तिष्क में पुत्र की वर्तमानता तथा तर्पण आदि के लिए पुत्र की अनिवार्यता ही नारी के मातृरूप के आदर का कारण नहीं है वरन, नारी की स्वभावज ममता, स्नेह, वात्सल्य, सेवाभाव आदि अपना चरम उत्कर्ष माता में ही पाते हैं, नारी की पालन-पोषण की शक्ति मातृरूप में विशेषतया व्यक्त होती है, नारी का मातृरूप लोक-कल्याण की क्षमता रखता है—इन भावनाओं से प्रेरित होकर इस युग के लगभग समस्त कवियों ने शाश्वत मातृरूप की उपासना की है। उनकी भावना "विश्व मातृ-मूर्ति" में विकसित होकर अधिक व्यापक और उज्ज्वल हो गई है।

आधुनिक कवि ने नारी से एक जन्म-जात मातृत्व पाया है। स्वभावज मातृत्व के कारण नारी "जीवन के शैशव प्रभात में गुड़िया" बनाती है, उसी को नव यौवन में गोदी

---

[1]वही, ईर्ष्या, पृ० ११०.
देखिए—मैथिलीशरण गुप्त, साकेत, पृ० २०४—२०९.

[2]अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय २, पृ० ११८.

[3]क्षेत्रभूता स्मृता नारी बीजिनो नरा :—नारदस्मृति, १२, १९.।

[4]पुन्नाम नरकात् त्रायत इति पुत्रः।

[5]अल्टेकर—पोज़ीशन आव विमेन इन हिन्दू सिवलीज़ेशन, अध्याय ३, पृ० ११८.
तथा, क्लेरिसि बेडर—विमेन इन एनशियंट इंडिया, पृ० ६.

की शोभा के रूप में पाकर जीवन सार्थक करती है।[1] मातृत्व नारी की व्याकुल साध है। शिशु की विह्वल अभिलाषा विहगों के नीड़ को देख कर फूट पड़ती है :—

"देखो नीडों में विहग युगल, अपने शिशुओं को रहे चूम।
उनके घर में कोलाहल है, मेरा सूना है गुफा द्वार।"[2]

चिर संचित आशा को लेकर नारी नीड़ का निर्माण करती है,[3] और नवागंतुक की मधुमयी कल्पना में डूब डूब कर अपने प्रतीक्षा के दिवसों को व्यतीत करती है।[4] निज वात्सल्य निधि को हृदय में लिए वह दुर्भर पीड़ा को भी 'सलील' झेलती है,[5] और श्रम-विंदु भावी जननी के सरस गौरव को लेकर झलक उठते हैं।[6] आधुनिक कवि गर्भिणी के सौंदर्य का वर्णन करता है। यों तो काव्यशास्त्र निर्माताओं ने गर्भिणी के सौंदर्य का वर्णन निषिद्ध माना था, किन्तु संस्कृत तथा हिन्दी काव्य में यह यत्र-तत्र मिल ही जाता है। संस्कृत कवि में प्रायः सौंदर्य दृष्टि की प्रधानता रहती थी।[7] रीतिकालीन हिन्दी कवियों ने जो चित्र खींचे हैं वे प्रायः कामुक प्रेरणा से।[8] किन्तु परिवर्तन युग का हिन्दी कवि नवीना माता के गौरव तथा जननी के भाव-सौंदर्य की दृष्टि से गर्भिणी का वर्णन करता है। आधुनिक कवि ने नारी-जीवन यौवन, पत्नीत्व और मातृत्व के विकासशील इतिहास के रूप में देखा है। यौवन की उच्छृंखलता और उन्माद पत्नीत्व में स्वच्छ शुभ्र

---

[1]ओ मेरी गोदी के धन !
जीवन के शैशव-प्रभात में जब से अपना ज्ञान हुआ,
गुड़िया बना खिलाया तुझको, कितना भोला वह बचपन।

× × ×

कर आह्वान बुलाया तुझको था वह मेरा नव यौवन।
नारी का जीवन है सार्थक गोदी की इस शोभा से।
(तारा पांडे—वेणुकी, पृ० ४७, ४४)

[2]कामायनी: ईर्ष्या, पृ०११२.

[3]देखो यह तो बन गया नीड़,
पर इसमें कलरव करने को, आकुल न हो रही अभी भीड़।
(कामायनी : ईर्ष्या, पृ० ११७)

[4]कामायनी : ईर्ष्या, पृ० ११८.

[5]दुर्भर थी गर्भ मधुर-पीड़ा, झेलती जिसे जननी सलील। (वही, पृ० १११)

[6]श्रम विंदु बना सा झलक रहा, भावी जननी का सरस गर्व। (वही)

[7]कालिदास - रघुवंश: ३, २.

[8]विहारी रत्नाकर, पृ० २८६, ६९२, तथा मतिराम सतसई; पृ० ४७४, ६०९.

प्रफुल्लता में परिणत हो जाता है, और मातृत्व में समस्त भाव उदात्त होकर अपनी स्निग्ध सान्ध्य छाया में शुक्र-सा शिशु पाते हैं।[1]

वास्तव में मातृत्व में नारी का चरम विकास है, और वात्सल्य में प्रेम की पूर्णता। इस युग के कवि ने यशोदा[2] और महाप्रजावती[3], कैकेयी[4], और देवकी[5], कुन्ती[6], और सुमित्रा[7] कौशल्या[8] और मघमाता[9], सीता[10], श्रद्धा[11] और यशोधरा[12] आदि वात्सल्य मूर्तियों को अपनाकर अपनी भावना का विकास किया है।

यशोदा और महाप्रजावती निर्मल वात्सल्य मात्र से युक्त हैं। उनका वात्सल्य एक ऐसा मोह है जैसा कि एक वृद्धा को अपनी लकड़ी से हो जाता है। यह दोनों दो पक्षों की पूर्ति हैं। एक संयोग के सहज संतुष्ट वात्सल्य की[13] और द्वितीय वियोग के करुण

---

[1]नव वसंत के मृदु हिलोल से ही विलोल, उच्छृंखल,
तुम यौवन के गहन विजन में भटक रही थीं चंचल,
करतीं थीं तुम सब सखियाँ मिल सुरभि रभस से व्याकुल, मायाच्छन्न विपिन को।
सहसा हुआ शरद् का आगम
बिन वर्षा के। पक्व शस्य से लहराया क्या विभ्रम
धरणी के हृत्तल में। प्लुत सरित् सीमांतर में
शुभ्र काशवन हुआ प्रफुल्लित पुलक विकल निर्भर में
किलक उठा कल क्रंदन। पल में स्तब्ध हुआ पिककूजन;
देखा तुमने हृदय गगन जब अपना—
फूल रहा था स्निग्ध सान्ध्य छाया में सुमधुर सपना—
स्वच्छ नीलिमा में सोया था अलक्षित वेदन न्यारा;
पाया तुमने विह्वल हिय में उज्ज्वल सन्ध्या तारा!
(इलाचन्द्र जोशी—विजनवती : नवीन माता, पृ० ९३)
देखिए— रामधारीसिंह दिनकर— रसवंती : नारी, २.

[2]मैथिलीशरण गुप्त – द्वापर.

[3]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा.

[4]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत; तथा प्रतापनारायण कविरत्न भरत-भक्ति.

[5]मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर.

[6]मैथिलीशरण गुप्त—वकसंहार.

[7]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत; प्रतापनारायण कविरत्न—भरत भक्ति.

[8]वही,

[9]मैथिलीशरण गुप्त—अनघ.

[10]अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास.

[11]जयशंकर प्रसाद – कामायनी.

[12]मैथिलीशरण गुप्त – यशोधरा.

[13]द्वापर, पृ० ८—१५.

स्नेह की।[1] देवकी में निष्फल वात्सल्य विद्रोहात्मक हो उठा है। प्रसव वेदना की व्यर्थता उसके हृदय पर असह्य आघात है।[2] छै पुत्रों की अकारण हत्या नास्तिकता को जन्म देती है।[3] मातृत्व पर आघात भ्रातृ-प्रेम को भी उखाड़ फेंकता है और नारी की उस प्रतिहिंसा को जाग्रत कर देता है,[4] जो अर्धचेतना में चिल्ला उठती है: —

"पर अब भी बंधन में हूँ मैं विवश, देख लो बेटा,
और कंस उच्छृंखल अब भी सुख शैया पर लेटा।
जाओ मेरे पूत-प्रेत तुम प्रथम उसे लग जाओ,
सुख से सो न सके वह देखो "हूँ" कर उसे जगाओ।"[5]

कैकेयी का पुत्रस्नेह अपने में पूर्ण है। "रामचरित मानस" तथा "रामचरित चिन्तामणि" के कवियों ने कैकेयी की भर्त्सना तो की थी किन्तु नारी हृदय के इस पक्ष को भुला दिया था। किन्तु इस युग का कवि वैसा न कर सका। तुलसी की कैकेयी के कोप को प्रज्ज्वलित करने में सौतिया डाह सफल हुआ था।[6] गुप्त जी की कैकेयी के मस्तिष्क को यह भाव कि: —

"भरत से सुत पर भी संदेह बुलाया तक न उन्हें जो गेह।"[7]

प्रभंजन की भाँति घुमा देता है और पति से प्रेम[8] और कौशल्या का आदर[9] करती हुई भी वह अपने वश में नहीं रह पाती। उसका मातृ-हृदय कलंक का आवाहन करके भी पुत्र का प्रतिशोध लेने में तत्पर है। वात्सल्यभाव ने आज उसे पाषाणी बना

---

[1] यशोधरा, पृ० २७—२८.

[2] हा भगवान! होगई व्यर्थ वह प्रसव वेदना सारी,
लेकर यह अनुभूति चेतना कहाँ रहे यह नारी।
कुढ़ता है दो टूक कलेजा कर हैं मेरे दो ही,
किसे किसे थामूँ तू ही कह हे मेरे निर्मोही। (द्वापर—देवकी : पृ० ८१)

[3] कहाँ गया है राम, आज वह तेरा राज्य, अरे रे।
मरे न, मारे गए अहे वे छै छै बच्चे मेरे।
बच्चे मेरे मेरे बच्चे मैं बोलूं क्या जै जै
मेरा मन तो चिल्लाता है एक दो नहीं छै छै। (वही पृ० ७८—७९)

[4] इसी कोख से जनती जाऊँ उन्हें निरन्तर तब लों।
ध्वंस न कर दें कंस राज्य वे मेरे जाये जब लों। (वही पृ० ८५)

[5] वही, पृ० ८३.

[6] मंथरा कद्रू विनतहिं दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिला देब।
भरतु बंदिग्रह सेइहहि लखनु राम कर नेब॥
(तुलसी-रामचरितमानस : अयोध्या कांड, दोहा २०)

[7] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग २, पृ० ३२.

[8] वही, पृ० ३३.

[9] वही, पृ० ३५.

दिया है, और आगे चलकर वात्सल्य के पात्र द्वारा की गई उपेक्षा और विरक्ति ही उस अभिमानिनी को 'गोमुखी गंगा" में परिवर्तित कर देती है।[1] अपमान सह कर भी वह अपने मातृपद को छोड़ना नहीं चाहती। दीना कैकेयी संसार में एकाकी वात्सल्य का निरादर देख राम के सम्मुख आंचल पसार कर कह उठती है :—

"कुछ मूल्य नहीं वात्सल्य मात्र क्या तेरा
पर आज अन्य सा हुआ वत्स भी मेरा।
थूके मुझ पर त्रैलोक्य भले ही थूके
जो कोई जो कह सके, कहे क्यों चूके ?
छीने न मातृपद किन्तु भरत का मुझसे,
हे राम, दुहाई करूँ और क्या तुमसे ![2]

कौशल्या, सुमित्रा, कुंती और मघ की माता का वात्सल्य उदारता और कर्तव्य-निष्ठा को लेकर उज्ज्वलतर हो गया है। "मूर्तिमयी ममता-माया" कौशल्या "मां का मन" लिए भी कुल, गौरव और धर्म भावना से प्रेरित होकर अपनी सुधासिक्त कल्याणी वाणी में राम को विदा देती हुई, दीखती है।[3] और जब कौशल्या विकल होती है तब सुमित्रा अपनी क्षत्रियाणी सुलभ दृढ़ता को लिए आगे आती है :—

"जीजी ! विकल न हो अब यों आशा हमें जिलावेगी,
अवधि अवश्य मिलावेगी।"[4]

साथ ही गुप्त जी की कौशल्या का मातृत्व उपाध्याय जी की कौशल्या के समान[5] भरत के प्रति अनुदार नहीं है। वे तो भरत को पाकर राम मिलन का ही अनुभव करतीं हैं :—

---

[1]वही सर्ग ८, पृ० २२०.

[2]वही,

[3]जाओ, तब बेटा ! वन ही, पाओ नित्य धर्म धन ही।
जो गौरव लेकर जाओ—लेकर वही लौट आओ।
पूज्य पिता-प्रण रक्षित हो, माँ का लक्ष्य सुलक्षित हो।
घर में घर की शांति रहे, कुल में कुल की कांति रहे।

(वही, सर्ग ४, पृ० ६०—६१)

[4]वही, पृ० ९२; देखिए—भरत-भक्ति, सर्ग १४, पृ० २५७, ६८.

[5]"छल से छलेसद्म ! हा वृथा वनवासी मम राम को बना।
सुख से धन धान्य पूरिता, तुम भोगो गत-कंटका मही।
पर का अधिकार छीनना, यह कैसा अपराध घोर है।
इसका विधिवत् जवाब दो, यम देगा तुमको परत्र में।

(रामचरित उपाध्याय—रामचरित चिंतामणि, सर्ग ५)

"वत्स रे आजा, जुड़ा यह अंक, भानुकुल के निष्कलंक मयंक।
मिल गया मेरा मुझे तू राम, तू वही है भिन्न केवल नाम।"[1]

क्षत्रियाणी माता कुंती में हम कर्तव्य और वात्सल्य का अंतर्द्वन्द्व पाते हैं। सत्कारक ब्राह्मण के पुत्र की रक्षा करने के लिए वह निज पुत्र का बलिदान करने को प्रस्तुत होती है। राक्षस के भोजन हेतु अपने पुत्र को भेजते हुए उसका मातृ हृदय रो उठता है[2], किन्तु अपने अंतर्द्वन्द्व को वह प्रकट नहीं होने देती[3] और उत्साहपूर्ण शब्दों में उन्हें पुत्रों को विदा देती है :—

"सब शत्रुओं को मार कर पितृ राज्य का उद्धार कर,
भोगो सभी सुख भोग मिल कर, सर्वदा।[4]

इसी प्रकार अनन्य पुत्र-स्नेह से पूर्ण मघ की माता अपने अंचल की स्निग्ध शीतल छाया में मघ की रक्षा करती हुई भी मोह से कर्तव्य-च्युत नहीं पाई जाती। वह स्वयं एक विशाल मातृत्व से युक्त होकर न केवल निज पुत्र की मां है वरन् ग्राम के समस्त बालक बालिकाओं की माता है। यह सहज प्रीति स्वार्थ से हीन है।

अस्तु, जन सेवा-व्रत धारी पुत्र की वह बाधा नहीं बनती। अन्य समय बिना पुत्र को भोजन कराये उसे भूख नहीं लगती थी किन्तु आज जब ग्रामवासियों पर कष्ट के बादल छाये हैं वह भूखे मघ से कहती है :—,

"जा, जी में कुछ सोच न कर, तू मेरा संकोच न कर।[5]

निज व्रत पर अटल रहने के कारण दंडित मघ को देख कर उसका वक्ष गर्व से भर जाता है।[6] पुत्र के लिए उसका आशीर्वाद तो यही है : -

"आओ बेटा, दण्ड मिले सो तुम सहो,
अपने व्रत पर अटल अचल यों ही रहो।[7]

---

[1]मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ७, पृ० १८१.
[2]भगवान में ही किस तरह, जाने उन्हें दूँ इस तरह,
क्या मारने को ही उन्हें जना। (मैथिलीशरण गुप्त—वकसंहार, पृ० ४६, ८७)
[3]जब वीर पुत्रों से मिली, तब फिर तनिक काँपी हिली।
पर अन्य क्षण मानो प्रकट थी धीरता। (वही पृ० ४७, ८८)
[4]वही, पृ० ५४, १०२.
[5]मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० २८.
[6]मुझको तो है गर्व तुम्हारे कर्म पर,
मेरा सुत बलिदान हुआ है धर्म पर।
माना दारुण शोक सहूँगी वत्स मैं, पर गौरव के साथ रहूँगी वत्स मैं।
(वही, पृ० ११२)
[7]वही, पृ० ११२.

उपेक्षिता यशोधरा, निर्वासिता सीता और परित्यक्ता श्रद्धा का कष्ट लगभग एक सा है। पति वियोग में नेत्रों के अश्रुपूर्ण रहते हुए भी जिस निष्ठा, साहस, धैर्य और दूरदर्शिता के साथ जननी बनी हुई जाया शिशु का पालन, पोषण तथा शिक्षण करती है उसको कवियों ने इन नारियों में देखा है, और उसकी पय और पानी मिश्रित कहानी[1] को लिखा है।

नारी के संसार में पुत्र की महत्ता अतुल है। पति के अभाव या अनुपस्थिति में "पिता का प्रतिनिधि" उसका जीवन-संबल हो जाता है। उसकी करुणा हर्ष मिश्रित हो जाती है। विरस ओष्ठ पुनः प्रफुल्लित हो जाते हैं और शुष्क अंग रंजित हो उठते हैं।[2] उसका "लघु विश्व" सूना नहीं रहता वरन् मधुर कलरव से मुखरित हो उठता है और उसकी आँखों का पानी स्निग्ध अमृत बन जाता है।[3] शिशु के सुख मात्र की आकांक्षा करती हुई नारी का वात्सल्य पति प्रेम से भी बढ़ जाता है, और वह उपेक्षा —किन्तु निरादर नहीं— के साथ कहती है :—

मेरा शिशु संसार वह दूध पिये, परिपुष्ट हो
पानी के ही पात्र तुम प्रभो, रुष्ट या तुष्ट हो।[4]

पति के लिए रोती रोती वह पुत्र के लिए हँस देती है।[5] "लाल" को लेकर उसके सम्मुख "अंजन और अंगराग" का कोई मूल्य नहीं है।[6] जननी के गौरव को पाकर वह अतीत के "रानीपन" को भी भूलने में समर्थ होती है।[7] पुत्र के मुख को देख कर वह अपने दुख के क्षणों को भी सुखमय कर लेती है।[8] उसको सबसे बड़ा संतोष यही है कि चाहे वह स्वयं

---

[1]अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी
आंचल में है दूध और आँखों में पानी।
(मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा, पृ० ५९)

[2]आँख में करुणा जल के संग, हर्ष के बिंदु समाये सरस,
विरस ओष्ठों पर पहुंचा सुरस, शुष्क अंगों में आया रंग।
(रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता : सर्ग, पृ० ५५)

[3]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : ईर्ष्या, पृ० ११८.

[4]मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : राहुल जननी, पृ० ५९, तथा
तुझको क्षीर पिला कर लूँगी, नयन नीर ही उनको दूंगी। (वही, पृ० ५८)

[5]गाती है मेरे लिए, रोती उनके अर्थ। (वही, पृ०, १६०७)

[6]मेरी मलिन गूदड़ी में भी है राहुल सा लाल
क्या है अंजन अंगराग जब मिली विभूति विशाल।" (वही : यशोधरा, पृ० ३८)

[7]राहुल, रानीपन देकर तेरी चिर परिचर्या पाऊँ।
तेरी जननी कहलाऊँ तो इस परवश मन को बहलाऊँ (वही, पृ० ९७)

[8]यह मुख देख देख दुख में भी सुख से देव दया गुण गाऊँ। (वही, पृ० ९७)

कितने ही कष्ट में हो कर मर्म पीड़ा से गले किन्तु उसका शिशु भलीभांति पले।[1] उस पति के प्रतीक और भविष्य की आशा को वह सदैव प्रसन्न ही देखना चाहती है।[2]

किन्तु पति की इस "थाती" के लिए नारी का उत्तरदायित्व और कर्तव्य बहुत बढ़ जाता है। उसे शिशु का शारीरिक पालन-पोषण ही नहीं करना है वरन् पिता के अभाव की भी पूर्ति करनी है। इसका मार्ग कठिन है, आपदाओं से पूर्ण है, किनारा भी दूर है, और सारी चिंता का केंद्र "गांठ का अमूल्य रत्न" है। फिर भी कर्तव्य भावना उसे प्रेरित करती है और वह विश्वास का सहारा ले आगे बढ़ती है।[3] अपने विस्तृत कार्य-क्षेत्र में वह यह आत्म-संयम और दूरदर्शिता के साथ पग बढ़ाती है। शिशु का शारीरिक पोषण करने के साथ-साथ माता उसकी मानसिक वृद्धि भी करती है। स्वभावतः जिज्ञासु बालक की प्रश्नावलियों का ठीक-ठीक उत्तर देकर, उसके ज्ञान की वृद्धि करके, उसकी प्रवृत्तियों को सन्मार्गोन्मुख करके वास्तविक गुरु के रूप में आती है।[4] इसीलिए कवि की यह धारणा है :—

जननी केवल है जन जननी ही नहीं।
उसका पद है जीवन का भी जनयिता॥
उसमें है वह शक्ति सुत चरित्र सृजन की।
नहीं पा सका जिसे प्रकृति कर से पिता॥[5]

वियोगिनी की भावना का केन्द्र शिशु का पिता होता है, अतः उसकी सारी शिक्षा का आदर्श भी वही होता है। पति की स्मृति को सजग रखकर नारी उसी सांचे में पुत्र को भी ढालने में सुख पाती है। यह उसके पति प्रेम और वात्सल्य भाव का समन्वय है। वियोग के अंत में अनन्य स्नेह परिपालित उस थाती को पति चरणों में समर्पित करके वह प्रेम और वात्सल्य की चरम परिणति को प्राप्त करती है।[6]

---

[1] गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है। (वही, पृ० ६४)

[2] बेटा मैं तो हूँ रोने को, तेरे सारे मल धोने को,
हंस तू है सब कुछ होने को। (वही, पृ० ५८)

[3] वही, पृ० ७०—७२.

[4] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, सर्ग १५.
देखिए—यशोधरा; पृ० ७४—७५; पृ० ७६—७७ पृ० ८३, पृ० १०९—११८; तथा रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, सर्ग ८, पृ० ५९.

[5] अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही वनवास, १२ सर्ग, पृ० १५२, २५.

[6] तुम भिक्षुक बन कर आये थे गोपा क्या देती स्वामी!
था अनुरूप एक राहुल ही रहे सदा यह अनुगामी।
(मैथिलीशरण गुप्त—यशोधरा : यशोधरा, पृ० २१३)

तभी वह पुरुष, जिसने मातृत्व से ईर्ष्या की थी, जिसने निज अधिकार भावना से भर कर नारी की अक्षय वात्सल्य निधि को "प्रेम बाँटने का प्रकार" समझा था, पहचान पाता है:—

यह कुमार मेरे जीवन का उच्च अंश, कल्याण कला।
कितना बड़ा प्रलोभन मेरा हृदय स्नेह बन जहाँ ढला।[1]

और अप्रतिहत स्नेह से पूर्ण, क्षमा और करुणा की अधिवासिनी में विस्मय के साथ वह एक विराट् मातृ-मूर्ति देखता है।[2]

वास्तव में आधुनिक कवि की मातृ-भावना निज संतान की संकुचित सीमा को पार कर विस्तृत और व्यापक हो गई है। उसने तो नारी में एक शाश्वत और विराट् मातृ-रूप पाया है जो अपनी दिव्य शक्तियों को लिए हुए सृष्टि का सृजन, पालन और कल्याण करता है। आदि शक्ति के रूप में "माता" कवि के सम्मुख आती है।[3] वह "भव चक्र चालिनी, लोक लालिनी" है, "विश्वपालिनी" "अघक्षालिनी" है। साथ ही वह "सहनशीलता की मूर्ति" और "त्याग की प्रतिमा" भी है। उसकी गोदी में उसके अंचल की छाया में समस्त विश्व विश्राम करता है;[4] और :—

"तेरे मुसकाने से जग के गान, विलास और उद्गार।
मिल कर हो जाते हैं तत्क्षण त्याग भिक्षता एकाकार।"[4]

उसका कभी ह्रास न होने वाला निस्वार्थ प्रेम संसार के पापों और दोषों को धो देता है[5]। वह "जग जीवन की जननी" है और उसकी पालनकर्त्री है —

---

[1]जयशंकर प्रसाद—कामायनी ; निर्वेद, पृ० १७३.

[2]मनु ने देखा कितना विचित्र ! वह मातृ मूर्ति थी विश्वमित्र !
कामायनी—दर्शन, पृ० १८८, तथा

"तुम देवि आह कितनी उदार, यह मातृ मूर्ति है निर्विकार
हे सर्वमंगले ! तुम महती सबका दुख अपने पर सहती,
कल्याणमयी वाणी कहती तुम क्षमा निलय में हो रहती" (वही, पृ० १८९)

[3]जिनके कटाक्ष से करोड़ों शिव-विष्णु-अज कोटि-कोटि सूर्य-चंद्र तारा-ग्रह
कोटि-इंद्र-सुरासुर-जड़ चेतन मिले हुए जीव-जग
बनते पलते हैं—नष्ट होते हैं अंत में—सारे ब्रह्मांड के जो मूल में विराजती हैं,
आदि शक्ति रूपिणी
शक्ति से जिनकी शक्तिशालियों में सत्ता है, माता हैं मेरी वे !'
(निराला : परिमल : पंचवटी प्रसंग, पृ० २२२)

देखिए—मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : आह्वान, पृ० ९—१०, तथा
राष्ट्रीय संदेश : रामचंद्र शर्मा 'विद्यार्थी'—माताओं से।

[4]विश्व तुम्हारी गोदी में है, आंचल ओढ़ शयन करता।"
(मोहनलाल महतो—निर्माल्य : माँ, पृ० ५३)

[5]तेरा पावन प्रेम जगत को पावन करता,
मद, मत्सर, मालिन्य, मोहतम मन का हरता।"
(गोपालशरण सिंह—मंचिता : मातृ महिमा, पृ० ६२)

"है तुझ से ही लालित पालित यह भोला भाला संसार
करती है प्लावित वसुधा को तेरी प्रेम सुधा की धार।"[1]

असहाय विश्व के लिए उसके उर से पय-धार का प्रवाह होता है :—

"क्षुधित देख असहाय विश्व को बहती है उर से पयधार।"[1]

फलतः "मानवता की मूर्ति" "दया, क्षमा, ममता की आकर, विश्व-प्रेम की आधार "करुणा की कालिंदी"[1] स्वरूपा मातृ-शक्ति से कवि ने मृत भारत का उद्धार करने के लिए आह्वान किया है।[2] आधुनिक जन-जीवन दुख पूर्ण है। मनुष्य स्वार्थ और स्पर्धा से अंधे हैं, शारीरिक स्वास्थ्य विगलित है, मन चेतनाहीन है और स्वायत्व के कारण ज्ञान का नाश हो गया है। कवि इन दोषों को दूर करने के लिए, जगत में समता और एकता का प्रचार करने के लिए "जननी" को ही पुकारता है।[3] माँ के चरणों में अपने

---

[1]गोपालशरण सिंह—मानवी : माँ.

[2]हे माताओं आओ, उठ कर हमें जगाओ।
हम मरते हैं, स्तन्य दान कर हमें बचाओ, क्षमता दो,
देखें कौन घृणा करता है, हमको तुम निज ममता दो।
करुणा श्रोत बहाओ!

× × ×

हम हताश हो चुके हार कर, विदुला बन कर शिक्षा दो,
नीच समझते हैं सब हमको, उच्च भाव की भिक्षा दो।
हम रोगी हैं अमृत करों से हमें पथ्य का दान करो,
भ्रम में पड़ कर भटक रहे हैं, हमें तथ्य का दान करो।
दया, दान, दाक्षिण्य तुम्हीं से हो सकते हैं प्राप्त हमें।
आत्मत्याग, अनुराग तुम्हीं से मिलते हैं बस व्याप्त हमें।
(मैथिलीशरण गुप्त—स्वदेश संगीत : मातृ-मंगल, पृ० ८२—८३)

[3]सार्थक करो प्राण!
जननी, दुख अवनि को दुरित से दो त्राण।
स्पर्द्धान्ध जन, गात्र जर्जर अहोरात्र,
शेष जीवन मात्र कुड्मल गताघ्राण।
चेतनाहीन मन मानता स्वार्थ धन
दुष्ट ज्यों हो सुमन छिद्र-शत तनु यान।
आई परंपरा जीत लूँगा धरा
एत-विश्व वर-करा अजया, गया ज्ञान।
(सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—गीतिका, पृ० ५६, ५३)

देखिए—वही, पृ० ३१, ३०.

श्रम संचित फलों आदि को समर्पित करता हुआ कवि जगत का ताप हरने के लिए, हृदय की शक्ति और शांति के लिये माँ के वरदान की आकांक्षा करता है।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि ने नारी को एक शाश्वत माता के रूप में देखा है और उसको प्रेम, त्याग, करुणा, सेवा-शक्ति, धैर्य और क्षमता आदि महत्वपूर्ण गुणों से सम्पन्न कर उसे एक उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। आंजनेय के समान ही आधुनिक कवि का "चिर शिशु भाव" "अंबा के अंचल पट में पुलकित"[2] हो उठता है। उसके विश्वासों का आधार नारी का अमर मातृरूप ही है।[3] इस प्रकार की धारणाओं की वर्तमानता में आश्चर्य ही क्या है अगर कवि "माँ के पैरों तले स्वर्ग" ही को पाले।[4]

---

[1] नर जीवन के स्वार्थ सकल !
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ मेरे श्रम संचित सब कन्द फल
जीवन के रथ पर चढ़ कर, सदा मृत्यु पथ पर बढ़ कर,
महाकाल के खरतर शर सह सकूं मुझे तू कर दृढ़तर।
(वही, पृ० २०, २०)
देखिए—सियारामशरण गुप्त—दूर्वादल : जननी, पृ० ४८,
सुमित्रानन्दन पन्त—पल्लव : विनय, पृ० २९, तथा
वही—आकांक्षा, पृ० १०१.

[2] मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ११, पृ० ३८१.

[3] मेरे सब विश्वास वहाँ हैं, मातृरूपिणी स्त्रियाँ जहाँ हैं।
(मैथिलीशरण गुप्त—अनघ, पृ० ४९)

[4] मैथिलीशरण गुप्त—काबा और कर्बला : मातृ-भक्ति, पृ० २९.

अध्याय ६

परिवर्तन युग में नारी का असत् रूप

पिछले दो अध्यायों में नारी के सत्-रूप का विवेचन विस्तार के साथ हो चुका है। नारी का सत्-रूप आधुनिक कवि की नारी भावना के केन्द्र में स्थित है। पीछे देखा गया है कि कवि नारी को विविध विभूति-सम्पन्ना देवी तथा अद्भुत शक्ति के रूप में देखता है। नारी के प्रेम में उसे विश्वास है और उसकी करुणा, उदारता, और सेवा की आकांक्षा है। नारी को कवि ने इन विविध गुणों का शाश्वत् कोष माना है। अपनी इस भावना को स्पष्टतम करने के लिए आधुनिक कवि ने, विकृति और दुर्बलता को संसार का नियम मानते हुए, नारी के उस रूप को भी देखा है केवल जिसको ही देख कर कबीर, तुलसी आदि कवियों ने अपनी घृणात्मक नारी भावना का निर्माण कर लिया था। आधुनिक कवि ने कौशल्या के साथ कैकेयी, सीता के साथ शूर्पनखा और श्रद्धा के साथ इड़ा को देखा है; किन्तु कैकेयी, शूर्पनखा और इड़ा उसकी मूल भावना में कोई परिवर्तन नहीं करतीं, वरन् पोषण ही करती हैं। नारी का यह असत्-रूप सत्-रूप का वैषम्य है, जिसके कारण परवर्ती रूप और भी अधिक उज्ज्वल दीखता है, जिस प्रकार सघन श्यामल मेघों के नीचे श्वेत हिमाच्छादित शिखर या अमानिशा में शुक्र तारा। साथ ही, महत्त्वपूर्ण तथ्य तो यह है कि कवि की दृष्टि में असत् रूप नारी का यथार्थ रूप नहीं है, वरन् एक विकृति मात्र है जो क्षणिक है और सत् का सहयोग और सम्पर्क पाकर अपने सुप्त नारीत्व को जाग्रत करने में समर्थ होता है। कुछ उदाहरण लेकर हम कवि के इस दृष्टिकोण की परीक्षा करेंगे।

उल्लिखित प्रकार की भावना कवि प्रसाद में सब से अधिक प्रबल है। अपने नाटकों में ही राज्यश्री और सुरमा, पद्मावती और मागधी, वासवी और छलना, मल्लिका और शक्तिमती, देवसेना और विजया, जयमाला और अनंतदेवी आदि के वैषम्य उपस्थित करके प्रथम के महान् सौंदर्य के सम्मुख द्वितीय की प्रणति को दिखाया था। उनकी यह भावना श्रद्धा और इड़ा के वैषम्य में चरमता को प्राप्त हुई है। प्रसाद ने हृदय (भावना—विश्वास) को नारी के यथार्थ स्वरूप का पर्यायवाची माना है, और मस्तिष्क (बुद्धि-तर्क) को पुरुष का। स्त्री जब इस पौरुषी वृत्ति को ग्रहण करती है, जैसा 'कामायनी' की इड़ा ने किया, तो वह अपने नारीत्व को, पुरुष के हृदय को पाने की शक्ति को, खो बैठती है। इड़ा का चित्र प्रसाद ने इस प्रकार खींचा है :—

"बिखरीं अलकें ज्यों तर्क जाल

× × ×

वक्षस्थल पर एकत्र धरे संसृति के सब विज्ञान ज्ञान—
था एक हाथ में कर्म कलश वसुधा जीवन रस सार लिए

दूसरा विचारों के नभ को था मधुर अभय अवलंब दिए
त्रिवली थी त्रिगुण तरंगमयी, आलोक वसन लिपटा अराल
चरणों में थी गति भरी ताल !"[1]

इड़ा में प्रतिभा है। वह प्रभात की प्रथम किरण के साथ मनु के जीवन में आती है, किन्तु उस श्रद्धा के समान नहीं: जिसकी जिज्ञासा मनु की क्लांति और वेदना में आश्रित है, और जो मनु को जगमंगलमय संदेश सुनाती हुई आत्मसमर्पण करती है, वरन् एक स्वार्थ को लेकर वह मनु का स्वागत करती है[2] उसने मनु से निज कार्य-सिद्धि चाही वासनाहीन आत्म-समर्पण नहीं किया श्रद्धा के शब्दों में "सिर चढ़ी रही ! पाया न हृदय"। श्रद्धा यदि अनंत कल्याणमयी स्नेहपूर्ण प्रेरणा है तो इड़ा दम और मादकता पूर्ण उत्तेजना। वह मनु को कर्मशील और सफल बनाती है[3]. किंतु मनु की मानसिक अशांति को शांत करने के स्थान पर उसे निरंतर बढ़ाती ही जाती है। कर्म का आसव पिला-पिलाकर वह मनु को अधिकाधिक अतृप्त और उत्तप्त बनाती है।[4] बौद्धिकता, भौतिकता और व्यक्ति स्वातंत्र्य की प्रतीक-स्वरूप इड़ा की रचना में :—

वह विज्ञानमयी अभिलाषा, पंख लगाकर उड़ने की,
जीवन की असीम आशायें कभी न नीचे मुड़ने की,
अधिकारों की सृष्टि और उनकी वह मोहभरी माया
वर्गों की खाईं बन फैली कभी नहीं जो जुड़ने की।[5]

इड़ा निर्बाधित अधिकार की विरोधिनी है, अपनी ओर से मनु की शुभाकांक्षिणी है; किन्तु उसने मनु को प्रकृति से प्रेम नहीं संघर्ष सिखाया और हिंसात्मक कर्म (यज्ञ, बलि) की प्रेरणा दी।

---

[1]जयशंकर प्रसाद—कामायनी : इड़ा, पृ० १२२.

[2]"स्वागत ! पर देख रहे हो तुम यह उजड़ा सारस्वत प्रदेश
भौतिक हलचल से यह चंचल हो उठा देश ही था मेरा
इसमें अब तक हूँ पड़ी इसी आशा में आये दिन मेरा।" (वही, पृ० १२५)

[3]इड़ा अग्नि ज्वाला सी आगे जलती है उल्लास भरी,
मनु का पथ आलोकित करती विपद नदी में बनी तरी,
उन्नति का आरोहण, महिमा शैल शृंग सी, श्रांति नहीं,
तीव्र प्रेरणा की धारा सी बही वहीं उत्साह भरी।
वह सुन्दर आलोक किरन सी हृदय भेदिनी दृष्टि लिए,
जिधर देखती, खुल जाते हैं तम ने जो पथ बंद किये।
मनु की सतत सफलता का वह उदय विजयिनी तारा थी।
(कामायनी : स्वप्न, पृ० १४१)

[4]इड़ा ढालती थी वह आसव, जिसकी बुझती प्यास नहीं,
तृषित कंठ को, पी पी कर भी, जिसमें है विश्वास नहीं, (वही, पृ० १४३)

[5]वही : स्वप्न, पृ०, १४५.

इसीलिये श्रद्धा ने इड़ा को यह विशेषण दिये:—

"तुम आशामयि! चिर आकर्षण, तुम मादकता की अवनत घन,
मनु के मस्तक की चिर अतृप्ति, तुम उत्तेजित चंचला शक्ति।[1]

इड़ा ने अपने "अभिनय" में सुख शांतिमय 'अपनेपन' (ममत्व), जो एक प्राणी को दूसरे से बाँध देता है, खो दिया था। श्रद्धा ने उसकी त्रुटि की ओर संकेत किया—

"तू विकल कर रही है अभिनय अपनापन चेतन का सुखमय
खो गया, नहीं आलोक उदय।"[2]

और तर्क को अपनाकर क्षमारूपी निधि को भूल गई और जीवन के सरल मार्ग का त्याग करके एक अस्वाभाविक मार्ग को अपना बैठी।[3]

इड़ा की इन प्रवृत्तियों का फल हुआ विध्वंस! उससे मानव जाति का कल्याण न हो सका। इसके विपरीत जीवन में एक खोखलापन बन गया। स्नेह का निर्मल आदान-प्रदान, समष्टि भाव, चेतन की एकसूत्रता नष्ट हो गये और—

"बुद्धि तर्क के छिद्र हुए थे हृदय हमारा भर न सका।[4]

किन्तु इड़ा फिर भी नारी ही है और उसमें नारी-हृदय भी है जिसमें हिंसा है तो स्नेह भी है, प्रतिशोध है तो क्षमा भी है।[5] प्रथम अभिनय है, द्वितीय वास्तविकता है। प्रथम विकृति है, द्वितीय स्वभाव। अनुकूल सम्पर्क पाकर प्रथम का आवरण टूट जाता है। श्रद्धा की मंगलमयी मूर्ति के सम्मुख आने पर इड़ा को अपने दोषों का ज्ञान होता है।[6] श्रद्धा की महानता के सम्मुख आज वह अपने को दीन-हीन पाती है, और श्रद्धा से क्षमा याचना करती हुई उसके वरदान की आकांक्षा करती है जिससे उसका सुप्त नारीत्व जागे।[7] इड़ा के

---

[1] कामायनी : दर्शन, पृ० १७९.

[2] वही, पृ० १८२.

[3] वही, पृ० १८१.

[4] वही : निर्वेद, पृ० १७३.

[5] नारी का हृदय! हृदय में सुधा सिंधु लहरें लेता,
बाड़व ज्वलन उसी में जल कर कंचन सा जल रंग देता।
मधु पिंगल उस तरल अग्नि में शीतलता संसृति रचती,
क्षमा और प्रतिशोध! आह रे दोनों की माया बचती।
(वही, पृ० १५९—१६०)

[6] तो क्या मैं भ्रम में थी नितांत संहार बध्य असहाय दांत।
प्राणी विनाश मुख में अविरल चुपचाप चलें होकर निर्बल!
संघर्ष कर्म का मिथ्या बल, ये शक्ति चिन्ह, ये यज्ञ विफल;
भय की उपासना! प्रणति भ्रान्त!
अनुशासन की छाया अशान्त! (वही : दर्शन, पृ० १८२)

[7] मैं आज अकिंचन पाती हूँ अपने को नहीं सुहाती हूँ;
मैं जो कुछ भी स्वर गाती हूँ, वह स्वयं नहीं सुन पाती हूँ;
दो क्षमा, न दो अपना विराग सोई चेतनता उठे जाग।" (वही)

पश्चात्ताप में नारी हृदय की जागृति, उसके स्वभाव के अनावृत होने की सूचना है। श्रद्धा का उपदेश उसमें सहायक होता है। साथ ही, हृदय में नारी सुलभ मातृ-भाव की जागृति भी इड़ा के सुधार में सहायक होती है। जैसा हम पीछे[1] देख चुके हैं आधुनिक कवि ने नारी में एक जन्मजात मातृत्व देखा है जिसको लेकर वह जड़ जीवों तक अपनी ममता का प्रसार करती है। श्रद्धा के पशुप्रेम के नीचे यही वस्तु थी। किन्तु इड़ा का मातृत्व (जो ध्वंस नहीं निर्माण का द्योतक होता है) कुमार को देखकर जागृत होता है।[2] उसकी "जलती छाती की दाह" का प्रशमन इस निधि में निहित है, यह जानकर ही श्रद्धा कुमार को इड़ा के समीप छोड़ देती है, और इड़ा कृतज्ञता से नत हो जाती है। इसके बाद इड़ा भी श्रद्धा के चिरंतन आनन्द की ओर जाने वाले विश्वप्रेम और सेवा के मार्ग का अनुसरण कर वहाँ पहुँच जाती है जहाँ अखंड शांति और आनन्द का राज्य है।

इड़ा के समान ही कैकेयी है जो कुसंगति वश अपने मातृभाव को खोकर अशिव मार्ग को अपना लेती है। अपने पुत्र के लिए राज्य चाहती हुई राम आदि को वन भेज देती है। उस समय वह प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति के रूप में, ध्वंसकारिणी शक्ति के रूप में सामने आती है।[3] कैकेयी के इस रूप को देखकर मध्ययुगीय कवि ने नारी के संबंध में यह निष्कर्ष निकाला था :—

"सत्य कहहि कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगहु अगाध दुराऊ।
निज प्रतिबिंब बरुक गहि जाई। जानि न जाइ नारिगति भाई।
काह न पावक जारि सक, का न समुद्र समाइ।
का न करै अबला प्रबल, केहि जग कालु न खाइ।"[4]

किन्तु आधुनिक कवि इस रूप को नारी स्वभाव नहीं वरन् क्षणिक विकृति मात्र के रूप में ग्रहण करता है। कौशल्या की दया और क्षमाशीलता से प्रभावित होकर कैकेयी पुनः अपने मूल नारीत्व को प्राप्त कर लेती है।[5] पश्चात्ताप की अग्नि में उसका समस्त विकार धुल जाता है और राम को पुनः निज सुत रूप में देखती हुई उन्हें वापस लेने चित्रकूट जाती है। उसकी स्वीकारोक्ति उसकी निर्दोषता की द्योतक है, और उसका प्रबुद्ध वात्सल्य उसके संचित नारीत्व का साक्षी है।[6]

---

[1] देखिए, 'मातृ-रूप', पृ० १२१.

[2] इड़ा कुमार समीप पड़ी थी मन की दबी उमंग लिए
(कामायनी : निर्वेद, पृ० १७४)

[3] "हुआ देवी का दुर्गा वेश"—(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, २ सर्ग, पृ० ३६)

[4] तुलसी—रामचरित मानस : अयोध्याकांड, दोहा ४८.

[5] सियारामशरण गुप्त—"भरत-भक्ति", ४ सर्ग, पृ० ५५—५६.

[6] फिरहु तोष मम हृदय, भयो तू मेरो ही सुत।
पुष्प गुलाब प्रभाव, न कोई कंटक कन रत॥
अगिनि हेम संयोग, जात जरि कंचन मल है।
दोष मोर जो रह्यो, नस्यो सब तुम निरमल है॥
(वही, १२ सर्ग, पृ० २०७)

और—
सब अभिमान लाल यह मोरे, तू सुत हौं मैं माता।
यदपि दोष भयो मम सिर पाव, टूटहिं न नयहूँ नाता। (वही, पृ० २११)

नारी के विकृत रूप के उदाहरण स्वरूप ही आधुनिक कवि ने शूर्पनखा,[१] जमीला[२] और गुजरात की रानी कमला देवी[३] को उपस्थित किया है। इसमें हम रूप-गर्व, ईर्ष्या, भोग-लालसा, उच्छृंखलता, और हिंसा का प्राधान्य पाते हैं। दशमुख की शूर्पनखा वन में सुन्दर कुमारों (राम, लक्ष्मण) को देखकर एक अनिंद्य सुन्दरी बनकर विवाह का लज्जाहीन प्रस्ताव लिए उपस्थित होती है। उसके रूप में कवि ने शीतल स्निग्ध आकर्षण नहीं वरन् दाहक ज्वाला देखी है। उसमें मनोज्ञता है किन्तु सरलता का अभाव है, मुस्कान है किन्तु लज्जाहीन, उसके नेत्र दीर्घ हैं किन्तु अतृप्त वासना से पूर्ण है।[४] वह जिसे प्रेम कहती है वह कामुकता मात्र है।[५] वह भोग-लालसा के उद्देश्य से लक्ष्मण के ही समान यती बनने को भी प्रस्तुत है।[६] शूर्पनखा में स्त्री-स्वातंत्र्य का स्वर ध्वनित हुआ है।[७] किन्तु इस स्वर में अर्धांगिनी या गृह-देवी के अधिकारों की माँग नहीं है वरन् उच्छृंखलता पूर्ण व्यवहार को भी सिद्ध करने का ईर्ष्या और क्रोधजनित प्रयास है। इसीलिए कवि स्वतंत्र नारी की तुलना "विषमतारां की तंत्री" से करता हुआ इसका विरोध करता है।[८] शूर्पनखा की विषम शक्ति कुमार्गगामी है। वह सुख शांति नहीं, धन वैभव को प्राप्त करने में तत्पर है मानवता का त्राण नहीं विध्वंस करने को उत्सुक है।[९] नारी के इस रूप को शूर्पनखा स्वयं ही स्पष्ट कर देती है :—

पक्षपातमय सानुबंध है जितना अटल प्रेम का बोध,
उतना ही बलवत्तर समझो कामिनियों का वैर विरोध।
होता है विरोध से भी कुछ अधिक कराल हमारा क्रोध,
और क्रोध से भी अशेष है द्वेषपूर्ण अपना प्रतिशोध।"[१०]

---

[१] मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी.
[२] गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ.
[३] जयशंकरप्रसाद—लहर : प्रलय की छाया.
[४] चकाचौंध सी लगी देखकर प्रखर ज्योति की वह ज्वाला,
निस्संकोच खड़ी थी सम्मुख एक हास्य-वदनी बाला।
और— (मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी, पृ० २२, ३०)
रमणी की मूरत मनोज्ञ थी किन्तु न थी सूरत भोली।
और— (वही, पृ० २१, ३४)
थी अत्यंत अतृप्त वासना दीर्घ दृगों में झलक रही। (वही, पृ० २२, ३१)
[५] विष से भरी वासना है यह सुधा पूर्ण वह प्रीति नहीं। (वही, पृ० २६, ६१)
[६] धारण करूँ योग तुमसा ही भोग लालसा के कारण (वही, पृ० २९, ४४)
[७] नर कृत शास्त्रों के सब बंधन हैं नारी को ही लेकर,
अपने लिए सभी सुविधायें पहले ही कर बैठे नर। (वही, पृ० ३३, ५३)
[८] तो नारी शास्त्र रचना कर क्या बहु पति का करे विधान
पर उनके सतीत्व गौरव का करते हैं नर ही गुणगान। (वही, पृ० ३४, ५४)
[९] वही, पृ० २९, ४५, तथा पृ० ३०, ४६.
[१०] वही, पृ० ६०, १०.

यही रूप शुद्ध प्रणय को ऐश्वर्य, लालसा और इंद्रिय-तृप्ति में डुबाकर देखने वाली ईर्ष्या, क्रोध और प्रतिहिंसा की प्रतिमूर्ति जमीला का है। वजीर की बेटी जमीला के लिए सौदागर की पुत्री मेहर और सलीम का सहज स्नेह-दाहक हो जाता है। उसका रूप-गर्व ईर्ष्या को जन्म देता है, ईर्ष्या हिंसा में परिवर्तित हो जाती है और हिंसा षड्यंत्र में विकसित होती है।[1] षड्यंत्र रचने के लिए यह उसका परम अवसर नहीं है, वरन्—

कितनी बरसातें देखी हैं, हूँ हीर नहीं कच्ची लकड़ी।
मैं गाकर सेंध लगाती हूँ फिर भी न गई अब तक पकड़ी।"[2]

प्रेम उसके लिए खिलवाड़ मात्र है, सात्विक साधना नहीं और प्रेम के नाम पर मरना जुबानी चोज भर है, दृढ़ निश्चय नहीं। सतीत्व भाव का उसमें सर्वथा अभाव है। बूढ़े कुतुबुद्दीन को पति रूप में पाकर वह प्रसन्न होती है, इसलिए कि युवती पत्नी की लातें खाकर भी चुप रह जाने वाले बुड्ढे की आँखों में आसानी से धूल झोंकी जा सकती है, और समस्त दुर्वासनायें अपनी तृप्ति पा सकती हैं।[3]

प्रसाद ने "प्रलय की छाया" में नारी के असत् रूप का अत्यन्त सजीव चित्र खींचा है। रूपराशि-स्वरूपा किन्तु रूपगर्विता कमला अपनी ही "मृदुगंध से कस्तूरी मृग जैसी" पागल हो जाती है प्रणत प्रेमी गुर्जरेश को पाकर उसकी "विकलविलासमयी" लालसाओं की पूर्ति हुई। तभी सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के आक्रमणों, सती पद्मिनी के साहस और बलिदान की कथा समस्त भारत में गूंज उठी। उससे "उन्नत हुआ था भाल महिला महत्व का"; किन्तु आत्म दंभमयी, रूप को दाहक ज्वाला बनाने वाली, कमला ने सोचा :—

"पद्मिनी जली थी स्वयं किन्तु मैं जलाऊँगी
वह दावानल ज्वाला जिसमें सुलतान जले।
देखे तो प्रचंड रूप ज्वाला सी धधकती
मुझको सजीव वह अपने विरुद्ध।"[4]

और मुकुर उठाकर अपने रूप की तुलना पद्मिनी के चित्र से करके उस पवित्रात्मा को अपने सम्मुख नगण्य समझा था। बादशाह की बंदी होने पर भी "उस आपदा में आया ध्यान निज रूप का" तत्पश्चात् :—

"कभी सोचती थी प्रतिशोध सेनापति का
कभी निज रूप सुन्दरता की अनुभूति
क्षण भर चाहती जगाना मैं

---

[1] गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ : सर्ग ७, पृ० ५२-५५.

[2] वही, पृ० ५३.

[3] उनकी आँखों में वश करके गुलछर्रे खूब उड़ाऊँगी।
अपना उल्लू सीधा करने को बुलबुल उन्हें बनाऊँगी। (वही, १४ सर्ग, पृ० १०७)

[4] जयशंकर प्रसाद—लहर : 'प्रलय की छाया' पृ० ७०.

सुलतान ही के उस निर्मम हृदय में, नारी मैं।
कितनी अबला थी और प्रमदा थी रूप की।''[1]

उसमें साहस दिखाने का लोभ है, किन्तु वास्तविक दृढ़ता नहीं,[2] आत्महत्या की तैयारी है किन्तु बचने पर क्षोभ नहीं,[3] उसमें गर्व है किन्तु क्षत्रियत्व का अभाव है,[4] प्रतिशोध की आकांक्षा है किन्तु वासनाओं में डूबी हुई।[5] फलत: निज रूप की भावना तथा शासन की महत्वाकांक्षा ने उसके हृदय में भारतेश्वरी बनने की कामना को मूर्त्त कर ही दिया। रूप की विजय में उसने निज विजय समझी। यद्यपि यह नारी की सबसे बड़ी हार थी, आत्मसम्मान का हनन था, सतीत्व का पतन था।

इस प्रकार की नारी का रूप उसकी सबसे बड़ी शक्ति होने के स्थान पर सबसे बड़ी दुर्बलता है, मंगल का केन्द्र होने के स्थान पर, "पुण्य ज्योतिहीन कलुषित सौंदर्य" है, "जीवित अभिशाप है जिसमें पवित्रता की छाया भी पड़ी नहीं"। इसीलिए इसकी परिणति कवि ने प्रलय की छाया में असफल पतन दिखाया है। साथ ही कवि ने पद्मिनी के सम्मुख कमला की हीनता को भी दिखा ही दिया है। जिस प्रकार प्रमदा शूर्पनखा एक बारगी सीता की शक्तिमूर्ति को देख कर संकुचित हो गई थी,[6] उसी प्रकार प्रमत्ता कमला को भी यह ज्ञान हो ही जाता है कि पद्मिनी से अधिक रूपवती होने पर भी उस दिव्य भावना से रहित है—

"किन्तु था हृदय कहाँ ?
वैसा दिव्य
अपनी कमी थी इतरा चली हृदय की
लघुता थी माप करने महत्व की।''[7]

और निज पूर्ण पतन पर ही उसने पद्मिनी के चारित्रिक महत्व को जाना तथा अपनी हीनता का अनुभव किया—

"उस उज्ज्वल आकाश में
पद्मिनी की प्रतिकृति सी किरणों में बन कर व्यंग हास करती थी।
× × ×
आज सोचती हूँ जैसे पद्मिनी थी कहती
'अनुकरण कर मेरा' समझ सकी न मैं।''[8]

---

[1] वही, पृ० ७५.
[2] वही, पृ० ७५.
[3] वही, पृ० ७६.
[4] वही, पृ० ८०.
[5] वही, पृ० ८०.
[6] चौंक पड़ी प्रमदा भी सहसा देख सामने सीता को,
कुमुद्वनी सी दबी देखकर उस पद्मिनी पुनीता को।
मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी, पृ० ३९, ३५.
[7] लहर : प्रलय की छाया, पृ० ७१.
[8] वही, पृ० ७२.

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि की सत् स्वरूपा नारी यदि मानवता के लिए एक आदर्श लेकर उपस्थित होती है, क्षमा, न्याय और सहनशीलता की सजीव प्रतिमा है, कर्तव्यानुगामिनी है, पतिपरायणा है अलौकिक है, तो असत् नारी घोर लौकिक है, निरंतर द्वंद्वमयी है, विध्वंसमयी महत्वाकांक्षा और अधिकारवासना से पूर्ण है, निज रूप के कारण दंभभरी है, प्रेम की असफलता में प्रतिहिंसामयी है, और नारी की स्वभावज कोमलता से रहित होकर पौरुषी है। मूलतः नारी की कोमल शक्ति के उपासक के लिए नारी का पौरुषी वृत्ति को अपना लेना ही अप्रिय है। आधुनिक कवि ने तो नारीत्व—नारी का यथार्थ रूप उसके अवयव के सौंदर्य के साथ हृदय के सौंदर्य, प्रेम, त्याग और सेवा, उदारता, विश्वास और करुणा के अखंड योग में देखा है। इससे अन्यथा रूप कवि की दृष्टि में विकृति है, जो पतन और असफलता की सूचना है। जब स्त्री अपनी यथार्थ प्रकृति को त्याग कर पुरुष की क्रूरता अपनाने का प्रयत्न करती है और उच्छृंखलता के कारण नाना प्रकार की दुरभिसंधियों में पड़ती है तभी अंत में असफल होकर गिरती है। तब उसे नतमस्तक होना पड़ता है, और जग जीवन की पथ प्रदर्शिका "सत् नारी" उसमें सुधार करती है। उस महत् कल्याणी मूर्ति के सम्मुख इसे (असत्-स्वरूपा) निज लघुता का ज्ञान होता है! तभी उसका सुप्त नारीत्व जाग्रत होता है। तब वह पुनः अपने खोये रूप को प्राप्त करती है।

इन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए कवि ने अपनी आदर्शवादी भावना को पुष्ट कर दिया है। इस युग के कवि ने नारी में सत्-रूप की ही प्रतिष्ठा मानी है। असत् रूप तो एक मिथ्या आवरण की भाँति है तथा एक भ्रांति है। ठीक अवसर और आवश्यक संसर्ग पाकर असत् का भी सुप्त सत् जाग्रत हो जाता है। इस प्रकार कवि नारी को दुर्गुणों से युक्त नहीं मानता, दुर्बलताओं को उसका स्वभाव नहीं मानता।

अध्याय ७

परिवर्तन युग में राष्ट्रीयता तथा समाज सुधार से प्रेरित नारी-भावना

१. राष्ट्रीय-भावना [नारी का वीर रूप]

द्वितीय अध्याय में हम देख चुके हैं कि संक्रान्ति युग के कवियों ने राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर नारी को वीर रूप में देखना आरंभ कर दिया था। परिवर्तन-युग में तथा उसके बाद राष्ट्रीय-स्वतंत्रता-आंदोलन अत्यधिक व्यापक तथा प्रबल हो गया तथा गांधी के असहयोग आंदोलन में उसने एक नया रूप धारण किया। फलतः राष्ट्रीयता की भूमि पर निर्मित नारी भावना का विकास इस युग में विशेषरूप से तथा नवीनताओं के साथ हुआ है। यों तो राष्ट्रीय काव्य की रचना परिवर्तन युग के बाद (१९३७ के बाद) भी हुई है, किन्तु राष्ट्रीयता, समाजवाद फलतः समाजवादी, यानी प्रगतिवादी काव्य की विशेषता नहीं है। राष्ट्रीयता छायावादी युग की ही विशेषता है, इसलिए इस युग के बाद के कवियों को भी, भावना की एकता के कारण, इसी युग में ले लिया गया है।

परिवर्तन युग का कवि, हम देख चुके हैं, नारी को शक्ति मानता है, जो समय समय पर जगमंगल या सतीत्व रक्षा के लिए कठिन रूप धारण कर सकती है। राष्ट्रीयता के विचार से प्रेरित होकर वह नारी को विद्रोही जीवन की महाशक्ति के रूप में, तथा सुप्त मानव की जागृति के रूप में पुकारता है।[1] जब भारत की स्वतंत्रता का प्रश्न जनता का प्रथम प्रश्न था, जब सत्याग्रह आंदोलन के रूप में भारत विदेशी शासकों के प्रति अपना रोष प्रकट कर रहा था, जब घर घर से स्त्रियाँ और पुरुष निकल कर देश के चरणों में अपने जीवन की बलि कर रहे थे तब कवि ने भी देखा कि नारी अबला नहीं है, नारी नवयुग का संदेश लाई है, वह भारत की मृत वीरता में नवजीवन डालने वाली वीर बाला है।[2] कवि ने तर्क द्वारा सिद्ध किया है कि "विजय" और "शक्ति" में

---

[1]विद्रोह भरे जीवन की तुम महाशक्ति बन जाओ।

× × ×

मेरे सोये उर में कुछ जागृति की कंपन सी।

आओ जीवन निधि आओ जीवन में तुम जीवन सी।

(भगवतीचरण वर्मा—मधुकण : स्वागत, पृ० २८—२९)

[2]तममयी रात के प्रगाढ़ परदे को फाड़, नवयुग लाली का उजाला बन निकलीं।

रसिकेन्द्र साहस सुमेरु से सुसज्जित हो, शानदार सुमनों की माला बन निकलीं।

भारत की मृत वीरता में जान डालने को आज, अबलायें वीर बाला बन निकलीं।

(द्वारकाप्रसाद 'रसिकेन्द्र'—अबलायें, चांद, नवंबर, १९३४)

नारीत्व रहते हुए नारी अबला नहीं हो सकती।[१] फलतः कवि को कामिनी की परिभाषा भी बदलनी पड़ी है[२], और उसने अब नारी का कार्यक्षेत्र केवल गृह नहीं माना है, वरन् उसका विश्वास है, कि नारी-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलतापूर्वक कार्य कर सकती है और पुरुषोचित वीरता दिखाने में भी समर्थ है।[३]

सत्याग्रह काल की उथल पुथल ने देश की स्त्रियों को भी निज कर्तव्य के संबंध में चिंतित कर दिया है[४] और पुरुषों की कमी पूरी करने वाली पंद्रह करोड़ असहयोगिनियों की कल्पना कवि के लिए आकर्षण का विषय हो गई है।[५] स्वतंत्रता के युद्ध में नारी के पूर्ण सहयोग की आकांक्षा रखने वाले कवि का विश्वास है :—

"समर भूमि में देवियों! तुम्हें संग जब पायेंगे,
निश्चय रण में हम तभी शीघ्र सफल हो जायेंगे।"[६]

इसलिए वह आकांक्षापूर्ण स्वर में कहता है:—

"नित प्रति बहनों! करो वही उद्यम तुम जिससे
संतानों में कर्म वीरता आवे जिससे।
करें देश का त्राण और दासत्व मिटा दें,
भारत को स्वातंत्र्य सुधा का पान करा दें।"[७]

वह आशा करता है कि भारतमाता की रक्षा के लिए कोमल बालायें भी दुर्गा बनेंगी:—

"देखि कालिका के सरिस बालिका के शरतीर वे,
वार करेंगे, वैरी के उर पार करेंगे,
दुर्गा कर सम नारि कर तलवार गहेंगे।"[८]

---

[१]तोरन देवी लली—जागृति : नारी, पृ० ११९-१२०.

देखिए— सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा, कथामुख, पृ० १.

[२]सार्थक किया है निज मंजु नाम कामिनी ने,
बनकर प्रेममयी देश हित कामिनी,
देखकर कर उसका विकास दिव्य उषा तुल्य,
छिप गई मोह अंधकारमयी यामिनी।
(गोपालशरण सिंह - संचिता : गजगामिनी, पृ० १७३)

[३]वीरांगना तारा, पृ० ६, १९.

[४]जागृति : माता का प्यार, पृ० १४.

[५]सबल पुरुष यदि भीरु बनें, तो हमको दे वरदान सखी।
अबलायें उठ पड़ें देश में, करें युद्ध घमसान सखी॥
पंद्रह कोटि असहयोगिनियाँ दहला दें ब्रह्मांड सखी।
भारत लक्ष्मी लौटाने को रचदें लंका कांड सखी॥
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : विजयादशमी, पृ० ७७)

[६]रामचन्द्र शर्मा राष्ट्रीय संदेश : माताओं से, पृ० ४०, २.

[७]रामचन्द्र शर्मा राष्ट्रीय सन्देश : बहिनों से.

[८]राष्ट्रीय वीणा, भाग २ : 'राम' स्वातंत्र्य युद्धगान, पृ०, ४३.

स्वदेशी आंदोलन के समय वह नारी को देश की स्वतंत्रता के लिए स्वदेशी ही धारण करने की प्रतीक्षा करते हुए देखता है;[1] स्वातंत्र्य-संग्राम से प्रेरित हो वह नारी को सैनिका के रूप में देखता है। नारी के दो रूप हैं: एक समय वह प्रेयसी है, सुन्दरी है, मृदु-भाषिणी है, और आनन्द विलास की वस्तु है; किन्तु दूसरे समय वह सबला है महिषमर्दिनी दुर्गा स्वरूपा है और सैनिक की सच्ची सहयोगिनी है। देश पर संकट आने पर युद्ध-काल में नारी यह रूप धारण करती है। तब वह वीर वेष धारण कर लज्जा और चंचलता का त्याग कर देती है। यौवन और काम वीरता के तट पर नष्ट हो जाते हैं। किंकिणी का स्थान असि, और मृदुमद का स्थान रणोन्माद ले लेते हैं। मधुर वाणी का स्थान रण नाद ले लेता है। इस प्रकार वह कोमल नारीत्व को त्याग कठोर पुरुषत्व धारण करती है।[2] कवि ने यदि एक सिपाही के उत्साहपूर्ण और निर्भय शब्दों को सुना है[3] तो सिपा-हिनी, उसकी सहधर्मिणी, को वह भूला नहीं है। घोर संघर्ष काल में जब सैनिक युद्धार्थ प्रस्तुत है तो उसकी पत्नी कैसे चूड़ियां पहने बैठी रह सकती है? उसके पति का सेनानी होना ही इस बात का प्रचुर प्रमाण है कि वह सैनिका है, पति का बल उसके अबलात्व को डुबाने के लिए पर्याप्त है। पुरुष शंकर है तो नारी निश्चय रूप से दुर्गा है; सूर्योदय से

---

[1]स्वतंत्रता की झंकार: "एक अबला की पावन प्रतिज्ञा" पृ० ८७.

[2]नारियों ने भी ली असि तान चढ़ाए रण में आत्म प्रसून
छोड़ दी गुरुजा की सब लाज
सुलभ चंचलता की सब बात सजाए वीर वेष से गात
चल पड़ा गढ़ से नारि समाज बना लज्जा का लोहित रंग
तन गया रौद्र रूप अति लाल यही था परिवर्तन का काल
गया अंगों से अजित अनंग
तरल गति यौवन की मृदु लहर वीरता के तट पर थी नष्ट

× × ×

शीघ्र ही दी किंकिणी उतार
बांध भी ली कटि में तलवार छोड़कर चुंबन का उपहार
दृगों का त्यागा चंचल वार दृगों में यौवन का मृदुमद
हटाकर रखा रण उन्माद भुला मृदुवाणी सीखा नाद,
नारि पद तज पाया नर पद

(रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, पृ० ८—१०, ८५—१२०)

देखिए—डा० भगवंत सिंह—वीरांगना वीरा, पृ० ४९, १९१, तथा पृ० ५?, २०१
तथा श्यामनारायण पांडेय—जौहर, ७, पृ० ३७—३९.

[3]माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी: सिपाही, पृ० ४९—५२, विशेष रूप से देखिए २ पद, पृ० ५० "क्या……सिपाही"

पूर्व वह प्रणय क्रीड़ा की संगिनी रह सकती थी, किन्तु जागृति की उषा के आते ही उसका भी उथल-पुथल कर देने वाला तेज जाग्रत हो जाता है। उसके लिए भी चूड़ियाँ त्यागकर जिरह बख्तर से सजना अनिवार्य हो जाता है। उसका सुहाग ही हर के तृतीय नेत्र के समान प्रलय की ज्वाला बरसाने वाला बन जायगा। देश के हित वीरव्रत धारण करने वाली सिपाहिनी का यह चित्र माखनलाल चतुर्वेदी का है।[1] सोहनलाल द्विवेदी ऐतिहासिक दाँडी-यात्रा की स्मृति के मध्य पत्नी के उत्साह पूर्ण शब्दों को सुनते हैं, जो पति को देश में बाधक नहीं बनती और वियोग व्रत के स्थान पर स्वयं भी देश व्रत लेकर सच्ची सहधर्मिणी बनती है—

"पति चल, पत्नी पुलकित मन से उत्साह अतुल उमंग
स्वाहा कर सुख वैभव विलास ले ब्रह्मचर्य का व्रत अभंग"[2]

युद्ध का यात्री पत्नी से शक्ति की याचना करता है :—

"प्राण दो तुम भाल चन्दन
विदा दो हो मातृ वंदन, शक्ति दो तुम भक्ति जागे
मुक्ति पथ पर शिर चढ़ाऊँ आज रण की ओर जाऊँ।"[3]

---

[1]चूड़ियाँ बहुत हुईं कलाइयों पर प्यारे भुज दंड सजा दो

तीर कमानों से सिंगार दो जरा जिरह बख्तर पहनादो !
जी में सोये से सुहाग जग उठो पुतलियों पर आजाओ
बिना तीसरे नेत्र, दृष्टि में अजी प्रलय ज्वाला सुलगा दो।

कैसे सेनानी हो, जो मैं नहीं सैनिका होने पाती ?
कैसे बल हो अबलापन को जो मैं नहीं डुबोने पाती ?

आदि पुरुष ने अपनी माया के हाथों में कौशल सौंपा,
जग के उथल-पुथल कर देने के मस्ताने बल को सौंपा।

मेरे प्रणय और प्राणों के ओ सिंदूरमय रक्तिम लाली।
तुम कैसे प्रलयंकर शंकर ! जो मैं रहूँ न दुर्गा, काली ?

अर्ध रात्रि के सूनेपन में, प्यारे बंसी बजा बजा,
मेरी धुन पर अपनी सांसें गूंथ-गूंथ स्वर हार बना लो

अंगुलियों से गिन-गिन मोहन, मेरे दोषों को दुहरा लो,
ओठों से ओठों पर अपना प्रणय मंत्र लिख स्वर गहरा लो

किन्तु सुनहली सूरज की किरणों पर क्या यह स्वाद लिखोगे ?
सजे सनकती करवालों पर चुड़ियों के संवाद लिखोगे ?

(हिमकिरीटिनी—सिपाहिनी, पृ० १३९—१४०)

[2]सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : दाँडी-यात्रा, पृ० ७२.

[3]सोहनलाल द्विवेदी—पूजा-गीत, पृ० २७, २५.

बंदीगृह से पत्र भेजने वाले पति के मस्तिष्क में विरह विह्वला, मुक्त कुन्तला, परिधूसरित वस्त्रावेष्ठिता, क्षीणकाया, कोमलांगी का चित्र नहीं आता। उसे मालूम है कि उसका पत्र देशव्रत धारिणी वीरांगनाओं की अग्र पंक्ति में चलने वाली, सत्याग्रह में दृढ़ ललना के समीप जा रहा है:—

"अग्रपंक्ति में चलते उन्मत्ता नारी दल आयेगा।

× × ×

रण गायन गाते तब वे उन्मत्त टोलियाँ आयेंगी।
नारीगण तब वीर वेश में अद्भुत छटा दिखायेंगी॥
जिनको पतित बताकर मिस मेओ ने था बदनाम किया,
देखेगा तू उन्हीं देश ललनाओं ने क्या काम किया॥
देखेगा उनको रण सज्जित केसर वस्त्र सजे प्याला।
कैसी दैवी शांति शक्ति से पिटने को उसने धारा॥

× × ×

चंद्रमुखी उन ललनाओं को विद्युत सा तू पायेगा।
सत्याग्रह उनके स्वरूप की निर्मल कांति बढ़ायेगा॥

× × ×

कैसे दृढ़ संकल्पित होकर आगे बढ़ती जाती है।
घायल होती कुचल-कुचल नहीं पीछे कदम हटाती है।"[1]

युद्धकाल में भगिनी और उसकी राखी का भी कुछ विशेष महत्व हो जाता है। एक वार चित्तौड़ की रानी ने "राखी" भेजकर विजातीय हुमायूं को भाई बनाया और कहा था —

करो तुम रिपु सेना का नाश, गूँजा जयध्वनि से सब आकाश,
हटा दो रिपु का उन्माद"[2]

उस राखी की स्मृति आज पुनः कवि-हृदय में जाग्रत हो गई है।[3] आज के कवि के लिए राखी का मूल्य असाधारण है। जब सिर पर शासकों की तलवार तनी हो, जलियांवाला के से हत्याकांड हो रहे हों, मार्शल ला के नीचे देश कराह रहा हो और अनेक बहनें अपार वेदना से सिसक रहीं हों, तब बहन की राखी निस्तेज कलाई पर बँधकर न रह जाय, यह सबसे बड़ा भय है।[4] आज की बहन की राखी शुभ कामना मात्र नहीं है, निज रक्षा का

---

[1]अमरनाथ कपूर—पत्रदूत, पृ० ४, ५.

[2]रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता, पृ० ८६, १७७.

[3]वीर चरित्र राजपूतों का पढ़ती हूँ मैं राजस्थान
पढ़ते-पढ़ते आँखों में छा जाता राखी का आख्यान।
(सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : राखी, पृ० ७०)
देखिए—रामेश्वर लाल खंडेश—तरुण-रक्षा बंधन, वीणा, अगस्त, १९४४.

[4]मुकुल : राखी, पृ० ७१, ७३.

प्रसाधन मात्र नहीं है, वरन् भारत माता के बंधनों को काटने की चुनौती है,[१] देश के हित शीश कटाने का आमंत्रण है।[२] फिर वह राखी भी तो "रेशम सी कोमल" नहीं है। वह तो है लोहे की हथकड़ी।[३] भादों की पूर्णिमा है, किन्तु बहन का प्यारा भाई 'माँ की पुकारों को सुनकर तैयार हो जेलखाने गया है।'' बहन के हृदय में खुशी नहीं है, पर दुख भी नहीं है, क्योंकि "छीनी हुई माँ की स्वाधीनता को वह जालिम के घर से लाने गया है।" फलतः भगिनी को गर्व है। भाई की हथकड़ी में ही वह राखी की सार्थकता और निज प्रण की पूर्ति पाती है।[४] आज संग्राम तत्पर बंधु को विदा देती हुई भगिनी कहती है—

"तुम्हारी दृढ़ता से जग पड़े देश का सोया हुआ समाज।
तुम्हारी भव्य मूर्ति से मिले शक्ति वह विकट त्याग की आज॥
तुम्हारे दुख की घड़ियां बनें दिलाने वाली हमें स्वराज्य
हमारे हृदय बनें बलवान तुम्हारी त्याग मूर्ति से आज।"[५]

देश की स्वतंत्रता के लिए प्रयत्नशील भाई के गिरफ्तार होने पर "आँसू छलके याद आ गई राजपूत की वह बाला, जिसने विदा किया भाई को देकर तिलक और माला।"[६] और तब बहन को भी वीरता जाग्रत हो जाती है। गम्भीर होकर वह केवल विदा ही नहीं देती[७] वरन् स्वयं भी अनुगामिनी होती है।[८]

पुरुष में वीरत्व और शौर्य संचार करने के क्षेत्र में पत्नी और भगिनी के अतिरिक्त

---

[१] आते हो भाई पुनः पूछती हूं कि माता से बंधन की है लाज तुमको,
तो बंदी बनो, देखो बंधन है कैसा चुनौती यह राखी की है आज तुमको।
(मुकुल : राखी की चुनौती, पृ० ६०)

[२] कांटों पर चलने वाले का साथ निभाने आई है वह।
भैया के बुझते प्राणों की राख हटाने आई है वह।
तो ला, हृदय रक्त से टीका लगा, बांध राखी बहना।
शीश कटाने का आमंत्रण है बहना यह तेरा गहना।
(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्नि गान : राखी के दिन राख, पृ० ६)

[३] रेशम सी कोमल नहीं वह कड़ी है।
अजी देखो लोहे की यह हथकड़ी है।
इसी प्रण को लेकर बहिन यह खड़ी है। (मुकुल : राखी की चुनौती, पृ० ६०)

[४] सुभद्राकुमारी चौहान—मुकुल : राखी की चुनौती, पृ० ५९—६०.

[५] वही—विदा, पृ० ९२.

[६] वही—विदा, पृ० ९६.

[७] सदियों सोई हुई वीरता जागी, मैं भी वीर बनी
जाओ भैया विदा तुम्हें मैं करती हूँ गम्भीर बनी। (विदा, पृ० ९६)

[८] 'बहने' बोली, भैया न बनेगा यह एकाकी मौन गमन
हम भी पीछे-पीछे पद पर अनुगमन करेंगी मंद चरण।
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : दांडी-यात्रा, पृ० ७२)

माता भी अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। वास्तव में उसका पद तो इस क्षेत्र में सबसे ही अधिक महत्वपूर्ण हो गया है, जब आधुनिक कवि ने भारत-जन्मभूमि को माता के रूप में देखकर उसकी उपासना प्रारम्भ की है और उससे शक्ति दान मांगा है।[१] (किन्तु इस संबंध में विस्तृत विवेचन प्रतीकात्मक भावना के अंतर्गत किया जायगा।) प्रतीकात्मक भावना के अतिरिक्त भी वीर पुत्र की वीर-माता आधुनिक कवि की भावना का केन्द्र हो जाती है। "जग की आदि शक्ति" मानकर कवि ने माता को "वीरों की ख्याति" और "देश-दुख हरने वाली" के रूप में देखा है।[२] सुप्त और विलासिता में पड़े हुए पुत्रों के लिए माता के ही उत्साहपूर्ण उपदेश की आवश्यकता है।[३] अस्तु, आज के कवि की माता "सिर चढ़े" पुत्र से कहती है :—

"क्यों न चढ़ावत सिर चढ्यौ ललन ! बान धनु तानि।
किन खेलत खिन खड्ग सों, जासु खिलौंही बानि॥"[४]

और युयुत्सु पुत्र को विदा देते हुए उसके हृदय का अभिमान जाग्रत होता है,[५] वह पद्मावत की बादल की माता के समान[६] बाधक नहीं होती, वरन् कहती है :—

'चूर चूर है अंत लौं राखियौं कुल की लाज।
जननि-दूध पितु-खंग की अहै परिच्छा आज।"[७]

पुत्र का देश-हित संग्राम में वीर-गति को प्राप्त हो जाना जननी के गर्व का विषय होता है।[८] वास्तव में इस युग के कवि की भावना तो उन माताओं में अटकी है जो दृढ़ स्वर से कहें—

"जाओ बेटा, राम काज क्षण भंग शरीरा"[९]

---

[१] जननि ! जन-जन के हृदय की आज तुम वीणा बजाओ
जो युगों से आज सोए हैं सकल अपनत्व खो,
आज मन में विजय की कामना मधुमय जगाओ।
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी, पृ० ३९, २१)

[२] राष्ट्रीय-संदेश—रामचंद्र शर्मा 'विद्यार्थी' : माताओं से.

[३] उठो उठो देवियों ! पुत्र पड़े खलता में,
उत्साहपूर्ण उपदेश दो, महाशक्ति है आपमें।" (वही)

[४] वियोगी हरि—वीर सतसई : मातृ-शिक्षा, २ शतक, पृ० २६, ८५.

[५] "जननी के उर का गर्व जगा मां के उर का अभिमान जगा,
तू धन्य पुत्र जननि के हित बढ़ा युद्ध में प्रेम पगा।"
(सोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : दांडी-यात्रा, पृ० ७३)

[६] जायसी—पद्मावत : गोरा बादल युद्ध, यात्रा खंड, पृ० ३२०.

[७] वियोगी हरि—वीर सतसई : मातृ-शिक्षा, २ शतक, पृ० २९, ८८, तथा देखिए—वही, पृ० ८७, ८९.

[८] आये रण में कूद जूझि कै लला लाडिले काम।
सुनि छाती फूली, फटी, गई जननि सुर धाम।

आधुनिक कवि ने नारी पुरुष के स्नेह संबन्धों को भी देश-कार्य के सूत्र में ही दृढ़ किया है :—

चल पड़ी बहन चल पड़े बंधु चल पड़ी जननि चल पड़े पुत्र ।
पति चले चली पत्नी उनकी जुड़ गया स्नेह का सरस सूत्र ।[1]

युग की मांग और भावना की प्रेरणा ने वीर पूजा को जन्म दिया है। फलतः आज की सत्याग्रही वीरांगनाओं की प्रशंसा करता हुआ कवि अतीत की वीरांगनाओं को भूल नहीं सका है। वे राजपूत स्त्रियां जो सहर्ष और सोत्साह पुत्र, भ्राता तथा पतियों को रण-विदा देती थीं, आधुनिक क्रांति-दूत-कवि के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र हैं :—

"मां कहती बेटा रखना मेरे पय की लाज,
पड़ा भंवर में है स्वदेश का जर्जर जीर्ण जहाज !
कर्णधार बन तुम्हीं आज ले लो, पकड़ो पतवार;
का सत्वर उद्धार और, तुम इसे लगा दो पार ।
लगा देह में रण रोली कहतीं बहनें सोल्लास
भैया निर्भय हो अखिल का करना सत्यानास !
रक्षा बंधन बांध दिया था जो रक्षा का भार
क्या न आज उस गुरु प्रण पर हो जाओगे तैयार ?
जागो बंधु, उठा आहव में वीरों का हुँकार !
लक्ष लक्ष दीनों के आंसू तुम्हें रहे ललकार !
वधुयें कौन ! अरे, हां वे ही नववधुएं सुकुमार
अपने ही हाथों से कर पतियों का रण शृंगार
बाँध वृषभ कंधों पर उन्नत अक्षय खर तूणीर
तन में कवच, मुकुट मस्तक पर, सजा समस्त शरीर
कहतीं, प्रियतम, निश्चय करना अरि गौरव मद चूर;
चिंता नहीं रहे या जाये मम सुहाग सिंदूर !
पर न लौटना बिना विजय को लेकर अपने साथ,
लड़ना दो दो हाथ दिखा कर अपना भुज बल नाथ ।"[2]

प्राचीन वीरांगनाओं में पद्मिनी,[3] कर्मा देवी,[4] वीरा,[5] पन्ना,[6] दुर्गावती,[7]

[1] सोहनलाल द्विवेदी - भैरवी : दांडी-यात्रा, पृ० ७३.

[2] आरसीप्रसाद सिंह—संचिता : अग्रदूत, पृ० १७५.

[3] रामकुमार वर्मा—चित्तौड़ की चिता; श्रीनाथ सिंह—सती पद्मिनी;
वियोगी हरि – वीर सतसई : पद्मिनी जौहर, २ शतक, पृ० ५८; श्याम नारायण पांडेय—जौहर महाकाव्य.

[4] वियोगी हरि—वीर सतसई : कर्मा देवी, ४ शतक, पृ० ७०.

[5] वियोगी हरि—वीर सतसई : वीरा, ४ शतक, पृ० ७०; डा. भगवतसिंह—वीरांगना वीरा,

[6] ,, ,, , पन्नाधाय, ,, ,, ,, ।

[7] ,, ,, , दुर्गावती, ,, ,, पृ० ७१ ।

चांद बीबी,[१] नील देवी,[२] द्रौपदी,[३] कुंती,[४] सुमित्रा,[५] इयुडोसिया,[६] काहिना,[७] तारा,[८] सारंधा,[९]और लक्ष्मीबाई,[१०] जैसी क्षत्राणियाँ आधुनिक कवि की भावना की सिद्धि बन कर आई हैं। कवि कह उठता है :

"दिखलाता इतिहास आपकी सच्ची गाथा
वीर कर्म को देख नवाता जग है माथा।"[११]

इन "सिंही सदृश क्षत्रियाणियों" में आधुनिक कवि को अपनी भावना के अनुकूल साहस और शक्ति, वीरता और तेज, स्वाभिमान और गर्व, देश प्रेम और जाति गौरव का भाव मिला। साक्षात् शक्ति स्वरूपा इन आर्य देवियों के अक्षय यश को आलोकित करता हुआ कवि कहता है :—

"अपने ही बल आपनी रखन हारियां लाज।
धनि आरज कुल नारियां, जग नारिनु सिरताज।[१२]

कवि ने इनमें न केवल स्वरक्षा की सामर्थ्य, निजी बल और साहस पाया है वरन् महत् संगठन-शक्ति और उत्तेजना-चातुर्य भी देखा है। पद्मिनी अनिंद्य सुंदरी है, राज महिषी है, सुकोमला है, किन्तु देश संकट के अवसर पर वह साक्षात् दावानल बन जाती है और हतोत्साह बैठे हुए राजपूतों के हृदयों में आग लगा देती है, वह सहज ही कह उठते हैं—

"इंगित की ही देरी थी, कह तो ब्रह्मांड हिला दें।
देरी थी उद्बोधन की, भू से आकाश हिला दें।"[१३]

---

[१]वियोगी हरि-वीर सतसई : चांद बीबी, ४ शतक, पृ० ७१।
[२] " - " " नील देवी, " " पृ० ७१।
[३]मैथिलीशरण गुप्त—वन वैभव, सैरंध्री; वीरसतसई, ४ शतक, द्रौपदी केश-कर्षण, पृ० ५१.
[४] " " वक संहार.
[५] " " साकेत.
[६] " " अर्जन और विसर्जन : "अर्जन"
[७] " " " " " : "विसर्जन"
[८]सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा.
[९]द्वारकाप्रसाद रसिकेन्द्र —सती सारंधा.
[१०]वियोगी हरि—वीर सतसई : लक्ष्मीबाई, ४ शतक, पृ० ७२ सुभद्राकुमारी चौहान—झांसी की रानी.
[११]राष्ट्रीय-संदेश—रामचंद्र शर्मा "विद्यार्थी"—माताओं से; तथा, "वीरांगना वीरा" की भूमिका में कवि कहता है "इसी सती शिरोमणि के सच्चे पति-व्रत धर्म, देशप्रेम, जातिप्रेम, स्वाधीनप्रियता तथा अपूर्व शौर्यतादि गुणों का वर्णन करने में मैं भी अपनी मंद लेखनी पुनीत करना चाहता हूँ"
[१२]वीर सतसई—आर्य देवियां, ५ शतक, पृ० ६९, १५.
[१३]श्यामनारायण पांडेय—जौहर महाकाव्य, ७, पृ० ४०, ८.

रात्रि के अन्धकार में रानी का देशाभिमान जगाने वाला गान गूँज उठता है[१] और उसका गीत चेतन तो क्या जड़ को भी उत्तेजित कर देने में समर्थ है।[२] इसी प्रकार मूर महिषी रानी काहिना का स्वातंत्र्य प्रेम और आत्म विश्वास रमणीय है।[३] अनेक बार कवि ने नारी का देश प्रेम पुरुष से कहीं अधिक बढ़ा हुआ पाया है। पुरुष प्रायः भोग विलास की सरिता में देश और जाति के गौरव को बहा बैठता है किन्तु वीर नारी का देश प्रेम सदैव जागरुक रहता है। इयुडोसिया की प्रथम आकांक्षा है कि उसका भावी पति जोनस, सीरिया को अरबों के आतंक से मुक्त करे।[४] वीरा, जो एक वीरांगना मात्र थी, अपने ओजपूर्ण शब्दों से दो दो बार क्षत्रियत्व से च्युत होते हुए उदयसिंह में देश प्रेम जाग्रत करती है।[५] इस प्रकार सारंधा की भर्त्सना कामाकर्षित भ्राता अनिरुद्ध को कर्तव्य ज्ञान कराती है।[६] सारंधा के जीवन में यह अकेला अवसर नहीं है। चंपतराय से विवाह होने के पश्चात् बुंदेलखंड की स्वातंत्र्य रक्षा के लिए उसने जो अनेक प्रयत्न किए वह आधुनिक कवि के प्रधान आकर्षण हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवि में प्रबल राष्ट्रीय चेतना है। उससे प्रेरित होकर वे नारी को प्रेमिका मात्र नहीं देख सका है। जब कवि देश की परिस्थितियों के प्रति जाग्रत होकर कवियों से कहता है :—

"आज कवि जग !
त्याग अंतःपुर, निरख ये जा रहे हैं कौन दृढ़ डग"[७]

जब वह कृष्ण से भी वंशी छोड़ कर पूर्व जन्म धारण करने को कहता है,[८] जब वह मातृभू के शुभ्र अंचल का दाग मिटाने के लिये भवानी को जगाता है,[९] जब वह "अमि

[१]वही—१२, पृ० ६८, ६.
[२]वही, १२, पृ० ७०, ६.
[३]स्वातंत्र्य के अर्थ हमारे निकट कौन सा मूल्य महान,
धन क्या यह जीवन भी अपना कर दें उस पर हम बलिदान।
यहीं अकिंचन होकर भी हम होंगे कभी न दीन न हीन,
जब तक जगती में अपने को मान सकेंगे हम स्वाधीन।
(अर्जन और विसर्जन : विसर्जन, पृ० २८)
[४]चाहती हूँ, मेरे भावी पति भी स्वदेश के संकट में वीरोचित भाग लें।
(वही : अर्जन, पृ० ७)
[५]ठा० भगवनसिंह—वीरांगना वीरा, पृ० ९—१०, ३३—३९.
देखिए—वही, पृ० २२—२५, ८५—९६.
[६]रामिकेन्द्र—रानी सारंधा, १ सर्ग, पृ० ५.
[७]मोहनलाल द्विवेदी—युगाधार, पृ० ४८, १६.
[८]मोहनलाल द्विवेदी—भैरवी : अनुनय, पृ० ७८.
[९]मातृ भू के शुभ्र अंचल का मिटा दे दाग
ओ भवानी जाग !
(भैरवी, पृ० १२, १६)

उमंग"[1] से भरा हुआ भविष्य के कर्णधारों को जगाने में संलग्न है, जब वह रोदन और शृंगार के स्वर त्याग अरुणोदय के शंखनाद के प्रति सजग है,[2] तो स्वाभाविक ही है कि वह नारी के देश प्रेमिका रूप का स्वागत करे, स्वतन्त्रता युद्ध में बलि होने वाले योद्धा की सच्ची सहयोगिनी के रूप में देखे। साथ ही प्राचीन वीरांगनाओं और नवीन असहयोगिनियों को देख कर उसे अपनी भावना की सत्यता पर विश्वास भी होता है। आधुनिक कवि के लिये देश का महत्व जौहर और पतिप्रेम से भी बढ़ जाता है। जौहर मरण-त्यौहार था और पतन से बचने का साधन था। किन्तु वह विपत्ति से पलायन था, उसमें सन्मुख-निर्भयता का अभाव था। इस युग के कवि की वीरांगना कोमलता और अबलात्व को त्याग कर सन्मुख युद्ध में प्रवृत्त होना चाहती है।[3] और कवि "जौहर की रानी पद्मिनी" की स्मृति में कह उठता है :—

"पति प्रेम वतन के पूजन में, आज़ादी बलि के जीवन में,
तप त्याग धधकती ज्वाला में, जौहर प्रिय अमृत चिंतन में
जो अमर वेलि बन कर फैली
वह आज़ादी की दीवानी रक्त चंडी जौहर की रानी।"[4]

२ समाज सुधार की भावना (मानवीरूप)

कवि चाहे अतीत की कल्पना करे अथवा भविष्य का निर्माण करे, उसे अपनी भावना की मूल प्रेरणा अपने ही समाज से मिलती है। आधुनिक कवि को यदि अव्यावहारिक ह्रासोन्मुखी रूढ़ियों में जकड़ा दुर्दशा को प्राप्त हिंदू समाज न दीखता तो वह भारतीय संस्कृति की व्यावहारिक, वैज्ञानिक और उत्थानोन्मुखी व्याख्या करने के लिए 'कामायनी', 'साकेत', 'वैदेही वनवास', 'तुलसीदास', 'यशोधरा' आदि जैसे ग्रंथों की रचना न कर सकता; यदि उसे समाज में अशिक्षित, ज्ञानहीन पद-दलित नारियाँ नहीं दीखती तो वह श्रद्धा और उर्मिला, यशोधरा और सीता की मौलिक कल्पना करने में असमर्थ रहता। वास्तव में इस युग की आदर्शवादिता सामाजिक पतन और यथार्थ दशा से ही प्रेरित है। इस प्रकार एक व्यापक दृष्टि से तो इस युग के समस्त काव्य की नारी-भावना सुधार भावना से उद्भूत है, किन्तु कुछ काव्य ऐसा है जो बिल्कुल सीधे ढंग से सामाजिक

---

[1] आरसीप्रसाद सिंह—संचयिता : पृ० १३६.

[2] वहीं—कवि के प्रति.

[3] माना जौहर भी होता था, मरने के त्यौहारों वाला
और पतन के अगम सिंधु में, तरने के त्यौहारों वाला।
× × ×
जौहर से कढ़ कर घोड़े पर चढ़ कर जौहर दिखलाने दो
चुँदियों हो सुहागिनी यौवन ! यौवन अवनी पर आने दो।
माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी : सिपाहिनी, पृ० ४१.

[4] पुरुषोत्तमदास विजय—जौहर की रानी पद्मिनी, वीणा, अप्रैल १९३७.

समस्याओं को लेकर नारी पर प्रकाश डालता है। छायावादी और रहस्यवादी कवि तो प्रायः इस प्रकार की सुधार भावना से दूर ही रहे। वे वायवीय कल्पनाओं में अधिक लीन रहे। किंतु कुछ कवि अधिक स्थूल दृष्टि रखते हैं। अयोध्यासिंह उपाध्याय, मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, वियोगीहरि आदि का ध्यान इस ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ।

यह कवि प्राचीन भारतीय नारियों की सुशिक्षा, सज्ञानता, कुशलता आदि की तुलना में आधुनिक भारतीय नारी की दुर्गति देख कर क्षुब्ध है।[1] प्राचीन काल में :—

"निज वैभव से ही गर्व शची का जो खोतीं थीं,
वाणी के ही तुल्य श्रेष्ठ विदुषी होतीं थीं!
ऐसी सतियों का यहाँ महामान सम्मान था
जो मानव अभिमान था, देशोन्नति पहचान था।"[2]

तो उसके विपरीत आज :—

"शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा
उर में हमारे और शोक उपजाती है।
जननी नहीं हैं अब जननी सपूत यहाँ,
गृह में कभी न गृहदेवी मान पाती हैं।
जाल में फँसी मलीन मीन के समान दीन,
नारियों को देख आँख भर भर आती है।"[3]

नारियों की सामाजिक दुरवस्था के कारण समाज की प्रतिष्ठा तो नष्ट होती ही है[4] साथ ही भारत की भाग्य-लक्ष्मी के उदित नहीं होने का कारण भी कवि इसी को मानता है :—

"गृह देवियाँ यहाँ हैं पाती नहीं प्रतिष्ठा।
किस भांति भाग्यलक्ष्मी दे फिर यहाँ दिखाई।[5]

---

[1]दमयंती की यही जन्म वसुधा है प्यारी,
हुई रुक्मणी यहीं और गार्गी, गांधारी।
जनक सुता की कथा विश्व विश्रुत है न्यारी,
और कहाँ है हुई जगत में ऐसी नारी,
पर आज अविद्या-मूर्ति सी हैं सभी श्रीमतियाँ यहाँ,
री सृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियाँ यहाँ।
(गोपालशरण सिंह—संचिता : विधि-विडंबना, पृ० १५६)

[2]प्रतापनारायण कविरत्न—नल-नरेश, सर्ग १, पृ० ८.

[3]गोपालशरण सिंह—माधवी : भारत-नारद-सम्मिलन पृ० ०५, १०.

[4]"यदि अबलाओं की सुधरती नहीं है दशा,
लाज ही समाज की हमारे अब जाती है।" (वही)

[5]गोपालशरण सिंह—संचिता : भाग्य-लक्ष्मी, पृ० ११२.

कवि ने नारी को मानवी माना है,[1] साथ ही नारी में, जैसा कि हम देख चुके हैं, उसने अनेक गुणों का संचय भी पाया है। फलतः इस युग के कवि के लिए आदर की पात्र नारी का सामाजिक पददलन असह्य हो जाता है। नारी को देवीरूप में देखने वाला, समुचित मान प्रदान करने वाला, उसकी महत्ता को स्वीकार करने वाला, आधुनिक कवि वैवाहिक समस्याओं, विधवा के कष्टों, पर्दा-प्रथा के दुष्परिणामों, नारी-शिक्षा की अनिवार्यता तथा नारी के पतित समझे जाने वाले रूपों को एक मानवतावादी दृष्टिकोण से देखता है।

हिन्दू-समाज में विवाह सबसे महत्वपूर्ण समस्या है। कन्या के गृह में आते ही उसके विवाह की चिंता माता-पिता को पीड़ित करने लगती है। परंपरागत रूढ़ियों में बँधे हुए माता-पिता बालिका का ही विवाह कर देते हैं, चाहे वर कैसा भी हो। वे मानो कन्या को बेच देते हैं और साथ ही उसकी व्यथा के प्रति कान बंद कर लेते हैं[2]। वृद्ध के साथ नवयुवती का विवाह करते हुए भी समाज को संकोच नहीं होता। शशिकला राहु को आत्मसमर्पण करती है, कुसुमकली बन्दर के हाथ में डाल दी जाती है, और मृदुलतिका का आलिंगन पाषाण करता है।[3] युवती का प्रेम रो उठता है और मूक भाषा में रक्षा की भीख मांगता है किन्तु :—

> उत्साह का सुदमयी निशा में किसे भला है ध्यान,
> जग की कोमल मानवता का होता है बलिदान।[4]

स्त्री को खिलौना मात्र बनाकर विविध प्रकार से मनोनुकूल लीलाएँ की जाती हैं और पुरुष यदि सुख से विलास करता है तो नारी सदैव दुःख सहन करती है।[5] आधुनिक कवि के लिए यह असह्य है। साथ ही कवि प्रेमहीन विवाह की समस्या पर भी दृष्टिपात करता है। भारतीय नववधू एक सर्वथा अपरिचित पुरुष को अपना प्रेम समर्पित

---

[1]गोपालशरण सिंह—मानवी : मानवी, पृ० १-५.

[2]बेटियां छिलते कलेजे को कभी, सामने आ खोल सकती हैं नहीं।
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—चुभते चौपदे : बेटियां, पृ० १९७)

[3]गोपालशरण सिंह—मानवी : बलिदान, पृ० १०८.

[4]वही, पृ० १०९.

[5]क—वे अगर हाथ का खिलौना है।
तो न उनको खेला खेला मारें।
(अयोध्यासिंह उपाध्याय—चुभते चौपदे : बेटियां, पृ० १९९)

ख—क्यों न यह सोचा गया, हम किसलिए
सुख में सदा विलसें, वे दुःख सहें। (वही, पृ० २००)

ग—मर्द चाहे माल चाबा करें।
औरतें पीती रहेंगी मांड ही। (वही : बेवाएं, पृ० १९७)

करती है।[1] इस प्रथा का शुक्ल पक्ष भी है, किन्तु स्त्री की इच्छा के न रहते हुए, उसकी भावना अन्याश्रित होते हुए भी जब ऐसा होता है तब नारी की सामाजिक विवशता का ही परिचय मिलता है। कवि की आधुनिक ब्रजबाला के हृदय में विवाह के उपरांत भी एक पूर्व-स्मृति वास करती है, और उसके सस्मित अधरों पर विषाद की रेखा खिंची रहती है, आनंद अंबुनिधि में वह प्यासी ही रहती है और उसका विवाहित जीवन भी असंतोष से ही भरा रहता है :—

"पति की गोदी में लेटी तू किसे याद है करती,
सुमनों की सुख शय्या पर क्यों आह सदा है भरती।"[2]

समस्त अतृप्ति और अशांति का मूल तो यह है :—

"तन किसे दिया तूने
मन किसे दिया तूने।"[3]

किन्तु उसक. वेदना गंभीर नीर-निधि की नीरवता की भांति गुप्त और मूक रहती है। क्योंकि भारतीय समाज में कन्या को व्यक्तिगत भावों को खोलने का अधिकार नहीं है। उसकी वाणी रुद्ध की हुई है :—

कह सकती भी न कभी कुछ तू है ऐसी दीवानी।
परवशता ही है तेरे जीवन की करुण कहानी॥[4]

यदि पत्नी के हृदय में प्रेम होता है तो वह उपेक्षित होकर अपने दिन गिनता है। सब प्रकार से स्वतंत्र पुरुष के लिए पत्नी में ही अनुरक्त होना अनिवार्य नहीं रहता। पति का प्यार जब अन्यों के प्रति आकर्षित हो जाता है—हिन्दू समाज में पुरुषों का बहु-विवाह का अधिकार और वेश्या-प्रेम इसका कारण होते हैं—तो उपेक्षिता का भाग्य सदैव के लिए सो जाता है। गृहिणी का सात्विक प्रेम ठोकरें खाता है और :—

"यह नई अतिथि कहलाती शोभा है अंतःपुर की।"[5]

परिणामतः

"हो गया अपरिचित जन सा जीवन धन हृदय निवासी।
रस सागर के तट पर मैं रहती सदैव हूँ प्यासी।"[6]

उपेक्षिता से भी गई बीती दशा भारत की अभागिनी विधवा की है। विधवा से

---

[1]अज्ञात प्रेम गृह में है नववधू पदार्पण करती
है एक अपरिचित जन को जीवन-धन अर्पण करती। (मानवी : दुलहिन पृ० ६)

[2]मानवी : ब्रजबाला, पृ० २०.

[3]मानवी : ब्रजबाला, पृ० २३.

[4]वही, पृ० २६.

[5]वही, उपेक्षिता, पृ० ६६.

[6]वही, पृ० ९८.

आधुनिक कवि की विशेष सहानुभूति है[1]। कवि देखता है कि बाल विधवा की तो पूजा पूर्ण नहीं हो पाती और उसके जीवन में :—

"जब प्रेम मिलन की चाह हुई तब चिर वियोग की व्यथा हुई।
ज्यों ही उसका आरंभ हुआ त्योंही समाप्त वह कथा हुई ॥"[2]

किन्तु नूतन अनुराग, सद्यजात अभिलाषाओं और नवीन शृंगार के सहसा नष्ट कर दिए जाने पर भी परवश मूकता ही उसका साथ दे सकती है।

"तू कभी नहीं कुछ कहती है, चुपचाप सभी कुछ सहती है।
जग में रस-धारा बहती है, पर तू प्यासी ही रहती है।"[3]

इसका विफल प्रेम और अभिलाषाओं का मूक-दमन आधुनिक कवि की सहानुभूति के लक्ष्य हैं।[4] किन्तु कभी-कभी जब बाल-विधवा अपने संयम को खोकर पर-धर्म की शरण लेती है तब तो कवि यह जानता हुआ कि समस्त उत्तरदायित्व समाज का है, कह उठता है :—

"गोद में ईसाइयत इस्लाम की।
बेटियाँ बहुएँ लिटा कर हम लटे ॥"[5]

विधवाओं के सामाजिक अनादर और पर-धर्म ग्रहण के फलस्वरूप स्त्री की लज्जा का नाश होता है और राष्ट्र को अनेक सपूतों की हानि सहनी पड़ती हैं[6]। स्त्री जाति की दुर्दशा ही जाति और देश के पतन और विनाश का सूचक है। आधुनिक कवि ने विधवाओं और पीड़िताओं की आहों और अश्रुओं में भारत का अंधपूर्ण भविष्य देखा

---

[1] (क) अयोध्यासिंह उपाध्याय—चुभते चौपदे : आठ आठ आंसू, बेवायें, पृ० १६३.
(ख) वागीश्वर विद्यालंकार—विधवा.
(ग) सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"—परिमल : विधवा.

[2] मानवी : अभागिनी, पृ० ५९.

[3] वही, पृ० ६०, तथा देखिए—
"वह दुनिया की नजरों से दूर बचाकर
रोती है अस्फुट स्वर में।"
(सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"—परिमल : विधवा)

[4] सब आशायें अभिलाषाएँ उर कारागृह में बंद हुईं।
तेरे मन की दुख ज्वालायें मेरे मन में कुछ छन्द हुईं।
(मानवी : अभागिनी, पृ० ६३)

[5] चुभते चौपदे : आठ आठ आंसू : वेवायें, पृ० १९३.

[6] आबरू जैसा रतन जाता रहा,
खो गए कितने निराले लाल भी।
(चुभते चौपदे : आठ आठ आंसू : येवायें पृ० १९४)

है[1]। कवि के हृदय में इस विधवा से पूर्ण सहानुभूति है जो व्रत तप करती हुई भी उत्सवों के अवसर पर अमंगला मानी जाती है,[2] और उसे विश्वास है कि :—

"जब नहीं आबाद बेवाएँ हुई।
तब भला हम किस तरह आबाद हों॥
क्यों भला बरबाद होवेंगे न हम।
बेटियां बहनें अगर बरबाद हों॥[3]

नारी की परवशता और करुणा की कथा यहीं नहीं समाप्त हो जाती। भारतीय समाज में प्रचलित पर्दा प्रथा उस सूत्र को सुदीर्घ कर देती है। नारी का समस्त व्यक्तित्व पर्दे के पीछे छिपा पड़ा रह जाता है। उसके ज्ञान का प्रकाश संसार को प्राप्त नहीं होता।[4] समाज उनकी उपादेयता से वंचित रह जाता है। इसमें नारी का दोष नहीं, दोष तो समाज ही का है :—

कितनी ही कोमल कलियाँ मुँह को भी खोल न पातीं।
हो दलित कठोर करों से मुरझा कर हैं झड़ जातीं॥[5]

परदे में गूँजनेवाली वे क्लेश व कथाओं का कोई श्रोत नहीं है। पुरुष की मस्ती के फल स्वरूप अपनी फूटी तकदीर की करुण कथा को बेचारी आहें कहती हैं, किन्तु उन्हें उत्तर क्या मिलता है? विवशता! लाचारी!! ठुकराया हुआ प्यार अपनी पुकारों को दीवालों से टकराता हुआ पाता है और समस्त अभिलाषायें चूर होकर रह जाती हैं।[6]

पर्दे के अतिरिक्त स्त्री-शिक्षा भी इस युग के मस्तिष्क की प्रमुख समस्या है। कवि पुरुषों के ही समान स्त्रियों को भी शिक्षित देखना चाहता है। देश की उन्नति और संतान की उत्तमता अर्धांगिनी की सुशिक्षा पर ही निर्भर है। अर्धांगिनी को शिक्षा का उतना ही

---

[1]देखता हूँ जाति डूबेगी।
है जमा नित हो रहा आंसू। (वही, पृ० १९५); तथा
जहाँ बाल विधवा हिये रहे धधक अँगार।
सुख सीतलता की तहाँ करिहौ किमि संचार।
भले सुधा सींचौ तहाँ फलु न लागि है कोय॥
जहाँ बाल विधवान को अश्रुपात नित होय॥
(वियोगी हरि—वीर सतसई : बाल विधवा : ६ शतक, पृ० ६५)

[2]विधवा तरुन तपस्विनी असिव्रत पालन हारि।
कही जात या जगत में हा अमंगला नारि॥ (वही, मंगला और अमंगला, पृ० ९५)

[3]चुभते चौपदे—आठ आठ आंसू : बेवाएँ, पृ० १६३.

[4]शुचि ज्ञान भानु उर में ही है सदा छिपा रह जाता
उसका प्रकाश अवनी में है कभी न होने पाता। (मानवी : परदे में, पृ० १५)

[5]वही.

[6]गोपालशरण सिंह—मानवी : परदे में, पृ० १७.

अधिकार है जितना पुरुष को, यह कवि की निश्चित धारणा है।[1]

आधुनिक कवि की सहानुभूति की पात्री न केवल गृहस्थिता पीड़िता नारी है वरन् पुरुष की कामोपासना का मूर्त्तस्वरूप किन्तु घृणा की दृष्टि से देखी जानेवाली वह नारियाँ भी हैं जो निज नारीत्व और स्वभावज शक्तियों और आकांक्षाओं का बलिदान करके एक कृत्रिम और अवांछित जीवन को अपनाती हैं। ऐसी नारियाँ हैं—वारांगनाएँ और देव-दासियाँ। "कभी कोई ऐसा इतिहासकार न हुआ जो इन मूक प्राणियों की दुःखभरी जीवन गाथा लिखता, जो इनके अँधेरे हृदय में इच्छाओं के उत्पन्न और नष्ट होने की करुणकहानी सुनाता, जो इनके रोम-रोम को जकड़ लेने वाली शृंखला की कड़ियाँ ढालने वालों के नाम गिनाता और इनके मधुर जीवन पात्र में तिक्त विष मिलाने वाले का पता देता।[2] समाज वारांगना के रूप को देखता है, उसका भोग करता है किन्तु उनकी परिस्थितियों के प्रति विचार हीन है, उनके अंतर्हृदय के प्रति अंध है।[3] आधुनिक कवि रीतिकालीन कवि की भाँति गणिका की चतुर चेष्टाओं से आकृष्ट नहीं है, वरन् उसके लिए तो सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न यह है :—

"सच बतला, क्या अपने मन में, रहती है तू कभी प्रसन्न।
तरुणी तेरे इस जीवन में, कितनी करुणा है प्रच्छन्न ?"[4]

---

[1]सम हैं दोनों नर नारी, ज्ञान प्राप्ति के अधिकारी।
एक वृक्ष के दो फल हैं, एक डाल के दो दल हैं।
+ + +
यह कैसी है मनमानी न्याय नीति की नादानी।
अर्धाङ्गिनी कहलाती है मगर मूर्ख रह जाती है।
पढ़ी लिखी नारी होगी, पतिव्रता प्यारी होगी।
पढ़े पुराण पवित्रों को, सीता सती चरित्रों को।
धर्म कर्म निज जानेगी, गुरुजन को भी मानेगी।
संकट में धीरज देगी, कभी न तुमको तज देगी।
मधुभाषिणी घर की श्री, होती सदा सुशिक्षित स्त्री,
देशोन्नति हो ध्येय अगर, या समाज सेवा व्रत भार,
तो भी साथ स्त्रियों को लो, उत्तम शिक्षा उनको दो।
बिना स्त्रियों के कभी होने का कुछ काम नहीं।
(रूपनारायण पांडेय—पराग : स्त्री-शिक्षा, पृ० ११०-१११)

देखिये—सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा, पृ० ७, १९.

[2]महादेवी वर्मा—शृंखला की कड़ियां : जीवन का व्यवसाय, पृ० ११४.

[3]होता है जग मुग्ध देख कर, तेरा नित नवीन शृंगार।
कौन कभी सुनता है बाले ! तेरे उर का हाहाकार।
(गोपालशरण सिंह—मानवी : वारांगना, पृ० ६६)

[4] वही,

उसे पूर्ण विश्वास है कि रूप का हाट लगाने वाली वेश्या में भी चिरंतन नारी हृदय वर्तमान है। "उनके पास धड़कता हुआ हृदय है जो स्नेह का आदान-प्रदान चाहता है, उनके पास भी बुद्धि है जिसका समाज के कल्याण के लिए उपयोग हो सकता है, उनके पास भी आत्मा है जो व्यक्तित्व में अपने विकास की पूर्णता की अपेक्षा रखती है।"[1] इसी लिए तो वह कहता है :—

"रही खोजती सदा किन्तु क्या, मिला तुझे तेरा हृदयेश ?
कभी किसी ने तुझे सुनाया, क्या निज प्राणों का सँदेश ?
है तेरी प्रगल्भता में भी, छिपा हुआ लज्जा का भाव।
किसी रत्न का तुझे खटकता, रहता है सब काल अभाव।
निज जीवन में कभी न पाया, तूने जीवन का आनन्द।
खुले हुए भी सदा रह गये, तेरे लोल विलोचन बन्द।"[2]

"किन्तु उसे अभिशाप मिला है नित्य सुंदर मात्र रहने का, पुरुष की वासना वेदी पर घोरतम बलिदान करने का, और उस अग्नि में हँसते-हँसते अपने जीवन को तिलतिल जलाने का। उसके हृदय में प्यास है परन्तु उसे भाग्य ने मृगमरीचिका में निर्वासित कर दिया है।"[3] कवि के शब्दों में—

"रस सागर में हो निमग्न भी, तू रह गई सदैव सतृष्ण।
कैसे प्यास बुझे जीवन की ? मिला न तुझको तेरा कृष्ण।"[4]

अस्तु, वेश्या के समस्त उल्लास-विलास के पीछे कवि ने असीम रुदन देखा है। कवि को दुख है कि नारी हृदय की विभूतियाँ इस प्रकार छिपी पड़ी रह जाती हैं।[5] किन्तु, फिर भी, उसका बलिदान और सहनशक्ति अपरिमेय है। निर्दय संसार ने उसे त्याग दिया है, उस पर सदैव कीचड़ उलीचा है, कभी प्रेमवारि से उसके दग्ध हृदय को सींचा नहीं, फिर भी वह :—

"सुधा पिलाती है औरों को, पीकर स्वयं गरल के घूँट।"[6]

और :—

बिंधी कंटकों से कलिका सी, हँसती तू भी है सोल्लास।
उर की मार्मिक व्यथा छुपाकर, करती है नित हास विलास।[7]

---

[1] महादेवी वर्मा - शृंखला की कड़ियाँ : जीवन का व्यवसाय, पृ० ११५.

[2] मानवी : वारांगना, पृ० ६८.

[3] शृंखला की कड़ियां : जीवन का व्यवसाय, पृ० ११५

[4] मानवी : वारांगना, पृ० ७०.

[5] सना हृदय के नयननीर से, है तेरा उल्लास विलास।
छिपा हुआ रह गया सर्वदा, तेरे उर का विमल प्रकाश।
(मानवी : वारांगना, पृ० ६९)

[6] मानवी : वारांगना, पृ० ६९.

[7] मानवी : वारांगना, पृ० ६८.

नारी जीवन की इसी ढंग की विडंबना कवि ने देवदासी में पाई है। उसके हृदय की आकांक्षाओं का सजीव बलिदान प्रस्तर मूर्ति के चरणों में होता है। कवि को आश्चर्य है:—

वार दिया है जिस पर तूने तन मन जीवन सभी प्रकार।
कभी दिखाता है क्या वह भी तुझे तनिक भी अपना प्यार ?

× × ×

क्या प्रतिमा के पूजन से ही होता है तुझको संतोष।
क्या न कभी आता है तन्वी तुझे भाग्य पर अपने रोष ?[1]

आधुनिक कवि का हृदय देवदासी के नूपुरों के साथ नाच नहीं उठता वरन् उसके विचित्र बलिदान को देखकर रो उठता है :--

"तूने ली है मोल दासता करके निज सर्वस्व प्रदान।
रो उठता है हृदय देख कर यह तेरा विचित्र बलिदान।'[2]

इस प्रकार नारी से सहानुभूति रखने वाला कवि अज्ञात रूप से उसके करुण-स्वरूप की ओर आकर्षित हो गया है। अबलाओं और बालाओं को अभिन्न साथ[3] देख कर प्राचीन इतिहास के पृष्ठों में भी उसने कुछ उदाहरण पा लिए हैं। गोपालशरण सिंह ने सतयुग की शकुंतला, त्रेता की सीता, द्वापर की राधा और कलियुग की अनारकली की करुण-कथाओं पर प्रकाश डाल कर नारी-समस्या के व्यापकता और अविच्छिन्नता को स्पष्ट कर दिया है। काल के साथ समस्या के बाह्यरूप में और वातावरण में भले ही परिवर्तन हो जाय किन्तु मूलतः नारी की करुण कथा का सूत्र एक ही है। उल्लिखित कथाओं में कवि का लक्ष्य नारी के प्रेम, सहन-शील और सतीत्व को प्रदर्शित करने के अतिरिक्त उसका वैषम्य पौरुषी अत्याचार में दिखाना भी है। गोपालशरण सिंह की "मानवी" के प्राक्कथन में श्री रघुवीर लिखते हैं : "इन सब कथानकों को लेकर बहुत कुछ लिखा जा चुका है, बड़े-बड़े महाकवियों तक ने उन पर अपना काव्य-कौशल दिखाया है, एवं उनकी कृतियों के साथ मानवी की कविताओं की तुलना न कर यही कह देना उपयुक्त होगा कि मानवी के कवि का अपना विशिष्ट दृष्टिकोण है और उसे कवि ने पूर्णतया निबाहा है, इन देवियों के प्रति मनुष्य समाज द्वारा दिखाई गई उपेक्षा या उन पर किये गये अन्यायों की वार्ता कवि के हृदय पर चोट कर गई है और इसी से संयमित रस में रहने वाला यह कवि भी क्षुब्ध होकर प्रथम बार विचलित हो गया। असंतोष ने विद्रोह का रूप धारण किया है, कवि की इस कृति में समाज के जटिल बंधनों के प्रति अनादर का भाव भी देख पड़ता है। यही कारण है कि जहां कालिदास भी राजा दुष्यंत के समान बहु-

[1] मानवी : देवदासी, पृ० ३१ तथा ३४.
[2] वहीं, पृ० ३५.
[3] साथ ही साथ रहतीं हैं अबलायें और बलायें।
शशि की कमनीय कलायें घन की घन घोर घटायें। (मानवी : परदे में, पृ० १९)

पत्नीक राजा को अपने नाटक का प्रधान चरित्र नायक बनाते नहीं हिचका, और शकुंतला के प्रति दुष्यंत की उपेक्षा को दुर्वासा ऋषि के शाप का परिणाम बताया; वहां मानवी के कवि ने उसी घटना को भी मनुष्य द्वारा स्त्री पर किए गए अत्याचारों के एक ज्वलंत उदाहरण के तौर पर पेश किया है। 'मानवी' का कवि दुष्यंत को क्षमा करने को तैयार नहीं है। किन्तु इतना सब होने पर भी कवि ने शकुन्तला के चरित्र चित्रण में भारतीय नारीत्व के आदर्श को निभाया ही नहीं है उसे अक्षुण्ण भी बनाये रखा है।"[1] कालिदास ने बहु-पत्नीक राजा दुष्यंत को आदर्श चरित्र नायक बनाने के लिये बहुत कुछ किया, यहां तक कि दुर्वासा के शाप की भी कल्पना कर ली। किन्तु आधुनिक कवि दुष्यंत को वंचक मानते हैं और इसे पुरुष की कृतघ्नता और भोली प्रेममयी नारी के प्रति दुष्टता के रूप में देखते हैं। सरल, कोमल शकुन्तला के प्रशान्त जीवन में उद्धत दुष्यंत आकर आग बिखेर देता है और उसके सुख का अंत कर देता है।[2] जो कुसुमकली के समान सुखी और स्वाधीन थी, विहगी के समान पुलकित थी, वही निष्ठुर और छली पुरुष के द्वारा म्रियमाण कर दी गई है।[3] उस सर्वनाश करने वाले पर चाहे शकुन्तला को क्रोध न आया हो, किन्तु आज का कवि अवश्य क्रुद्ध है। नारी के गौरव और व्यक्तित्व का प्रेमी वह तो शकुन्तला—नारी—से यहां तक कहता है :—

किस द्विविधा से निखिल शून्य में, प्यारी लटक रही हो
आत्म मान की महिमा करके तुच्छ धूलि में लुंठित
आज चली हो उन्मन सी तुम पग पग में कुंठित
वंचक पति से मिलने को ! हे निखिल विश्व की रानी !

---

[1] पृ० ६.

[2] अभी अभी तो थी वह निपट अयानी
सरल बालिका खिली कली यौवन की, फिर भी रानी
करती थी कुछ दिन पहले तक शैशव की मृदु क्रीड़ा
अंतस्तल के निभृत विजन में नव-यौवन की व्रीड़ा
छू न गई थी उसको हा दुष्यंत कहां से आये
चिर प्रशांत आश्रम में ! अपने साथ कहां से लाये
नवोन्मत्त वैशाख मास की प्रथम तामसी झटिका !
निर्मल पुण्य तपोवन में फैलाई क्या कुज्झटिका
विकल मोह की ! आग लगाई क्यों शीतल वन में ।
(इलाचंद्र जोशी-विजनवती : शकुन्तला, पृ० ८१)

[3] थी तू वन की कुसुमकली सी सुखी और स्वाधीन
किस निष्ठुर ने तुझे कर दिया अतिशय दीन मलीन। (मानवी—शकुन्तला, पृ० ८)
कानन में स्वच्छंद विचरती विहगी पुलकित प्राण,
फंसा वंचक प्रेम जाल में है मलीन म्रियमाण। (मानवी : शकुन्तला, पृ० ८७)

सारे जग को अपना कर तुम क्यों कर हुई विरानी
हृदय हीन प्रेम के कारण त्यागो उसकी माया,"[1]

और सहानुभूति वश अपना कर उस दुःखिता के लिए बढ़ा देता है[2]। इसी प्रकार पति परित्यक्ता, दुखिता दमयन्ती को देख कर कवि चाहता है कि वह अपने दुःख को भूल कर बाल्यकाल के स्वप्नों में विहार करके पुनर्जीवन का निर्माण करे उसे अत्यन्त दुख है कि भोली बालिका नल के प्रपंच पूर्ण फंदे में पड़कर पीड़ित हुई।[3] सीता के पौराणिक कथानक को उठा कर कवि एक सामयिक संदेश देता हुआ दीखता है :—

"भारत लक्ष्मी बंदीगृह में कब तक बंद रहेगी ?
यह अन्याय दुष्ट दशमुख का कब तक मही सहेगी
कब तक दुःसह दावानल में वह मृदुलता दहेगी"[4]

इस रूढ़ि विरुद्ध और मानवतावादी दृष्टिकोण को लेकर आधुनिक कवि के सम्मुख मानव की स्वतन्त्रता और समानता, जो आधुनिक युग की महत्वपूर्ण समस्या है, प्रमुख प्रश्न हो जाता है। इस युग का कवि नारी को मुक्त तो नहीं किन्तु पौरुपी अत्याचारों से मुक्त देखना चाहता है। उसकी नारी विद्रोहोन्मुखी के रूप में आती है। गुरुभक्त सिंह की मेहर का विवाह शेर अफगान से हो जाता है जो रमणी को कामपूर्ति की सामग्री मात्र समझता है। फलतः विवाह के पश्चात् मेहर अपना समस्त व्यक्तित्व और स्वतन्त्रता खो बैठती है।[5] पति से मानवता का व्यवहार न पाकर उसका गर्व और आत्मगौरव जाग्रत

---

[1]विजनवती : शकुन्तला पृ० ६७.

[2]आओ, प्यारी, आओ मुझको अपने गले लगाओ,
शोभित होओगी मेरे संग निखिल जगत की वंद्या
स्वच्छ, शुभ, चिर मेघ विमुक्ता, शरतकाल की संध्या (वही, पृ० ७०—७१)

[3]अपने ही रंग में विभोर हो थीं तुम मदन ताप से हीन
हाय अचानक मन सुकोमल कैसे तब हो पड़ा विलीन
कैसे नल के मदनानल से गलित हुआ तव कोमल प्राण
क्यों चिर निर्दय पुरुप जाति से तुम भी नहीं पा सकीं त्राण
(विजनवती : दमयन्ती पृ० ८४)

[4]गोपालशरण सिंह—मानवी : सीता, पृ० ४६.

[5]रमणी उसकी सामग्री थी कामपूर्ति की केवल।
मोहनी मेहर का जादू भी उस पर सका नहीं चल
उसकी वह सुन्दर बेगम रहती महलों के अन्दर।
पग कभी न रख पाती थी वह हरमसरा के बाहर।
कानों पर, मुँह पर, पग पर था उस दुलहिन के ताला।
सारी स्वतन्त्रता हर कर पिंजड़े में पक्षी डाला।
(गुरुभक्त सिंह—नूरजहाँ, ११ सर्ग, पृ० ८०)

हो जाता है और वह चिल्ला उठती है :—

"हृदय नहीं क्या ललनाओं के पुरुषों की हैं कठपुतली ?
वे जो नाचा करें इशारे पर जब खींचे वे सुतली !!
सतत चेतनाहीन बनी वे सेवें गृह का कारागार ?
उन्हें स्वतन्त्र वायु सेवन का भी है मिला नहीं अधिकार ?
पुरुष करें सबकुछ मनमानी, इनकी हो जबान भी बंद।
इनका हो विश्वास नहीं कुछ पशु भी फिरते रहें स्वच्छन्द ॥
+ + +
है कर्तव्य नारियों का कुछ तो उतना ही है अधिकार।
बहुत हो गया हृदय हीन पति का पत्नी पर अत्याचार ॥
यों जिल्लत सहने से अच्छा है दे देना अपना प्राण।
+ + +
नहीं नहीं यह कभी न होगा कभी न होने दूँगी मैं।
मानवता विहीन पति का अन्याय न यों सह लूँगी मैं।
मेरा मस्तक नहीं झुकेगा अविवेकी मद के डर से
मान सहित मैं मर सकती हूँ प्रेम अगर इंगित कर दे ॥
मर्यादा खोकर तलवा मैं नहीं किसी का चाटूँगी।
पराधीनता की बेड़ी यह अपने हाथों काटूँगी।[1]

गुप्त जी की "विधृता"[2] का स्वर भी इतना ही तिक्त और तीव्र है। कवि ने उसमें नारी के अधिकारों और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का जयघोष किया है। स्त्री स्वतंत्रता की प्रतिनिधि यह नारी भागवत की 'विधृता' के समान मूक बलिदान नहीं करती, वरन् पति नामधारी पुरुष की विगर्हणा भी करती है। वह शब्दों में मधुरिमा घोल कर नारी की पूजनीयता घोषित करने वाले, स्वयं पापलिप्त रह कर भी श्रोत्रियत्व का स्वांग भरने वाले, पुरुष की दंभमयी लीला को कटु व्यंगों से विवृत कर देती है।[3] वह यह सहन करने को प्रस्तुत नहीं है कि जहां पुरुष का व्यभिचार क्षम्य हो वहीं स्त्री को अविश्वास की दृष्टि से देखा जाय।[4] पुरुष

[1] गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ११, पृ० ८७-८८.

[2] मैथिलीशरण गुप्त—द्वापर.

[3] कामुक चाटुकारिता ही थी क्या वह गिरा तुम्हारी,
तथा—
वृत्तियों की उन कुत्त स्त्रियों के प्रति अश्लील रहो तुम,
फिर भी श्रोत्रिय होत्री ठहरे क्यों न सुशील रहो तुम !
मैं भूखों को भोजन देने आकर भी दुःशीला,
ललना तो छलना है अहो धन्य तुम्हारी लीला।
(वही, पृ० २१ तथा पृ० २५.)

[4] अविश्वास हा अविश्वास हा नारी के प्रति नर का
नर के भी दोष क्षमा हैं स्वामी है वह घर का। (वही, पृ० ११)

यदि गृहस्वामी है तो नारी भी उसकी अर्द्धांगिनी है; इतना ही नहीं, नारी और भी बड़ी है :—

एक नहीं दो दो मात्रायें नर से नारी भारी ।[1]

इस आधार पर वह स्पष्ट रूप से अपने अधिकारों की मांग करती है :—

"अधिकारों के दुरुपयोग का कौन कहां अधिकारी
कुछ भी स्वत्व नहीं रखती क्या अर्द्धांगिनी तुम्हारी ।"[2]

किन्तु इस युग के नारी-स्वातंत्र्य की कल्पना की सीमा यहीं तक है। यहां पहुँच कर आदर्शवाद कवि को पीछे खींचने लगता है। इस युग का कवि नारी को क्रांतिकारिणी के रूप में नहीं देखता। उसने तो नारी को शील, लज्जा, कोमलता, नम्रता, सहनशीलता, सरल विश्वास और आत्मोत्सर्ग की देवी के रूप में देखा है, जो उपालंभ देना नहीं जानती।[3] इन विशेषताओं पर आघात करने वाले सक्रिय विद्रोह का स्वागत करने को कवि प्रस्तुत नहीं है। फलतः मेहरुन्निसा की विचारधारा पर ब्रेक लगाने के लिए उसकी सखी सुन्दरी नामक हिन्दू सखी उपस्थित हो जाती है,[4] और अंत में बेचारी मेहर यही स्वीकार करती हुई दीखती है :—

"करना क्षमा सखी दुर्बलता आखिर अबला नारी हूँ ।
मन पर नहीं विजय पाई है लड़ते लड़ते हारी हूँ ।
तूने मेरी आंख खोल दी सोई थी अब जागी हूँ ।
तुमने रोक दिया गिरने से तुझको पा बड़भागी हूँ ।"[5]

और 'विधृता' 'आर्यनारी' की भांति केवल मृत्यु में ही एक ठिकाना जानकर आत्मोत्सर्ग के मार्ग को ग्रहण करती है।[6] वास्तव में, इस युग का कवि दो "अबलाओं को अवकाश, कि वे करें निज जड़ता नाश"[7] कहता हुआ भी कुछ सांस्कृतिक, तथा कुछ कुछ रूढ़िवादी शृंखलाओं से अधिक बंधा हुआ है। वह अपनी नारी भावना में भारतीय स्त्रियों की अवस्था में सुधार की आकांक्षा रखता हुआ भी समता और स्वतंत्रता को पूरा पूरा स्थान नहीं दे सका है।[8] उसकी धारणा तो यह है :—

---

[1]वही, पृ० २१.

[2]मैथिलीशरण गुप्त - द्वापर : विधृता, पृ० २३.

[3]अपनी सुध कुल स्त्रियां लेती नहीं ।
पुरुष न लें तो उपालंभ देतीं नहीं ।
(मैथिलीशरण गुप्त—साकेत, सर्ग ५, पृ० १३३)

[4]गुरुभक्त सिंह—नूरजहां, सर्ग ११, पृ० ८८-९०.

[5]वही, पृ० ९०-९१

[6]द्वापर, पृ० ३२.

[7]मैथिलीशरण गुप्त—हिन्दू : स्त्रियों के प्रति कर्तव्य, पृ० १२१.

[8]मैथिलीशरण गुप्त—पंचवटी, पृ० २३, २४, ६०.

"बनत स्वतंत्र नारि त्यहि देखो, तहँ व्यभिचार बढ़ावै।
दंपति प्रेम रहत नहीं दुहुँ बिच, कुल मरजाद नसावै।"[1]

तथा,

है विलास वासना लुभाती अहंभाव है भाता,
नारिधर्म को त्याग रहित है समता भाव बनाता।"[2]

उसकी दृष्टि में नारी का प्रमुख कार्यक्षेत्र गृह है,[3] और गृहलक्ष्मी होना ही उसके लिए परमावश्यक है।[4] आधुनिक समता की भावना कवि की दृष्टि में मानो गृहरानी के उच्चतम पद को छोड़ कर दासीत्व ग्रहण करना है, मोती त्याग कर गुंजा लेना है।[5] पति को ही पत्नी की गति[6] और पति प्रेम को ही उसके हृदय के एकमात्र गान[7] के रूप में देखनेवाला कवि स्वभावतः ही 'आधुनिका' के संबन्ध में एक वीभत्स कल्पना कर लेता है।[8] "चार नाते" नामक कविता में आधुनिक युगीय पत्नी, पुत्री, भगिनी और माता की हीनता पर दृष्टिपात करते हुए हरिऔध कहते हैं :—

"जाति की कुल की धरम की, लाज की।
वे तरह ले रही हैं फबतियां।
हैं लगाती ठोकरें मरजाद को
देनियाँ हैं या कि ये हैं बीबियां॥"[9]

---

[1]शिवरत्न शुक्ल—भरत-भक्ति, सर्ग १६.

[2]अयोध्यासिंह उपाध्याय—कल्पलता : मनोवेदना, पृ० ६६

[3]पढ़ो लिखो पर सदा तुम्हारा घर ही क्षेत्र प्रधान रहे।

(संचिता : गृहलक्ष्मी पृ० १७२)

[4]गृहलक्ष्मी हो तुम्हें सदा इसका समुचित ध्यान रहे। (वही, पृ० १७०)

[5]क. आज गृह रानी तज दुविधा, चाहती चेरी ज्यों सुविधा।

(मैथिलीशरण गुप्त—विश्ववेदना पृ० २२)

ख. पुरुष सम अधिकार चाहैं जौन चंचल तीय।
गहति गुंजा छोड़ मुकता, राखि विवेक न हीय।

(शिवरत्न शुक्ल—भरत-भक्ति, सर्ग १४, पृ० २६७)

[6]मेरी यही महामति है पति ही पत्नी की गति है।

(मैथिलीशरण गुप्त-भरत-भक्ति, सर्ग १४, पृ० १०३)

[7]सदा तुम्हारे उर में गुंजित पति प्रेम का गान रहे। (संचिता, पृ० १७१)

[8]पावन प्रेम पंथ को तजकर प्रेमिकता से ऊबी,
लोक ललाम भूत ललना है लोलुपता में डूबी।"

(कल्पलता : मनोवेदना, पृ० ६६)

देखिए वही : शक्ति, पृ० ११४.

[9]वही, हमारी देवियाँ, पृ० १८३

वास्तव में अपनी कुटुंब कल्पना और नारी संबंधी 'देवी भावना' पर दैनिक जीवन में परिवर्तन के द्वारा आघात पाकर ही कवि ऐसा कहता है :—

हम उन्हें तब देवियाँ कैसे कहें।
बेतरह परिवार से जब तन गईं॥
+ +
सब घरों को दें सरग जैसा बना।
लाल प्यारे देवता जैसा जनें॥
अब रहे ऐसे हमारे दिन कहां।
देवियाँ जो देवियाँ सचमुच बनें॥[1]

संस्कृति के पुजारी कवि की आकांक्षा तो यह है कि :—

रंग बदले तमाम दुनियाँ का। देवतापन न देवता छोड़े॥[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग का मानवतावादी कवि नारी को मानवी रूप में देखना है, उस पर होनेवाले विविध सामाजिक अत्याचारों की निवृति चाहता है, किन्तु साथ ही आदर्शवाद और भारत की प्राचीन संस्कृति का पल्ला पकड़े हुए नारी को "नारी", "कुल स्त्री" रूप में ही देख सकता है। उसकी भावना का आदर्श तो यही है :—

जो पौरुष का भाजन है कोई पुरुष।
तो कुलवाला मूर्ति शांति की है कथित॥[3]

राष्ट्रीय आत्मा की 'नर और नारी' नामक कविता में इस भावना का पूर्ण रूप से विकास हुआ है।[4] इस प्रकार की विचार धारा से प्रेरित होकर इस युग के कवि ने आधुनिक स्वातंत्र्य उपासिकाओं पर प्रचुर व्यंग किए हैं। हरिऔध ने ऐसी नारियों की उक्तियों को अपने रीतिग्रन्थ रसकलस में हास्य रस के उदाहरण में रखकर उन्हें उपहास का विषय बना दिया है।[5] 'समता की ममता पसारने वाली सबला अबला' कवि की दृष्टि में परिवार से प्रेम नहीं करती, पूज्यों का आदर नहीं करती, पति की पूजा नहीं करती, पर्दे को फाड़ कर अपवाद की ओर ध्यान नहीं देती और असहनशीलता का परिचय देती है।[6] इन नारियों को देखते हुए कवि ने भविष्य के संबंध में फिकर की है :—

---

[1]वही, पृ० १८८.

[2]वही; पृ० १८६.

[3]अयोध्यासिंह उपाध्याय—वैदेही-वनवास, सर्ग १४, पृ० १९३, तथा देखिए जयशंकरप्रसाद—कामायनी : लज्जा, पृ० ८२ तथा बल्देवप्रसाद मिश्र—साकेत-संत, सर्ग १, पृ० २५, तथा पृ० २६.

[4]चाँद, नवंबर १९३४.

[5]अयोध्यासिंह उपाध्याय—रसकलस, पृ० २९४.

[6]वही, पृ० २९६, २९७.

"रस बदन वारी विरस ह्वै है
गुनन गहन वारो औगुन को गहिहै।
उपहास कै मंद मंद बिहँसन वारी
नेह गेह वारी नेह गेहता न लगि है।
हरिऔध पति परतीति में न प्रेम रहै
राममयी महि में विरागधारा वहिहै।
पिक बैनी पिक बैनता ते पुलकै है नाहिं
मृगनैनी मृगनैनता से रूसि रहि हैं।"[1]

किन्तु साथ ही प्रगतिवादी युग में प्रस्फुटित होनेवाली नारी के क्रांतिकारिणी रूप की भावना का बीज भी हम इसी युग में पाते हैं। "निराला" की "तोड़ो तोड़ो तोड़ो कारा पत्थर की[2] आदि कविताएँ तथा तोरनदेवी लली के ये शब्द :—

"क्या शान्ति चाहते हो तुम,
गृहिणी गण को फुसलाकर।
बंधन कैसे रख लोगे
उस घड़ भी उन्हें भुलाकर
जब प्रतिहिंसा का भाव
उठेगा क्रूम सभी हृदयों से।"[3]

नारी को पूर्ण स्वतंत्रत देखने की आकांक्षा की प्रथम अभिव्यक्ति हैं। किन्तु परिवर्त्तन युग के सब कवि इसे अपना न सके। अगले युग में इस भावना का विकास देखा जायगा।

---

[1] वही, पृ० २९१.
[2] सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला"—अनामिका.
[3] तोरनदेवी लली— जागृति : जागृति, पृ० ११.

जान नहीं पाती कि किसके हृदय में आजाने से आज उसकी वीणा मौन हो गई है।[1] अभी वह यह नहीं जानती कि यह मधुर स्मृति किसकी है।[2] किन्तु प्रणय की तीव्रता के साथ किसी के अभाव की चेतना स्पष्ट होती जाती है[3] और पूर्व मिलन की स्मृति वेदना का केन्द्र हो जाती है :—

"जीवन है उन्माद तभी से निधियाँ प्राणों के छाले,
माँग रहा है विपुल वेदना के मन प्याले पर प्याले।[4]

नारी के जीवन में प्रेम, वियोग और वेदना का कुछ अनन्य संयोग है। वियोग में प्रथम मिलन की स्मृति ही एक संबल रह जाती है जिसका इतिहास विरहिणी नित लिखती है।[5] संध्या समय नीड़ों की ओर जाते विहगों को देख मिलन महोत्सव का मधुमय चित्र उसके नेत्रों में उपस्थित हो जाता है,[6] और :—

"सब संध्या छाया में जब खोते तपन हृदय को
कर याद अचानक रोती मैं भूले हुए मिलन को।"[7]

जब समस्त संसार सोता है तो विरहिणी आंखों में रात बिताती है, जब सब अपने नीड़ों में विश्राम करते हैं तो वह नदी के तीर पर भटकती है, जब वसुधा पर वसंत आता है तो उसके हृदय में पीड़ा होती है, चांदनी की मुस्कराहट उसकी व्याकुलता बढ़ा देती है। इस विकल अवस्था में :—

"जब शशि की ओर निरख कर होता सब जग मतवाला,
तब व्यथा हलाहल से क्यों भर देती मेरा प्याला।
बन जाती सर्प मुझी को क्यों मेरे उर की माला"[8]

---

[1]आज क्यों तेरी वीणा मौन।
शिथिल शिथिल तन थकित हुए कर, स्पंदन भी भूला जाता उर
मधुर कसक सा आज हृदय में आन समाया कौन ?
(महादेवी वर्मा—नीरजा, पृ० ९, ५)

[2]क्या जाने नीरव नभ में किसका आमंत्रण आता
उर लक्ष्यहीन पक्षी-सा किस ओर उड़ा है जाता (अनंत के पथ पर, पृ० ४, ४)

[3]किसका अभाव मानस में सहसा शशि सा आ चमका
इन सरल तरल नयनों में किसकी उज्ज्वल छवि छाई
किसने मेरे प्राणों में अपनी तस्वीर बनाई। (वहीं, पृ० ६, १, २)

[4]महादेवी वर्मा—नीहार : मिलन, पृ० ४.

[5]मैं अनंत पथ में लिखती जो सस्मित सपनों की बातें
उनको कभी न धो पायेंगी अपने आँसू से रातें। (आधुनिक कवि, १ पृ० ९).

[6]हरिकृष्ण प्रेमी—अनत के पथ पर, पृ० २४, ३.

[7]वहीं, पृ० ५२, १.

[8]वहीं, पृ० ५५.

"बाती" लिए हुए आशा और निराशा के झकोरों में जीवित है।
इसलिए समेटे है कि :—

दि प्रियतम आ जाता तो मैं हार बना पहनाती।"[1]

ग़ यही है :—

सू लेते वे पद पखार।
स उठते पल में आर्द्र नैन
ड़ जाता ओठों से विषाद
। जाता जीवन में वसंत
ख़िं देती सर्वस्व वार।[2]

और अंतिम लक्ष्य है केवल मिट जाना, प्रिय में अपने को खो देना, क्योंकि प्रेम के मार्ग में जीवन देना ही जीवन पाना है।[3]

इस अनन्य प्रणयिनी के अलौकिक प्रेम की विविध भावानुभावमयी अभिव्यक्ति हम आधुनिक काव्य में पाते हैं। वह स्नेह का जीवन की ज्योति मानती है[4] और वेदना को वरदान।[5] विरह मिलन की सूचना तो है ही,[6] साथ ही उसमें प्रिय की ही भावना निहित है इसलिए :—

"विरह का युग आज दीखा, मिलन के लघु पल सरीखा,
दुःख सुख में कौन तीखा, मैं न जानी औ न सीखा।
मधुर मुझको हो गए सब मधुर प्रिय की भावना ले।"[7]

वह कभी तो पल पल के पृष्ठों पर आँसू से संदेश लिख कर प्रिय तक पहुँचाने का प्रयत्न

---

[1]अनंत के पथ पर, पृ० ५६.

[2]महादेवी वर्मा—नीहार : जो तुम आजाते एक बार, पृ० ९४.

[3]प्रियतम के चरणों पर ही अपना सर्वस्व चढ़ाना
जीवन देना ही तो है कहलाता जीवन पाना।
है लक्ष्य लालसाओं का अपना अस्तित्व मिटाना। (अनंत के पथ पर, पृ० ६०)

[4]मुझसे जीवन दीपक को भर स्नेह जला जाता है।
(वहीं, पृ० ८, ९)

[5]एक करुण अभाव में चिर तृप्ति का संसार संचित
एक लघु क्षण दे रहा निर्वाण के वरदान शत शत,
पा लिया मैंने किसे इस वेदना के मधुर क्रय में।। (नीरजा, पृ० १४, ७)

[6]तू जल जल जितना होता क्षय, वह समीप आता छलनामय। (वहीं, पृ० ३१, ३४)

[7]महादेवी वर्मा—सांध्यगीत, पृ० ३१, तथा सांध्यगीत, पृ० १०.

करती है,[१] और कभी कह उठती है :—

"अलि कहाँ संदेश भेजूँ मैं किसे संदेश भेजूँ

+ + +

नयन पथ से स्वप्न में मिल,
प्यास में घुल साध में खिल,
प्रिय मुझी में खो गया अब दूत को किस देश भेजूँ ।[२]

वह कभी स्वप्न दर्शन की प्रतीक्षा में पिक को चुप कराती है,[३] कभी रात भर बाट जोहती हुई अपने प्रिय को पहचान नहीं पाती,[४] किन्तु दूसरे ही क्षण उस ऐक्य का अनुभव करती है जो परिचय के लिए अवकाश नहीं रखता,[५] वरन परिणीता का गर्व होता है।[६] वह कभी शृंगार करके प्रिय की व्याकुल प्रतीक्षा करती है[७] और कभी मिलन की आकांक्षा लिए अभिसार के लिए चल देती है। इस अभिसारिका का मार्ग अत्यंत कठिन है :—

"वह प्रिय दूर पंथ अनदेखा
श्वास मिटाते स्मृति की रेखा,
पथ बिन अंत पथिक छायामय
साथ कुहुकिनी रात री ।[८]

---

[१]कैसे संदेश प्रिय पहुँचाती !
दृग जल की सित मसि हैं अक्षय,
मसि प्याली, झरते तारक द्वय,
पल पल के उड़ते पृष्ठों पर,
सुधि के लिख श्वासों के अक्षर
मैं अपने ही बेसुधपन में
लिखती हूं कुछ, कुछ लिख जाती । (नीरजा, पृ० ४६. २२)

[२]महादेवी वर्मा—दीपशिखा ५५.

[३]नीरजा : पृ० ३३, १५ "प्रिय मेरा......मधु घोल"

[४]पथ देख बिता दी रैन, मैं प्रिय पहचानी नहीं । (नीरजा, पृ० ३४, १६)

[५]"तुम मुझमें प्रिय फिर परिचय क्या ।
तारक में छवि प्राणों में स्मृति,
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लाई हूँ तेरी चंचल और करूँ जग में संचय क्या । (नीरजा, पृ० २४, १२)

[६]तुमको पहचानूँ क्या सुंदर ।
जो मेरे सुख दुख में उर्वर,
जिसको मैं अपना कह गर्वित, (नीरजा, पृ० ५३, २५)

[७]सांध्यगीत, पृ० ११—१२.

[८]वही, पृ० ३१.

किन्तु वह विचलित नहीं है, क्योंकि उसके पास अटल विश्वास की शक्ति है और असीम प्रेम की प्रेरणा। प्रिय भी यदि दूर हटने का प्रयत्न करे तो भी वह अपने पथ से विचलित नहीं होगी।[1] इतना ही नहीं :—

हास का मधु दूत भेजो,
रोष की भ्रू-भंगिमा पतझार को चाहे सहेजो।
ले मिलेगा उर अंचचल,
वेदना जल, स्वप्न शतदल।[2]

अभिसारिका के लिए लोक-लांछन और लज्जा भी कुछ कम नहीं है किन्तु लौटने के लिए स्थान नहीं है। उसके लिए तो प्रिय के चरणों में ही शरण है।[3] मिलन का समय भी अत्यंत परीक्षा का है क्योंकि व्रीडा पूर्ण संयोग में बाधा हो जाती है।[4] किन्तु वह एक क्षणिक बाधा है। प्रिय के समीप उसकी संसृति-भीति भाग जाती है और वह पूर्ण रति-सुख का अनुभव करती है।[5]

इस प्रकार रहस्यवादी की आत्मा एक नारी के रूप में आती है। इसमें कामायनी की श्रद्धा का-सा अविचल प्रेम है, आत्म समर्पण की आकांक्षा है, दृढ़ता और गर्व है और साथ ही दुख को भी सुख बना लेने की शक्ति है।

२ प्रकृति वर्णन के क्षेत्र में : प्रकृति के संबंध में मानव का जो सौंदर्य भाव है वह उस पर चेतन व्यक्तित्व के आरोप और साहचर्य में विकसित होता है। आधुनिक छायावादी काव्य की वह एक प्रमुख विशेषता है। छायावादी कवि भारतीय प्रकृतिवाद, जिसमें प्रकृति दिव्य शक्तियों की प्रतीक, और सजीव जीवन सहचरी बनकर आती है, की ओर आकर्षित है। वैदिक कवियों की ऊषा, उर्वशी, पृथ्वी, रात्रि आदि की नारी रूप में कल्पना आधुनिक कवि की प्रेरणा है। आधुनिक परिस्थितियों में वैदिक भावना का अनुकरण तो संभव नहीं है, फिर भी प्रकृति में चेतन नारीत्व का आरोप करके, तथा उसमें वही बाह्य और आंतरिक सौंदर्य देखकर जो उसने नारी में पाया है, आधुनिक कवि ने हिन्दी साहित्य में एक नवीनता की सृष्टि की है। सत्य तो यह है कि आधुनिक कवि की नारी कल्पना ही नैसर्गिक है। कवि की प्रेयसी स्थूल पार्थिव रूप की राशि नहीं है वरन् प्रकृति के संचित कोष से निर्मित नैसर्गिक सौन्दर्य की प्रतिमा है। भावी पत्नी की रूप-कल्पना में निमग्न पंत कहते हैं :—

---

[1] वह रूप छिपा दे अपना मैं कभी निराश न हूँगी
इस भांति भटकती फिरकर मैं इसे प्राप्त कर लूंगी।
(अनंत के पथ पर, पृ० ३८, २)

[2] दीपशिखा, ५

[3] सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" —गीतिका, पृ० ६, ६०.

[4] वही; पृ० २१, २८.

[5] वही, पृ० ४८, ४१.

"अरुण अधरों का पल्लव प्रात मोतियों का हिलता हिम हास,
इंद्रधनुषी पट से ढक गात बाल विद्युत का पावस लास,
हृदय में खिल उठता तत्काल अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान प्रिये प्राणों की प्राण।[1]

इस प्रकार नारी में प्रकृति को देखने के पश्चात् कवि सहज ही प्रकृति में नारी को देख लेता है। यहाँ उसकी प्रकृति भावना नारी भावना से ही संचालित है। जो रूप-सौन्दर्य और भाव-सौन्दर्य नारी में देखा गया था वही अप्सरा, देवि, प्रिय और माता के रूपों में प्रतिष्ठित प्रकृति में भी देखा जाता है।

"रूप रश्मि" के परिचय में रामकुमार वर्मा लिखते हैं "रूप रश्मि में एक भावना और है वह अन्वेषण की। हृदय में किसी से मिलने की आकांक्षा रहती है। उस समय मुझे ऐसा मालूम होता है जैसे मैं सांख्य शास्त्र का पुरुष बन गया हूँ और अपने चारों ओर की प्रत्येक वस्तु-लता, कली, लहर, संध्या, पवन, प्रकृति बन कर मेरी प्रेयसी हो रही है।" इस कथन से स्पष्ट है कि कवि अपने चारों ओर के प्राकृतिक उपकरणों में एक मानवीय रूप देखता है जिसके साथ एक रागात्मक संबंध की स्थापना करने के लिए उसका हृदय आकुल रहता है।

आधुनिक कवि की सौन्दर्य दृष्टि प्रकृति में विविध रूपों और विविध भावों का दर्शन करती है। चंद्रभानुसिंह ने अपने उपवन में शृंगार, स्वप्न, अभिनय की उस अलबेली नायिका को पाया है जो निपट भोली है और कौतुक शीला है।[2] उमाशंकर वाजपेई निशा को "अनुरागमयी गजगामिनी" और चांदनी को "चख चितवति" "सेत बरन सुकुंवारि" के रूप में देखते हैं।[3] महादेवी वर्मा वसंत रजनी में मृदु चितवन से मुक्ताहल अभिराम बिछाने वाली वधू को देखती हैं।[4] निराला सरस शृंगारमयी दृष्टि से वायु में प्रेममयी और लज्जाशीला नवागता,[5] पृथ्वी में पूर्ण युवती,[6] रात्रि में प्रीति और लाज के द्वंद्व-सी पीड़ित अभिसारिका[7], 'जुही की कली और शेफालिका'[8] में यौवनोन्मत्त प्रेमिका को देखते हैं। शांतिप्रिय द्विवेदी सुमनबाला की चितवन के घातक प्रभाव को नव प्रस्फुटित यौवन-

[1]सुमित्रानंदन पंत -गुंजन : भावी पत्नी के प्रति, पृ० ३३, ३४.
देखिए-पल्लव : आँसू, पृ० २०.
[2]चंद्र भानु सिंह —अर्चना, स्वप्न-शृंगार, पृ० ८३, ८४.
[3]उमाशंकर वाजपेयी—वृज-भारती : निशा, पृ० २९, ३१ चांदनी.
[4]नीरजा, पृ० ३, २.
[5]अनामिका : तटपर, पृ० ४९, ५०.
[6]वहीं : नर्गिस, पृ० १८७.
[7]परिमल—गीत, पृ० ८२.
[8]परिमल.

पुष्प पर देखते हैं।[1] पंत 'छाया' को निर्जन की इस क्षण भर की संगिनी के रूप में पा लेते हैं जो सुंदर है, तरुणी है और प्रेम-लालसा का ध्यान लिए हुए है।[2] नगेन्द्र उषा को राग की देवी और पति परायणा के रूप में पाते हैं।[3] वागीश्वर विद्यालंकार निर्झर को विरह में झर-झर आंसू बरसाकर किन्हीं चरणों में पहुँचाती हुई बाला के रूप में देखते हैं।[4] गुरुभक्त सिंह ने नदी के इतिहास में कन्या के विवाह के चित्र को पाया है।[5] 'लाजवंती' को उन्होंने वास्तविक सती पाया है जो "पर .पाणि परस" से सिहर उठती है,[6] और वह सती है जिसे अपनी आबरू ही सबसे अधिक प्यारी है। नरेन्द्र प्रकृति प्रिया के भ्रू-वंकिम विलास में अग जग का नवोल्लास देखते हैं।[7]

प्रकृति का नारी व्यक्तित्व न केवल सौन्दर्यमय है वरन् वात्सल्यपूर्ण और कल्याणयुक्त भी है। इस प्रकार की भावना का विकास करता हुआ आधुनिक छायावादी कवि अंग्रेजी के १९ वीं शताब्दी के कवियों की प्रकृति भावना से थोड़ा बहुत अवश्य प्रभावित हुआ है। वर्डस्वर्थ आदि प्रकृतिप्रेमी कवियों ने प्रकृति के सौंदर्य से अभिभूत होते हुए उसका कल्याणकारी तथा सुखद प्रभाव मानव स्वभाव तथा चरित्र पर देखा था। भारतीय मस्तिष्क नारी के वात्सल्यमय रूप की ओर विशेष रूप से आकर्षित रहा है, इसलिए हिन्दी के छायावादी कवियों ने प्रकृतिरूपी नारी के सत् प्रभाव में उसके वात्सलरूप का सामंजस्य कर दिया है। इस संबंध में वह ऊषा, पृथ्वी आदि संबन्धी वैदिक भावना से भी प्रभावित कहा जा सकता है। महादेवी रात्रिरूपसि के घन केश पाश पर मुग्ध होकर कहती हैं :—

"इन स्निग्ध लटों से छा दे तन
पुलकित अङ्कों में भर विशाल,
झुक सस्मित शीतल-चुम्बन से
अङ्कित कर इसका मृदुल भाल।
दुलरा दे ना बहला देना
यह तेरा शिशु जग है उदास।[8]

इसी भावना का विकास करते हुए राजेश्वर गुरु ने प्रकृति को एक अज्ञात शक्ति और माँ

---

[1]शांतिप्रिय द्विवेदी—हिमानी—पृ० १५, ४.
[2]सुमित्रानंदन पंत—युगांत छाया, पृ० ३७, ३४.
[3]नगेन्द्र—वनबाला—ऊषा, पृ० ८, ६.
[4]वागीश्वर विद्यालंकार—नीरांजना : निर्झर, पृ० ४९—५०.
[5]गुरुभक्तसिंह कुसुम—कुञ्ज : नदी, पृ० ७.
[6]वही, : लाजवती. पृ० १०.
[7]वही : ओस, पृ० २,२.
[8]नरेन्द्र शर्मा—कर्णफूल : स्वर्णमृत, पृ० १६—१७.
[9]सांध्यगीत(?)—ारजा, पृ० २३ ११.

शिला खंड पर बैठी वह नीलांचल मृदु लहराया था,
विकसित असित सुवासित उड़ते उसके—
कुंचित कच गोरे कपोल छू छू कर
लिपट उरोजों से भी वे जाते,
थपकी देकर बड़े प्यार से इठलाते थे,
शिशिर बिंदु रस सिंधु बहाता सुंदर,
अंगना अंग पर गगनांगन से गिर कर।
वह कविता ही थी और साज था उसका बस शृंगार!
+ + +
भरा हुआ था हृदय प्यार से उसका
उस कविता का,
अंग अंग से उठीं तरंगें उसके।[1]

दूसरे स्थान पर "निराला" प्रेयसी में कविता का सामंजस्य करते हुए कहते है :—

"मेरे इस जीवन की तू सरस साधना कविता,
मेरे तरु की है तू कुसुमित प्रिये कल्पना लतिका,
मधुमय मेरे जीवन की प्रिय है तू कमल कामिनी,
मेरे कुंज कुटीर द्वार की कोमल चरण गामिनी।"[2]

और उसकी स्वतंत्र गति के लिए विकल हैं :—

"प्रिये छोड़ कर बंधनमय छंदों की छोटी राह।
गजगामिनी; वह पथ तेरा संकीर्ण, कंटकाकीर्ण
कैसे होगी उससे पार"[3]

कविता में नारी का रूप ही नहीं वरन् प्रेरणा शक्ति भी कवि ने पाई है :—

"संकेत मात्र से तेरे हैं प्रलय ठाठ ठन जाते,
ललकार तुम्हारी सुनकर कायर नाहर बन जाते।[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक कवियों ने विविध चेतन और अचेतन वस्तुओं पर नारीत्व का आरोप किया है। यह आरोप करते समय वे उन्हीं भावनाओं से प्रेरित हैं जो नारी के बाह्य और आंतरिक सौंदर्य के संबंध में उनकी रही है, जिन्हें हम पीछे विस्तार से देख चुके हैं। जो सौंदर्यमयी, अनुरागमयी और गौरवमयी भावना नारी के संबंध में हम देख चुके हैं, वही हमें इन नारी रूपिणी वस्तुओं में भी मिलती है। बहुत कम स्थल ऐसे होंगे जहां हम अपने मूल सिद्धांतों का आरोप इस प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति पर न कर सकें। फलतः कवियों की यह आरोप प्रवृत्ति उनकी नारी भावना की अभिव्यक्ति में एक अवलम्ब हो जाती है।

[1]सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" परिमल, पृ० १०५-०६.
[2]अनामिका : प्रिया से, पृ० ४२.
[3]वही, : प्रगल्भ प्रेम, पृ० ३४.
[4]रामेश्वरी देवी "चकोरी"—किंजल्क : कविते, पृ० २६.

अध्याय ६

परिवर्तन युग में मध्ययुगीय नारी-भावना की परंपरा

भक्तिकाल और रीतिकाल वैराग्यमूलक और शृंगारमूलक नारी भावना परिवर्तन युग में भी अपने सूत्र को, यद्यपि अत्यन्त सूक्ष्मरूप में, बनाये रही। व्रजभाषा तथा व्रजभाषा साहित्य के प्रेमी शास्त्रीय दृष्टिकोण से शृंगार को रसराज के रूप में देखने वाले, तथा नायिका भेद के समर्थक आधुनिक कवि रीतिकालीन भावना के पोषक रहे, किन्तु, क्योंकि देश की परिस्थितियाँ मध्ययुग की-सी नहीं रही हैं और कवियों की विचारधारा में भी परिवर्तन हो रहा है इसलिए, रीतिकालीन नारी भावना को लेकर भी कवियों ने कुछ नवीन दृष्टिकोण का विकास किया। इस युगांतरकारी परिवर्तन का अधिकांश श्रेय अयोध्यासिंह उपाध्याय को है जिन्होंने 'रसकलश' की रचना करते हुए नायिका-भेद संबंधी नवीन विचारधारा की अभिव्यक्ति की।

वस्तुतः परिवर्तन-युग में रीतिकालीन नारी भावना के अपनाये जाने के चार कारण हैं :—

१. इस वर्ग के कवि नारी को सुकुमारी के रूप में देखते हैं। उसका अबला रूप तथा मधुर मूर्ति ही कवि के सम्मुख आती है।[1] हम देख चुके हैं कि हरिऔध आधुनिक सबला से विरक्त हैं। इससे स्पष्ट है कि कवि 'पिकबैनी' और 'मृगनैनी' की ओर आकर्षित हैं। सौंदर्य के संबंध में उनका कथन है :—

---

[1]चंद्रमा के पीछे पीछे चांदनी को चलते पाया।

× × ×

दौड़ती जा करके नदियां समुद्रों में मिल जाती हैं।

× × ×

पादपों के सुंदर तन में बेलियां लिपटी जाती हैं,
साथ जलते दीपक का कर बत्तियां जलती रहती हैं;
सितम मतवाले भौंरों का तितलियां सहती रहती हैं।
मोतियों की माला अपनी मोर को रजनी देती है.
अरुण का मुख देखे ऊषा मांग अपनी भर लेती है,
देख कुसुमाकर को कोयल गीत है बड़े मधुर गाती,
मानना उजियाले का कर भाग जाती है अंधियाली.
फूल को हंसता अवलोके कब नहीं कलियां खिल जाती.
कलेजा उनका तर करने ओस की बूंदें हैं आती।

(हरिऔध—कल्पलता : नर नारी, पृ० १८-२०)

"रूप रमणी का रमणीय, लोक मोहकता का है सार,
है प्रकृति भाल रुचिर सिंदूर काम कामुकता का आधार।"[1]

और सौन्दर्य का आदर्श यह है :—

"दीप के परे से गात-मंजुता मलिन होत,
देखे अंग दलकहिं दल सतदल के।
कोमल कमल से जहूँ पे न लहहि कल,
भारी लगें बसन अमोल मलमल के।
'हरिऔध' हरा पहिराय बपु-कंप होत,
पायन में गड़हिं बिछौने मखमल के।
कुसुम छुए ते रंग हाथ को मैलो होत,
छिपत छपाकर छबीली छबि छलके।"[3]

इस चित्र की भावना कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है, किन्तु इतना निश्चित है कि स्त्री की स्वतंत्रता और समानता के विरोधक इस वर्ग के कवि नारी को 'सुकोमल शक्ति' के रूप में ही देखते हैं।

२. इन कवियों की शृंगार-मूल नारी भावना का दूसरा कारण यह है कि इन्होंने शृंगाररस को अत्यंत पूत और व्यापक माना है। भरतमुनि तथा साहित्यदर्पणकार की शृंगार संबंधी परिभाषायें[4] मानते हुए लिखा है "जो कुछ संसार में दर्शनीय अर्थात् सुन्दर है, साथ ही जो पवित्र, उत्तम और उज्ज्वल है, उसका जिसमें सरस एवं हृदयग्राही वर्णन, विकास अथवा प्रदर्शन होगा, वह शृंगाररस कहला सकेगा"।[5] आगे शृंगाररस की विवेचना करते हुए उन्होंने रति को महिमामयी, विश्वव्यापिनी अनंत गुणावलम्बिनी बताया है और संस्कृत के किसी विद्वान का यह कथन भी उद्धृत किया है :—

"सर्वे रसाश्च भावाश्च तरंगा इव वारिधौ।
उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति यत्र स प्रेमसंज्ञकः।"

साथ ही काम को 'संसार के सृजन का हेतु" मानकर भी रतिभाव की उज्ज्वलता प्रतिपादित की गई है। धर्मशास्त्रों से पुत्र की अनिवार्यता और महत्व संबंधी उद्धरण देते हुए हरिऔध स्त्री-पुरुष की सम्मिलन इच्छा को एक कर्तव्य पालन, मंगलमय अनुल्लंघनीय

[1]देखिए—पीछे "समाज सुधार की भावना" पृ० १७९-१८२.

[2]अयोध्यासिंह उपाध्याय—कल्पलता : सौंदर्य, पृ० ६२.

[3]रस-कलस, पृ० ६६ देखिए, गोपालशरण सिंह—माधवी : अद्भुत छवि, पृ० १६६-१६७ रूपराशि पृ० १०१.

[4]"यत्किंचिल्लोके शुचि मध्यमुज्ज्वलं दर्शनीयं वातच्छृंगारेणोपमीयते" (नाट्यशास्त्र)
शृंगं हि मन्मथोद्भेदस्तदागमन हेतुकः।
उत्तमप्रकृति प्रायो रसः शृंगार इष्यते" (साहित्यदर्पण)

[5]रसकलस—भूमिका, पृ० ७३-७४.

विधान के रूप में देखते हैं।[1]

३. इस भावना का तृतीय स्तंभ है मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण। गूढ़ातिगूढ़ भावधाराओं, मानवीय प्रवृत्तियों के विकास के प्रकाशन के दृष्टिकोण से ये कवि नायिकाभेद-साहित्य को बहुमूल्य मानते हैं। नारी का प्रेम पात्र के हित आत्मत्याग; पति प्रेम पाकर गर्व, पूर्वानुराग की अवस्था में वैकल्य, पति के परस्त्री-गमन पर क्षोभ, मिलन का लज्जानत उत्साह और विरह की दग्ध पीड़ा, यह सब नारी की सत्य रूप रेखायें बनाते हैं। साथ ही नारी में परकीया भाव की भी समष्टि है। इसकी सत्यता और मूल्य बताते हुए हरिऔध लिखते हैं 'प्रेम बड़ा रहस्यमय है। प्रेम-परायण हृदय समाज का बंधन क्या, किसी बंधन को नहीं मानता ऐसे उदाहरण नित्य हमारी आँखों के सामने आते रहते हैं। हम आँखें छिपा सकते हैं, किन्तु घटना हुए बिना नहीं रहती। हृदय से हृदय का सम्मिलन स्वाभाविक है, सत्य है, विधि का अनुलंघनीय विधान है।......यदि परकीया एक सत्य व्यापार है, और समाज में चिरकाल से गृहीत है, तो उसका उल्लेख गर्हित क्यों।'[2] आगे वे लिखते हैं संसार की जितनी प्रेम कहानियां हैं, उनमें से अधिकांश का आधार परकीया है। चाहे वे भगवान् श्रीकृष्ण अथवा श्रीमती राधिका संबंधी कथाएँ हों, चाहे लैला मजनूँ, चाहे शीरीं फरहाद आदि की दास्तानें।......कारण इसका यह है कि इस प्रकार की रचनाओं में बड़ी हृदयग्राहिता होती है।......यदि परकीया में वास्तविकता न होती, उसकी बातें सत्य न होकर कल्पित होतीं तो उसमें इतनी स्वाभाविकता न मिलती।'[3] परकीया की ही भांति, समाज का एक अंग होने के कारण गणिका को भी देखा गया है।

४. आधुनिक कवि का सबसे अधिक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण सुधारात्मक है। नायिका भेद में वह समाज के लिए एक संदेश, एक पथ प्रदर्शक ज्योतिस्तंभ पाता है। प्रथमतः नायिका-भेद नारी-मनोविज्ञान का प्रकाशक होता है। स्त्री और पुरुषों के स्वभाव में स्वभाव सम्बन्धी बहुत बड़ी-बड़ी भिन्नताएँ हैं। इसीलिए समाज की सुव्यवस्था के लिए एक को दूसरे की रुचि और प्रकृति का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है। इसी प्रकार पुरुष का पुरुष के और स्त्री का स्त्री के भावों एवं विचारों से अभिज्ञ होना वांछनीय है। जहां प्रकृति नहीं मिलती, स्वभाव का पूरा परिज्ञान नहीं होता, वहां पद पद पर पतन होता है, और सफलता दूर भागती है। किन्तु जहां मनोविज्ञान पर दृष्टि रखकर कार्य संचालन किया जाता है, वहां स्खलन कदाचित् ही होता है, क्योंकि रुचि देखकर और स्वभाव पहचान कर कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने से असफलता प्रायः सामने आती ही नहीं।[4] "यह देखा जाता है कि अनेक पुरुष स्त्रियों द्वारा इसलिए आदर नहीं पाते, वरन् वंचित और तिरस्कृत होते हैं कि उनमें रसज्ञता नहीं होती और वे उन कलाओं के ज्ञाता नहीं होते, जिनसे ललनाकुल

[1] रसकलस—भूमिका, पृ० ७८—८१.

[2] वही, पृ० १४५—१४६.

[3] वही, पृ० १४९—१५०.

[4] वही, पृ० १०८.

को अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है। इसी प्रकार कितनी स्त्रियों को इसलिए दुःख भोगना और पति के प्यार को गँवाना पड़ता है कि इनमें न तो भाव होते हैं जो मनों को मुट्ठी में करते हैं, और न वे मनोहर ढंग और न वे मधुर व्यवहार जो हृदय के सुकुमार भावों पर अधिकार करते और नीरस मानसों पर भी रसधारा बहाते हैं। नायिका भेद के ग्रंथ इस बातों का भी प्रतिकार करते हैं और बड़ी सरलता से वे भाग बतलाते हैं, जिन पर चलकर स्त्री-पुरुष दोनों अपने जीवन को सुखमय बना सकते है।"[1] समाज की सुव्यवस्था का साधक बनकर इस प्रकार नायिका भेद आता है। द्वितीय प्रकार से इस क्षेत्र में उसकी सहायता और मूल्य और भी अधिक है। वह समाज के सम्मुख नारी के विविध प्रकारों को रखकर उसे दुष्ट नारियों से सावधान करता है। "दुनिया बहुरंगी है, जो उसके सब रंगों को पहचानता है उसी के मुख की लाली रह सकती है, वह चाहे स्त्री हो चाहे पुरुष। जहां सती साध्वी कुल ललनाएँ हैं, वहां प्रवंचनामयी वारवधूटियां भी हैं। जहां कोमल स्वभावा सरल बालिकाए हैं, वहीं कटुवादिनी गर्विणी मानवती नायिकाएँ भी हैं। जहां पति की परछाहीं से भीत होने वाली मुग्धाएँ हैं, वहीं अनेक कलाकुशला प्रौढ़ाएँ भी हैं। कहीं स्वकीया हैं, कहीं परकीया, कहीं सामान्या। पुरुष इन सब का जब तक यथार्थ ज्ञान न रखेगा, तब तक उसकी संसार यात्रा का निर्वाह सफलता पूर्वक कैसे होगा।"[2] गणिका का वर्णन नायिका भेद में पाया जाता है। हरिऔध जी का कथन है कि इस प्रकार के वर्णनों में गणिका की प्रियवादिता में आच्छादित असत्यता, अस्थिरता, कठोरता आदि विशेषतायें व्यक्त होती हैं। "शरीर में कुछ ऐसे अंग हैं, जिनका नाम लेना भी अश्लीलता है, फिर भी वे शरीर में हैं और उपयोगी हैं। इसी प्रकार वेश्यायें कितनी ही कुत्सित क्यों न हों पर वे समाज का एक अंग हैं और उनका भी उपयोग है। इसीलिए साहित्य में उनकी चर्चा है। किन्तु यह स्मरण रहे कि जहां उनका वर्णन है, वहां उनकी कुत्सा ही की गई है।........कामुकों की आंखें खोलने और लंपटों को सावधान करने की भी पर्याप्त सामग्री उनमें पाई जाती है। जब एक वेश्या के मुख से कोई कवि कहलाता है 'नाथ हमें तुमें अंतर पारत हार उतारि इतै धरि राखौं" उस समय जहां वह कवि कला का कमाल दिखलाता है, एक स्वार्थमय मानस का विचित्र चित्र खींचता है, वहीं यह भी बतलाता है कि किस प्रकार गणिकाओं की मधुरतम बातों में प्रतारणा छिपी रहती है, और कैसे वह प्रेम का कपट जाल फैला कर कामुकों को फांस लेती हैं। इस पद्य में विवेकियों के लिए सुन्दर शिक्षा है और असावधानों के लिए सावधानता का मंत्र है।"[3] अन्यत्र कवि—"क्यों हूँ न याम जनात है जात रिझावत ऐसी रहैं रतिआन में।
देखत ही मन टूटि परै कछु राखहिं ऐसी छटा छटिआन में।
पै 'हरिऔध' करो कितनो हूँ बिलम्ब पै होत नहीं पतिआन में।
बीस गुनी मिसिरी ते मिठास है यार बिलासिनी की बतिआन में।"

[1]वही, पृ० १३६.

[2]वही, पृ० १२६.

[3]वही, पृ० १५२.

—पद्य को लेकर लिखता है "क्या इस पद्य के पढ़ने से यह नहीं ज्ञात होता कि प्रेमिकों का कितना पतन हो जाता है। उनके पतन का चित्र ही तो इस पद्य के पद पद में अंकित है, उन की कामुकता का ही वर्णन तो इसमें है। फिर उनको कौन निंदनीय न समझेगा, ऐसे ऐसे पुरुषों की ओर दृष्टि फेंककर सर्वसाधारण को सावधान करना ही तो इस पद्य का उद्देश्य है, फिर वह उपयोगी क्यों नहीं। यदि कहा जावे किसी कुलांगना के हाथ में वह पद्य नहीं दिया जा सकता, तो मैं कहूँगा यदि उनको अपने पति पुत्र को पतन से बचाने का अधिकार प्राप्त है, यदि उनको इस विषय में सावधान रखना है, तो उनके सामने इस पद्य को अवश्य रखना चाहिए, जिससे उनकी आँखें खुली रहें, और वे अपने पति पुत्र की रक्षा इस कुमार्ग से कर सकें। इस पद्य में जितना प्रलोभन है, उतनी ही उसमें सतर्कीकरण की शिक्षा है, बुराई का यथार्थ ज्ञान होने पर ही उससे पूरी तौर पर कोई बचाया जा सकता है।"[1] "राका निशा का यथार्थ ज्ञान तमोमयी अमा कराती है, और अरुण राग रंजित ऊषा की विशेषताओं को कालिमामयी सन्ध्या ही बतलाती है। काक और पिक में क्या अंतर है, फूल और कांटों में क्या भेद है, सुधा क्यों वांछनीय है और गरल क्यों निंदनीय, यह मिलान करने पर ही जाना जा सकता है जैसे पुरुष जीवन को परकीया कलंकित करती है और गणिका नष्ट।"[2] इस भावना के विपरीत रीतिकालीन कवि का दृष्टिकोण परकीया और गणिका में स्थूल सौंदर्य मात्र का संग्रह करना था, उनसे शिक्षा ग्रहण करना नहीं। कृष्णबिहारी मिश्र 'मतिराम ग्रंथावली" की भूमिका में इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—"मतिराम कवि के काव्य में परकीया और गणिका के अनेक वर्णनों में खासा सौंदर्य समाविष्ट है। पाठक-गण से प्रार्थना है कि वे मतिराम के ऐसे वर्णनों को पढ़ते समय उन्हें नैतिक उपदेशक की दृष्टि से न देखें, वरन् एक ऐसे कवि की दृष्टि से देखें जिसका काम सभी स्थलों से सौंदर्य संकलन करना है।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकालीन परम्परा का पालन करने वाले आधुनिक कविगण परम्परा पालन करते हुए भी अपनी कुछ विशेषताएँ रखते हैं जो उन्हें संक्रान्त युग तक चली आनेवाली धारा से छिन्न कर देती है। इस वर्ग के आधुनिक कवि वास्तव में रीतिकालीन परम्परा का पालन मात्र नहीं करते, वरन् संस्कृत काव्य में शास्त्र का वास्तविक और सच्चा अनुसरण करने में प्रवृत्त हैं। मध्ययुग में विलासिता के कारण शृंगारिक काव्य की रचना हुई, कवियों ने तथा राजाओं ने निज मनस्तृप्ति के लिए काव्यशास्त्र की ओट ले ली थी, और इस प्रकार की काव्य-रचना नायिका के अंग प्रत्यंग वर्णन के मुख्य दृष्टिकोण से सौंदर्य चित्रण परम्परा मुक्तरूप से २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ तक चलती रही। किन्तु आधुनिक समाज, जिसकी आर्थिक दशा हीन है, देश जो स्वतंत्रता संग्राम में प्रवृत्त है, तथा आंदोलनों, जो देश की राजनैतिक तथा सामाजिक दशा बदल

---

[1] वही, पृ० १२५.

[2] वही, पृ० १२७—१२६.

[3] मतिराम ग्रंथावली : भूमिका, पृ० ११५.

"यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह नारी के अंदर,
वासना वर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर ।"[1]

तो उस 'वैषम्य' को दृष्टि में रख कर जो 'नारी' का विकृत रूप है, जो वास्तविक नहीं, नश्वर है। कवि इससे पूर्व ही कह चुका है :—

"यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिखराती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल वर।"[2]

इस प्रकार इस युग में मध्ययुग की नारी भावना क्षीण रूप में रही। अधिकतर उसकी मूल भावना में परिवर्तन हो गया। प्रायः प्राचीन ही भावना को आधुनिक कवि ने नए ढंग से उपस्थित किया। कवि का ध्यान अपने युग की आवश्यकता की ओर विशेष रूप से रहा।

———

[1] सुमित्रानंदन पंत—ग्राम्या : स्त्री, पृ० ८२.
[2] वही।

अध्याय १०

प्रगति युग (१९३७-१९४५)

'३० के कुछ वर्ष बीतने पर हिन्दी काव्यान्तर्गत भाव धाराओं में पुनः दिशापरिवर्तन हुआ, और कवियों की नारी भावना ने भी करवट ली। इस नव विकास का मूल कारण पूर्णतः यूरोप है जिसने मार्क्स, फ्रायड, एडलर, युंग, डार्विन, बर्टरंडरसैल, हैवलाक एलिस एमिल जोला, मोपांसां, बर्नार्ड शा, डी० एच० लारेंस, इब्सन आदि के विचारों को भारत की नई पीढ़ी के सामने रखा।

आर्थिक और सामाजिक कारणों से वर्तमान कालीन भारतीय नवयुवक में रूढ़ियों और परंपराओं के प्रति एक विद्रोह का भाव है जो गत युग में वर्तमान रहता हुआ भी कुछ दबा सा रहा था; दूसरे शब्दों में गत युग के कवि में उस साहस और अग्नि की कमी थी, जो प्रगतियुग के कवि में है। इस कवि को यों तो सम्यक् रूप से उन सभी विचार-धाराओं ने आकर्षित किया जो उन रूढ़िगत सांस्कृतिक तथा नैतिक परंपराओं जो व्यक्ति के मुक्त विकास में बाधक रहीं हैं, के विरुद्ध थीं, किन्तु विशेष रूप से समाजवाद तथा मनोविश्लेषण विज्ञान ने इस युग के कवि को प्रभावित किया।

समाजवाद का सम्बन्ध विशेष रूप से कार्ल मार्क्स (१८४२-१८८४) से है जिसने वैज्ञानिक और क्रांतिकारी रीति से वर्गसंघर्ष का विवेचन किया। कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रभाव विस्तृत हुआ, किन्तु अत्यधिक व्यापकता उसने गत महायुद्ध (१९१४-१८) के बाद प्राप्त की जब सभी देशों में अभाव का साम्राज्य था, तथा रूस में प्रसिद्ध राज्यक्रान्ति हुई जिसके बाद सोवियट यूनियन की स्थापना हुई। सन् १९२७ में भारतीय कम्युनिस्ट दल का निर्माण हुआ जो मार्क्सवादी सिद्धान्तों का अनुयायी था और अपनी नीति को रूसी संकेतों पर निर्धारित करता था। १९३४ में कांग्रेस अंदर भी एक समाजवादी दल बन गया। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी ने विशेष विकास द्वितीय महायुद्धकाल (१९३९-४६) में पाया जब कांग्रेस गैर कानूनी कह दी गई थी, किन्तु यह पार्टी कानूनी थी।

प्रगति युग के अनेक हिन्दी कवि तथा लेखक उक्त पार्टी से संबंधित हैं।

समाजवाद का ध्येय शोषण का अंत करना है। मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी समाज-व्यवस्था में दो वर्ग हैं—एक शोषक और दूसरा शोषित। शोषित वर्ग में, उन मजदूरों और किसानों के साथ जो नित्य मिल मालिकों और जमींदारों द्वारा पीसे जाते हैं, नारी भी आ जाती है जो पुरुष की पाशविकता से दलित है। नारी पुरुष की वैयक्तिक सम्पत्ति हो गई है और अर्थतः पुरुष के अधीन है। व्यक्तिगत सम्पत्ति के आधार पर निर्मित समाज ने स्त्री के व्यवहार तथा आचरण के विषय में कठोर नियम बनाये हैं और पतिव्रत धर्म को उसके ऊपर लादा है। पूंजीवाद के कारण स्त्रियों की दशा शोचनीय है। व्यक्ति की संपत्ति और लिप्सा का केन्द्र बनकर उसने अपना व्यक्तित्व खो दिया है। वह या तो पुरुष

के आधिपत्य में रह कर उसका वंश चलाने, उसके उपयोग भोग में आने की वस्तु रही है या फिर आर्थिक संकट और बेकारी के शिकंजों में निचोड़े जाते समाज के तंग होते हुए दायरे से अपनी शारीरिक निर्बलता के समाज में स्वतंत्र जीविका का स्थान न पाकर केवल पुरुष के शिकार की वस्तु बन गई है।

मार्क्स के विचार से स्त्रियों की यह दशा न तो स्त्रियों के विकास के लिए न समाज की उन्नति के लिए कल्याणकारी है। स्त्रियाँ भी पुरुषों की ही तरह मनुष्य हैं और उनके कंधे पर भी समाज का उत्तरदायित्व उतना ही है जितना कि पुरुषों के कंधे पर। जब तक स्त्री का शारीरिक और मानसिक विकास स्वतंत्र रूप से न होगा उसके द्वारा उत्पन्न सन्तान भी उन्नत न होगी। स्त्री को केवल उपयोग और भोग की वस्तु बनाकर रखना मनुष्य के जन्म के स्रोत को बिगाड़ना है। समाज के सुख और वृद्धि के लिए स्त्रियों के मानसिक और शारीरिक विकास तथा समाज में स्त्रियों के समान अधिकार होने के लिए उन्हें भी पैदावार के कार्य में सहयोग देने का समान अधिकार होना चाहिए। सन्तानोत्पत्ति स्त्री को मजबूर होकर या दूसरे की भोग लालसा का साधन बनकर न करनी पड़े, वह अपने आप को समाज का एक स्वतंत्र अंग समझकर अपनी इच्छा से संतान उत्पन्न करे। समाज का कर्तव्य है कि गर्भावस्था में स्त्री के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ प्रदान करे। समाजवादी समाज में स्त्री भी समाज का परिश्रम या पैदावार करनेवाला अंग होगी; उसे केवल पुरुष के भोग और रिझाव का साधन न समझा जायगा। मार्क्सवाद मनुष्य प्रकृति में आनन्द विनोद और आकर्षण की जगह भी स्वीकार करता है परन्तु उसमें पुरुष को प्रधान और स्त्री को केवल सामग्री बना देना उसे स्वीकार नहीं।

मार्क्सवाद स्त्री-पुरुष के संबंध को पुरुष की सम्पत्ति और धर्म के भय से जकड़ देने के पक्ष में नहीं है। वह स्त्री पुरुष के सबन्ध को स्त्री पुरुष की प्राकृतिक आवश्यकता का संबन्ध मानता है। इसके लिए वह दोनों में किसी के लिए भी एक दूसरे का दास बन जाना अवांछित मानता है। इसके साथ ही वह स्त्री पुरुष के सम्बन्ध में उच्छृङ्खलता भी उचित नहीं समझता। किसी स्त्री पुरुष का दूसरों के शारीरिक भोग के लिए अपने शरीर को किराये पर चढ़ाना वह अपराध समझता है। समाजवादी समाज में जीविका के साधन अपनी योग्यता और अवस्था के अनुसार सभी को प्राप्त होंगे, इसलिए जीविका के लिए व्यभिचार से धन कमाने की आवश्यकता हो नहीं सकती। संक्षेप में स्त्री, पुरुष और विवाह के सम्बन्ध में मार्क्सवाद समाज के शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के विचार से पूर्ण स्वतन्त्रता देता है परन्तु उच्छृङ्खलता और भोग को पेशा बना लेने और साथ में अपनी वासना के लिए दूसरे व्यक्तियों और समाज की जीवन व्यवस्था में अड़चन डालने को वह भयंकर अपराध समझता है। समाज में स्त्री पुरुष की समानता के लिए उचित परिवर्तन की आवश्यकता है।

स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध के अतिरिक्त मार्क्सवादी भौतिकवाद, निरीश्वरवाद तथा यथार्थवाद का उल्लेख करना अनुचित न होगा, जिसने नवयुगीय कवि के मस्तिष्क को प्रभावित करके परोक्ष रीति से नारी भावना पर भी प्रभाव डाला। भौतिक सत्ता मात्र में

विश्वास रखनेवाला मार्क्सवाद का उस काल्पनिक आदर्शवाद को ग्रहण नह कर सकता जो एक आस्तिक और अध्यात्मवादी की ही निधि हो सकती है। इसकी आदर्श कल्पना केवल समाजवाद की प्रतिष्ठा है और उसको लिए हुए यह पूँजीवादी समाज की (यथार्थ) दशा का निरीक्षण और आलोचना करता है।

इस युग के कवि को प्रभावित करने वाली दूसरी प्रबल विचारधारा थी मनोविश्लेषण विज्ञान की। इस विज्ञान के विकास का विशेष सम्बन्ध २० वीं शताब्दी से ही है। १९ वीं शताब्दी के अवसान काल में वियना के प्रो० सिगमंड फ्रायड के अन्वेषणों ने सर्वप्रथम मनोविश्लेषण को दर्शन क्षेत्र के बाहर विज्ञान का रूप प्रदान किया। इस विज्ञान के विकास के इतिहास में १९१० एक महत्वपूर्ण वर्ष है है, जब इंटरनेशनल साइकोएनालिटिकल एसोसियेशन की नींव पड़ी। काफी समय तक मनोविश्लेषण केवल एक विज्ञान ही रहा, किन्तु गत महायुद्ध (१९१४—१८) के पश्चात्, जब व्यक्ति का निज-संबन्धी कौतूहल बढ़ गया था, इस विज्ञान ने योरोप में एक व्यापक रूप धारण किया। १९२० में सिगमंड फ्रायड कृत इंट्रोडक्ट्री लेक्चर्स आन साइकोएनालिसिस और ए० जी० टांसले कृत दि न्यू साइकोलाजी एन्ड इट्स रिलेशन टु लाइफ ने संसार के सम्मुख व्यक्ति के आंतरिक रूप (जिससे वह अभी तक अपरिचित ही था) के संबन्ध में नई और विचित्र दीखनेवाली खोजों को रखा। फिर तो २० वीं शताब्दी के युवक के लिए फ्रायड, एडलर, युंग, रसैल आदि के सिद्धान्त विचार के केन्द्र हो गए।

गत १५, २० वर्षों में, सम्भवतः रूढ़िबद्ध समाज की नैतिक कठोरताओं से पीड़ित, भारतीय युवक ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत कठिनाइयों को लिए हुए फ्रायडादि के विश्लेषणों में बहुत आकर्षण पाया है।

मनोविश्लेषण की मूल भावना अचेतन (अनकांशस) है। पहले हम मनुष्य के केवल चेतन विचारों और व्यापारों को लेकर चलते थे, किन्तु उन चेतन विचारों और व्यापारों के नीचे अचेतन एक "शक्ति का स्रोत" है यह नहीं ज्ञात था। मानसिक द्वन्द्व के के समय जो भाव और प्रवृत्तियाँ नियामक (सेन्सर) के द्वारा रुद्ध कर दी जाती हैं वही अचेतन के कोष में संचित होकर अज्ञात रूप से शक्ति संग्रह करती हैं। दमन प्रायः उन्हीं प्रवृत्तियों और भावों का होता है जिनको मनुष्य सभ्यता, सदाचार और आदर्श के दृष्टिकोण से नीच समझता है। (इसका यही दृष्टिकोण नियामक कहलाता है)। किन्तु मनुष्य अपनी प्रवृत्तियों को दबा पाता है यह कहना मनोविश्लेषण की दृष्टि से मूर्खता होगी। दलित भाव भाव-स्वप्न आदि में अपना अस्तित्व सिद्ध करते हैं। आधुनिक मनोविश्लेषक अधिकांशतः उन्हीं दलित भावों और वृत्तियों की खोज में संलग्न हैं। फ्रायड का कहना है कि दलित भाव अधिकांशतः काम-सम्बन्धी और वैर-सम्बन्धी होते हैं, और इनमें भी अधिक प्राबल्य प्रथम का पाया जाता है। फ्रायड ने प्रायः सभी क्रियाओं का मूल काम वासना में माना है; (फ्रायड के शिष्य एडलर ने जीवन की मूल प्रेरक शक्ति प्रभुत्व कामना (सेल्फ एसर्शन) की प्रवृत्ति, फलतः क्षतिपूर्ति को माना है)। मनुष्य के मानसिक विकास का अनिवार्य सम्बन्ध काम शक्ति (लिबिडो) से जोड़ा गया है। इसका निषिद्ध ग्रन्थियों का

(काम्प्लेक्स) में विश्लेषण करते हुए फ्रायड ने साधारण (नार्मल) तथा सदाचारी (कहे जाने वाले) मनुष्य को असाधारण (एबनार्मल), यहाँ तक की विकृत (न्यूरोटिक), तथा दुराचारी मनुष्य के समकक्ष ला रखा है। यह अत्यन्त क्रान्तिकारी विचार था जिसकी सत्तर साल पहले कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

मनोविश्लेषण विज्ञान ने वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नारी की विशेषताओं (गुणावगुण) का अध्ययन किया है। फ्रायड ने निम्नलिखित विशेषतायें नारी में पाई हैं :—

१—लिंग ईर्ष्या : फलस्वरूप सामान्यतः ईर्ष्या और जलन तथा सामाजिक अन्याय की प्रवृत्ति।

२—पुरुष से अधिक मात्रा में आत्म-प्रेम (नार्सिसिज्म)।

३—सांस्कृतिक कार्यों के लिए दुर्बल प्रेरणा शक्ति तथा उनके उदात्तीकरण (सब्लिमेशन) की हीन सामर्थ्य।

४—सभ्यता के लिए सामान्यतः विरोध का भाव। इसका कारण इतना नारी का मानसिक विन्यास नहीं है जितना वह जैविक (बायलाजिकल) प्रयोजन जिसकी वह प्रतिनिधि है : 'नारी पारिवारिक तथा लैंगिक जीवन के हितों की प्रतिनिधि है। सभ्यता के विकास का कार्य अधिकाधिक पुरुष का ही कार्य क्षेत्र होता रहा है, यह कार्य उनके सम्मुख सदैव कठिनाइयों को उपस्थित करता रहता है, तथा नैसर्गिक प्रवृत्तियों के उदात्तीकरण के लिए मजबूर करता है, जिसको स्त्रियाँ सहज रूप से नहीं प्राप्त कर सकतीं। मनुष्य के समीप मानसिक क्रिया शक्ति का असीम कोष नहीं होता, इसलिए पुरुष को अपनी लिबिडो शक्ति महत्वपूर्ण कार्यों के लिए विभक्त करनी पड़ती है। सांस्कृतिक कार्यों के लिए जो शक्ति वह खर्च करता है उसे बहुत सीमा तक, स्त्रियों तथा लैंगिक जीवन से बचा लेता है। पुरुषों से उसका निरंतर संपर्क तथा उनसे सम्बन्धों पर निर्भरता, पुरुष को पति तथा पिता के रूप में अपने कर्तव्यों से भी दूर हटा ले जाते हैं। इस प्रकार स्त्री सभ्यता के अधिकारों के सम्मुख अपने को उपेक्षित पाकर उसके प्रति ईर्ष्यालु हो जाती है।[1]

फ्रायड के द्वारा उपस्थित किया गया नारी का चित्र गौरवपूर्ण नहीं कहा जा सकता। यह एक ऐसे व्यक्ति को उपस्थित करता है जो ईर्ष्यालु तथा वातोन्मादी है, जिसमें बौद्धिक रुचियों का अभाव है, और जो सांस्कृतिक उन्नति के प्रति शत्रुता का भाव रखता है।

फ्रायड ने स्त्री का प्रमुख आकर्षण केन्द्र गृहस्थी और काम-वासना को माना है। इस सिद्धान्त की पुष्टि करते हुए लुडविग ने नारी की एक मूल प्रेरणा शक्ति (प्राइमम मोबाइल) पर हमारा ध्यान आकर्षित किया है; इस मूल शक्ति के कारण नारी 'जीवन' की संरक्षक और पोषक हो जाती है, तथा 'जीवन' की वृद्धि में प्रमुख सहायक हो जाती है। नारी का मूल और महत्व इन्हीं दो कार्यों में है, अन्य विशेषतायें बहुत कम महत्व रखती हैं। इस दशा में यदि हम मान लें कि एक स्वस्थ स्त्री की प्रेरणा निरंतर

---

[1] सिगमंड फ्रायड—सिविलिजेशन एंड इट्स डिस्कंटेंट्स, ४ पृ० ७३

जीवन तथा उसकी वृद्धि की ओर है, तो हमें आशा रखनी चाहिए कि स्त्री में वे सब गुण मिलेंगे जो जीवों के संजीवन को निश्चित करते हैं, तथा वे सब दुर्गुण मिलेंगे जो 'जीवन' स्वयं उक्त लक्ष्य की पूर्ति में संलग्न होकर व्यक्त करता है।

"मूल प्रेरणा शक्ति" पूर्णतः अनैतिक है। इस प्रकार, क्योंकि प्रवृत्ति की विशेषताएँ नैतिक नहीं अनैतिक होती हैं, इसलिए स्त्री की आंतरिक विशेषतायें भी नैतिक न होकर अनैतिक, सामाजिक न होकर असामाजिक तथा संयमित न होकर अनियमित हैं।[1]

नारी की विभूतियों संबंधी धारणा (जिसे हम अपने परिवर्तन युग के काव्य में विस्तार से देख चुके हैं।) की आलोचना करता हुआ यह लेखक कहता है "आज स्त्री के गुण इस प्रकार गिनाये जाते हैं :—१ निस्वार्थता, २ आत्म-त्याग की शक्ति, ३ समाज पर सत् प्रभाव, ४ सहज बुद्धि तथा, ५ मानवतावादी प्रवृत्ति। किन्तु ये सब काल्पनिक विशेषतायें हैं तथा मनुष्य की भावुकता की उपज हैं। कोई स्वस्थ स्त्री इन गुणों को धारण करने का बहाना भर कर सकती है।"[2] लुडविस् "मूल प्रेरणा शक्ति" के प्रकाश में नारी के गुणावगुणों की परीक्षा करता हुआ छः प्रमुख अवगुण उसमें पाता है :—१ द्वित्व तथा सत्य के प्रति उपेक्षा भाव, २ सद्रुचि का अभाव, ३ गंवारपन तथा अशिष्टता, ४ अधिकार प्रेम ५ अहंकार तथा ६ काम-वासना की प्रबलता।

इस प्रकार की विचार धारा के साथ ही नारी संबंधी एक और भी विचार धारा इस युग में प्रचलित है। फ्रायड तथा विनिनगर ने स्त्री का रुचि केन्द्र एक मात्र काम वासना को तो माना ही है, किन्तु मनोवैज्ञानिकों ने स्त्री को निष्क्रिय तथा पुरुष को सक्रिय माना है जिसके अनुसार "Man makes love and woman is made love to एक विचारक वर्ग, जिसका प्रतिनिधित्व बर्नार्डशा करते हैं, इस सिद्धान्त को नहीं मानता। शा के अनुसार प्रेम के क्षेत्र में प्रथम पग स्त्री ही बढ़ाती है; स्त्री पुरुष का शिकार करती है। पुरुष जब तक व्यवसायिक-विवाह-आखेटक न बन जाय प्रेमी न होगा। स्त्री अहेरिन है पुरुष अहेर तथा आखेटक स्त्री को पुरुष की आवश्यकता प्रकृति की प्रेरणाओं की पूर्ति के लिये है, यदि पुरुष विद्रोह करता है तो वह अपने परंपरागत प्रेम और आज्ञाकारिता के अभिनय को त्याग कर प्राकृतिक रीति से, व्यक्तिगत आवश्यकताओं से बहुत दूर किसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए, इस पर अधिकार स्थापित करती है।[3] बर्नार्डशा स्त्री की तुलना उस मकड़ी से करता है जो प्रारंभ में तो चुपचाप मक्खी (खाद्य) की प्रतीक्षा करती है किन्तु एक बार पकड़ में आने पर यदि मक्खी भागने का प्रयत्न करती है तो वह निष्क्रियता के अभिनय को तत्परता से त्याग कर शिकार को जालों में लपेट कर असहाय कर देती है।[4] शा ने नारी और चीते को एक ही श्रेणी में रखा है। नारी का पुरुष के प्रति प्रेम वैसा

---

[1] ए. एम लुडविस—वुमन, ए विंडीकेशन : १० पृ० २०१-२०७

[2] (वही, १० पृ० २०८)

[3] (बर्नार्डशा —प्रिफेसेज, ० पृ० १५६)

[4] (वही)

अध्याय ११

प्रगति युग की समाजवादी तथा क्रांतिवादी नारी-भावनायें

१. समाजवादी नारी-भावना

समाजवादी दृष्टिकोण से नारी का दर्शन इस युग की सबसे बड़ी विशेषता है। इस दृष्टिकोण का मूलाधार तो सुधार भावना ही है, किन्तु यह सुधार भावना गतयुग की सुधार भावना से कई पग आगे बढ़ी हुई है।

समाजवादी दृष्टिकोण से नारी है 'मानवी'। इस भावना के अग्रदूत सुमित्रानंदन पंत हैं जो छायावादी कवियों में भी अग्रगण्य थे। 'युगान्त' के साथ एक युग का अंत करके 'ग्राम्या' में वह घोषणा करते हैं :—

"नारी की सुन्दरता पर मैं होता नहीं विमोहित,
शोभा का ऐश्वर्य मुझे करता अवश्य आनंदित।
जब आभादेही नारी आह्लाद प्रेम कर वर्षण
मधुर मानवी की महिमा से भू को करती पावन।"[1]

गत युगीय कवि की रूपोपासना वर्तमान कवि के व्यंग का लक्ष्य है।[2] नरेन्द्र शर्मा जैसे स्वर्गीरोमांस के कवि भी अपनी दिशा में परिवर्तन सूचित करते हैं :-

"बाहुओं के प्रतनु दो पतवार अब मैं छोड़ता हूँ,
छोड़ता हूं तट तरी मझधार अब मैं छोड़ता हूँ।
आज मैं मुँह मोड़ता हूं प्रेम की अलकापुरी से,
केश श्वासों की सुरभि दृग देश श्यामल छोड़ता हूँ।
कामिनी की कामना ? वह कर चुकी है पार मंजिल !
बहुत ललचाये रही मन कांचना की ज्योति झिलमिल !
स्वप्न की साम्राज्ञी खोई, दिवा नव रूप जागी,
नया मनहर रूप निखरा आ रहा अरुणाभ सा खिल।

---

[1]"कला के प्रति" पृ० ८१.

[2]केशराशि, मुखचंद्र, पयोधर, कटि,सबका रस पान करो बस।
मिटने वालों की बस्ती में अपने पर अभिमान करो बस।"
(सदानंद वर्मा—अर्घ्यदान, पृ० ३९.)

पौ फटी, फटती यवनिका मोह माया यामिनी की,
फटी मेरी राह मन से हटी मूरत कामिनी की।[1]

इस नव प्रभात में कवि जानता है कि नारी भोग की वस्तु नहीं है। उसके रूप का अनेक भांति से वर्णन, प्रेयसी रूप में उसकी कल्पना, उसे मधु-कुंट आदि कहना नारी का निरादर करना है।[2]

पीछे कहा जा चुका है कि समाजवादी दृष्टिकोण से नारी शोषिता है। युग-युग से वह लैंगिक शोषण और रूप शोषण का शिकार रही है। पुरुष ने उसका उपयोग कामतृप्ति के साधन के रूप में किया है। उसका व्यक्तित्व नष्ट कर दिया गया है और उसके अधिकारों की उपेक्षा की गई है। वह मूक बनकर मानव की दानवी लीला को देखती और सहन करती है। उसके प्राणों की करुणा अपनी विवशता की ओर कातर दृष्टि से देखती है। कवि अंचल इस चिर शोषिता को जमींदार और मिल मालिक के स्वार्थमय अत्याचारों के नीचे पिसते हुए किसान और मजदूर के समकक्ष रख कर ही यह तीसरा चित्र खींचते हैं[3]। इस चित्र की भयंकरता से उत्पीड़ित होकर अंचल साक्षात् दानव स्वरूप कराल भयंकर वासना के पुतले पुरुष के साथ वर्तमान नारी को देखने में पुनः व्यस्त हो जाते हैं। कवियों ने प्रायः नारी की कल्पना विश्व नियंता की स्वप्न संगिनी चिर अपूर्व शोभना अनिन्दित सुरभिमयी मूर्तिमती उषा-सी स्वप्नमयी निखिल जगत स्वर्ग की अनंत रागिनी आत्मज्वाल निर्झर के किरण प्रवाह के रूप में की है। किन्तु वर्तमान युग का यथार्थवादी कवि इस कल्पना स्वर्ग से संतोष नहीं पाता। वह चिल्ला

---

[1]नरेन्द्र शर्मा—एक नारी के प्रति : हंस, दिसंबर, १९४२.

[2]तुम नहीं हो भोग की वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे
भीख मधु की मांगता मन भी नहीं अलि ज्यों कुसुम से !
चाटुकारी से रिझाना हुई अवहेला तुम्हारी, सुनो नारी !
करूँ अभिनंदन तुम्हारा मौन अब बिन कहे तुमसे।
आज तक तुम फूल, तितली, गीति थीं वह छोड़ता हूँ।
प्रीति, कवि कृत प्रेयसी की प्रीति थीं वह छोड़ता हूं।
विश्व मधु का कुंड था, मन तरी थे पतवार भुजद्वय।
सुनो नारी ! निरादर की रीति थी वह छोड़ता हूँ। (वही)

[3]एक खड़ा उल्लास लुटाता एक जमा करती निज पीड़ा।
गूंगी और भरी आंखों से देख रही मानव की क्रीड़ा॥
पशुता के कांटे सा वह, चीत्कार भरी चिर दोहित नारी।
पंख कटे जिसके प्राणों के मूक रुदन सदियों से जारी॥
पति की काम-तृप्ति की नाली बच्चे जनना जिसका संबल।
स्वाद बना निर्यातन जिसको क्रीत विवश चिर शोषित प्रतिपल॥
(रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—किरणवेला : तीन चित्र, पृ० १२५)

उठता है :—

"नहीं, नहीं, वह नहीं।
यह तो घृणा के सतत मूर्तिमान व्यंग-सी।
कर भी उपेक्षा कहाँ सकती
रूप और रक्त शोषण के अंध लालचों की
प्राण कहां इसके विरोध में
गुड़िया-सी निष्क्रिय विवेकहीन
सूखी सरिता-सी लुटी चिर विकृता।
एक एक शोकग्रस्त झांकती युगावधि ज्यों
एक एक शिशु के भयानक स्वरूप से।
× × ×
आदिम भयंकर महा निकृष्ट प्रश्न-सी
बर्बर शताब्दियों से चलती जो आ रही
उत्तर विहीन जो नारी है।[1]

शोषिता नारी का साक्षात स्वरूप कवि को उस ग्राम युवती में मिलता है जिसका रूप यौवन और मद दुखों से पिसकर असमय ही नष्ट हो जाता है।[2] उस कठोर परिस्थिति को भी कवि ने शोषण ही माना है जब पति के विदेश जाने पर नवयुवती वधू का रूप जमींदारों की भय की कथाओं को लेकर ही समाप्त हो जाता है :—

"कहीं पेट की आग बुझाने गए पिया तज इसकी नगरी
बीते कितने वर्ष इसे यों पथ पर अपनी रैन बिताते
और खुली आंखों में इसकी अब तो कोई स्वप्न न आते
उसकी भी आई थी आमों-सी बौराती प्रखर जवानी
किन्तु गई चुपचाप जमीदारों के भय की छोड़ कहानी।[3]"

---

[1]रामेश्वर शुक्ल 'अंचल"—किरणवेला : 'दानव', पृ० ६७-६९.

[2]रे दो दिन का उसका यौवन।
सपना छिन का रहता न स्मरण
दुःखों से पिस दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन
ढह जाता असमय यौवन धन।
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस खेला कुछ क्षण।
(सुमित्रानन्दन पन्त—ग्राम्या : ग्राम युवती, पृ० १९)
तथा देखिए—शिवमंगल सिंह "सुमन"—प्रलय सृजन : गुनिया का यौवन.

[3]अंचल—किरण वेला : शोषिता पृ० ४८.

रूप शोषण का सबसे भयंकर प्रमाण वेश्या है जो युग-युग से पुरुष की उद्दाम वासना की साक्षी रही है।[1] कवि उस मुजरा-घर का कटु चित्र खींचता है जहां 'जन्म जन्म की संगिनी, सहचरी जन्म जन्म की, रूप राशि गुण राशि नेह की राशि' नारी 'बुझते दीपक का सा मुखड़ा' 'और घायल कोयल की सी वाणी'[2] लिए हुए धनवानों की इच्छा पूर्ति करती है, जहाँ तबला भी तीखे स्वर में चिल्लाता है :—

"मेरी तालों पर पड़ते हैं पग नारी के।"[2]

और सारंगी ढीले तार कहते हैं :—

"हाय पुरुष करे नारी से क्या क्या आशा
आशा क्या क्या !"[2]

रोटी के मीठे राग की साधना इस नारी के प्रति कवि का सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण उसके स्वप्न में दिखाई पड़ता है :—

"पलकें मुँदीं अचानक मैंने देखा सपना
सपना जैसा पहले कभी न देखा सपना
मां की गोद, गोद में मैं था
सिसक सिसक रोता जाता था।

× × ×

देखीं विलपती हुई नारियाँ
सब की सब घुन लगी हुई पीढ़ी की ये पद दलित बेटियां।
सभी उर्वशी की वे बहनें,
मूर्तिमान हो उठी शीघ्र युग युग की पीड़ा
पीड़ित यह नारीत्व और इसकी यह प्रतिमा
"बनी आज मां मेरी
मुझे जन्म देने वाली नारी।"[2]

कवि नारी शोषण के विशद इतिहास की रेखायें खींचता हुआ स्त्री के भोलेपन और अबोधपन के विपरीत पुरुष की क्रूरता, वंचकता और कपट का मार्मिक चित्र उपस्थित करता है। पुरुष की एक स्मृति पर नारी अपना सब कुछ अर्पण करके अपने प्रिय में डूब जाती है। किन्तु उसका प्रेम उसका बंधन हो जाता है, उसका मधुर हास्य आंसुओं में बदलते देर नहीं लगती। पवित्र प्रेम नारी का विनाश करनेवाला हो जाता है, क्योंकि पुरुष उसका मूल्य नहीं आंकता; पुरुष तो शरीर के सौंदर्य का मूल्य आंकता है। ज्योंही रक्त के अभाव से शरीर का सौन्दर्य कम होता है त्योंही पुरुष का समस्त प्रेम काफूर के समान उड़ जाता है। पुरुषों की इस वासना ज्वाला में युग युग से नारी पतंग के समान

[1]उदयशंकर भट्ट—अमृत और विष : 'नर्तकी', पृ० ७९; तथा
रामेश्वर शुक्ल—मधूलिका : मान मरण की ओर, पृ० ५-७.
[2]देवेन्द्र सत्यार्थी—'नर्तकी', हंस, फरवरी मार्च, १९४५.

जलती रही है; बलिदान करके भी चुप रही है, प्रेम करके भी तृषित रही है। चंचल पुरुष शिष्टाचार आदि नहीं जानता। वह अपनी वासना पूर्ति में ही नारी के मूल्य की इति जानता है।[1] इस प्रकार जब पीड़ित और शोषित ही आधुनिक कवि के आकर्षण के केन्द्र हैं,[2] और जब प्राचीन तथा सांस्कृतिक आदर्शों के प्रति उसकी श्रद्धा बहुत ही कम रह गई है[3] तो उन पौराणिक कथानकों तथा नारी के सतीत्व, पतिव्रत आदि धर्मों को, जिनको गत युग के कवि ने भी आदर की दृष्टि से देखा था, के प्रति वर्तमान युग के कवि का दृष्टिकोण सर्वथा बदला हुआ है। वह नारायण, ब्रह्मा, पाराशर और याज्ञवल्क्य को स्वेच्छाचारी क्रूरपुरुष का प्रतिनिधि मानता है।[4] सीता आज आदर से अधिक दया की पात्री हैं।[5] धर्मशास्त्रों के अनुसार नीच, कुरूप क्रूर पति तक की भक्ति करने का जो नियम स्त्री के लिए पति धर्म और सतीत्व के नाम से बनाया गया है उसे आज का कवि गुलामी

---

[1] विश्वम्भरनाथ—'नारी', विशाल भारत, नवम्बर १९३७.

[2] आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोषित जन,
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव मुख हरता मन।
(सुमित्रानन्दन पंत—युगवाणी : मूल्यांकन, पृ० ३५)

[3] क. संस्कृति, कला सदाचारों से भव मानवता पीड़ित,
स्वर्ण पींजड़े में है बन्दी मानव आत्मा निश्चित।
(पंत—युगवाणी : मूल्यांकन, पृ० ३५)

ख. और उनका होगा क्या
संस्कृति और न्याय का जो ढोंग करते
पाप पुन्य मर्यादा शासन व्यवस्था के
नाम पर रचते प्रतिष्ठा की समीक्षा
शोषण से कायम कर नाजायज सत्ता।"
(अंचल—किरण वेला : दानव, पृ० ६१)

[4] नारायण को अभिज्ञान न था,
मर्यादा का कुछ ध्यान न था।
तुलसी कैसे आकृष्ट हुई
प्रेम से ही कैसे भ्रष्ट हुई
वाणी की करुणा और व्यथा
ब्रह्मा की कलुषित पाप कथा।
पाराशर याज्ञवल्क्य ज्ञानी,
कैसी की तुमने मनमानी।
(विश्वम्भर नाथ—'नारी' : विशाल भारत, नवंबर, १९३७)

[5] पात्री शोकांत नाटिका की
सीता अशोक वाटिका की। (वही)

और कैद मानता है :—

"लो खाना कपड़ा और गहना,
तुमको कैदी बन कर रहना।
हो जालिम, घातक क्रूर पती,
फिर भी सहना है मूक सती।
पति धर्म, गुलामी या बंधन,
ए नारि तुम्हारा अभिनन्दन।"[1]

नारी के एकान्त प्रेम को वह विशेष महत्व नहीं देता।[2] उसका कहना तो यह है :—

"दमयन्ती सावित्री सीता
इनका प्रियतमे ! समय बीता"।[3]

सामंतयुगीय आदर्शों के कारण जो नारी नर की छाया मात्र रह गई है, उसकी संपत्ति के समान हो गई है, और जो घर के कोने में पड़ी संसार से विमुख होकर पशु की भाँति पालित होकर जीवन-यापन करती है, आज के कवियों की, सहनशीलता, कुल गौरव, लज्जा, कोमलता आदि गुणों से संपन्न आदर्श न होकर गहन चिंता का विषय है।[4] वह अपने समाज को समझाने का प्रयत्न करता है कि :—

"योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित,
उसे पूर्ण स्वाधीन करो, वह रहे न नर पर अवसित।
द्वंद्व क्षुधित मानव समाज पशु जग से भी है गर्हित,
नर नारी के सहज स्नेह से सूक्ष्म वृत्ति हों विकसित।
आज मनुज जग से मिट जाए कुत्सित लिंग विभाजित,
नर नारी की निखिल क्षुद्रता, आदिम मानों पर स्थित।

---

[1]वही.

[2]नित नए-नए श्रृंगार करो।
पुरुषों का आदर प्यार करो।
मन में हो तड़पन या पीड़ा
प्रियतम चाहें असीम क्रीड़ा।
क्या सच्चा नेह यही नारी
जीवन का ध्येय यही नारी
पर यह कुछ लक्ष्य महान नहीं
इसमें आदर सम्मान नहीं। (वही)

[3]वही.

[4]सुमित्रानन्दन पंत—युगवाणी : नर की छाया, पृ० ६०,
तथा ग्राम्या : नारी, पृ० ८५.

वर्तमान युग की वह नवीना वास्तव में संतोष का विषय है, जिसने शृंखलाओं को तोड़ कर स्वतंत्रता प्राप्त की है, जो असहाय निरीह अबला न रह गई है, स्वाभाविक वृत्तियों का सहज विकास करती हुई भी विलास और सजावट की वस्तु नहीं है, जो निर्जीव प्रतिमा की भांति भक्ति और श्रद्धा की भेंटों से गर्वित न होती हुई भी पुरुष की सहचरी है, जिसमें आत्म-सम्मान मस्तक उन्नत किए खड़ा है, और जो देह, हृदय, मस्तिष्क तत्व के पूर्ण समन्वय को लेकर मानवता की सर्वोच्च सिद्धि के लिए अग्रसर है।[1] मानवी का यही सत्य

किसके पंजर में साहस जो सहन करे सौंदर्य तुम्हारा।
आज सजाने आ निकली तुम किसके उष्ण रक्त की धारा?
मूल मंत्र मेरे जीवन का कुरबानी मैं कवि अभिमानी।
आओ बरबादी की प्रतिमे रचूं तुम्हारी मैं अगवानी।
(रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—किरणवेला : आज चलीं तुम खोले, पृ० ५८- ५८.)

[1]शत शत प्राचीर लांघ कर तुम निकली हो नव जीवन पथ पर,
है सुना तुम्हारा अखिल विश्व ने आज शृखला खंडन स्वर।
तुम इन्द्रधनुष सी, विद्युत सी, बंधन तुमको अनुकूल नहीं,
हो सुंदर निस्संदेह, किन्तु तुम पुष्प-पात्र का फूल नहीं।
जड़ता पर कर प्रहार, नर्तन करते ये अरुण चरण चचल,
तेजस्वी नवयुग के उर की तुम मुक्ति रागिनी हो निर्मल;
तुम नूतन की जयध्वजा, देख तुमको है कांप उठा थर थर,
पाखंड पुरातन का सारा, निष्प्रभ वैभव का आडम्बर।
तुम युग युग के अवरुद्ध हृदय की विद्रोही वाणी सी बन,
हो फूट पड़ी सहसा, जग का है प्रतिध्वनित तुमसे कण कण
कन्या, पत्नी, मां के पद के सीमित गौरव में ही फूली
रहकर, तुम पीड़ित मानवता का आवाहन कब हो भूली?
तुम भी स्वातंत्र्य समर में हो प्राणों की बाजी रही लगा,
हो पूर्ण सहचरी बनी पुरुष की आज साम्य का मंत्र जगा।
उर की दरिद्रता ढकने को होती आभूषण भार नहीं,
आवरण हृदय की कायरता के रखती हो हथियार नहीं।
तुम एकाकिनी आज पशुबल को अभय चुनौती देती हो,
इतिहास बदलने को जग का आत्माहुति का व्रत लेती हो।
असहाय निरीह नहीं तुम, जो वात्सल्य हिंडोले में झूलो,
प्रतिमा भी नहीं, भक्ति, आदर श्रद्धा की भेंटों पर फूलो!
इतनी भावुक भी नहीं प्रेम की मनुहारों में पथ भूलो;
निस्तेज नहीं, अपमान गर्त का जो तुम अंतिम तल छूलो।

स्वरूप सुमित्रानंदन पंत ने "मजदूरिनि" और "ग्राम नारी" में देखा है। स्वस्थ और स्वतंत्र मजदूरिनि काम लज्जा को त्याग कर, द्वंद्व प्रतिष्ठा को भूल कर पुरुषों के साथ समान रूप से कार्य करती है, वह कुल-वधू के समान पराश्रिता होकर गृह में नहीं रहती, वरन् एक मुक्त स्वस्थ जीवन व्यतीत करती है :—

"नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृदय सी जन हृदयों में सहज पैठ,
जो बांट रही तुम जग जीवन का काम काज,
तुम प्रिय हो मुझे न छूती तुमको काम लाज।
सर से आंचल खिसका है—धूल भरा जूड़ा,
अधखुला वक्ष, ढोती तुम सिर पर धरे कूड़ा,
हंसती बतलाती सहोदरा-सी जन जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप सा तन से।
कुल वधू सुलभ संरक्षणता से हो वंचित,
निज बंधन खो, तुमने स्वतन्त्रता की अर्जित।
स्त्री नहीं, आज मानवी हो तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित।
निज द्वंद्व प्रतिष्ठा भूल जनों के बैठ साथ,
जो बंटा रही तुम काम काज में मधुर हाथ,
तुमने निज तन की तुच्छ कंचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय द्वार।[1]

'मानवी' की आदर्श प्रतिमा ग्राम नारी है। उसने नर का सहचरत्व स्वीकार करके

सुख में दुख में समभाग, चाहती जीवन में समरस होना।
मानव की भांति चाहती हो, हंसना, रोना पाना खोना।
अत्याचारों के आगे तुम मस्तक उन्नत कर उठ जाती,
कष्टों पर और अभावों पर प्राणों की करुणा बरसाती।
स्वाभाविक स्नेह सुधा पाकर संमोहन मदिरा ठुकराती।
तुम सृजन-प्रलय का हर्ष शोक या निज-पथ पर बढ़ती जाती।
तुम अखिल विश्व के ज्ञान कोष पर ममता अथक दिखाती हो,
तुम महाशक्ति के अमर स्रोत से सदा प्रेरणा पाती हो,
तुम देह, हृदय, मस्तिष्क तत्व के पूर्ण समन्वय को लेकर
मानवता की सर्वोच्च सिद्धि के चलती हो दुर्गम पथ पर।
(जगन्नाथ प्रसाद मिलिंद—'नवयुग के गाने,' नवीना, पृ० ४१-४३)

[1]ग्राम्या—ग्राम नारी, पृ० २०-२१.

श्रम के द्वारा क्षुधा और काम को मर्यादित कर लिया है। वह कोमलांगी होकर भी शोभा पात्र मात्र नहीं है, वह यथार्थ और जीवन के संघर्षों से परिचित है। वह सहज स्नेह से युक्त होकर द्वंद्व मुक्त है। वह दैन्य और अविद्या से पीड़ित होकर भी स्नेह, शील, सेवा और ममता की मूर्ति है। इस मानवी को कवि कृत्रिम और विलास पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाली द्वंद्व पीड़ित नागरी और वर्गनारी से बहुत दूर रखता है।[1] इसीलिए कवि पंत शिक्षित और संस्कृत भी, नारी की सौंदर्य मधुरिमा और महिमा से मंडित भी, नर की समकक्षिणी भी आधुनिका को नारी-हृदय की विभूति और सत्य से वंचित होने के कारण, कृत्रिम और आडंबर पूर्ण जीवन व्यतीत करने के कारण फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी आदि विशेषण प्रदान करते हैं किन्तु उसे 'नारी' नहीं कहते।[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवाद से प्रभावित इस युग का कवि नारी को मानव की समकक्षिणी मानवी के रूप में देखता है। मानवी से उसका तात्पर्य है—नारी जो अपने शारीरिक और मानसिक विकास में स्वतंत्र होकर जगत् का विकास करती है, आर्थिक दृष्टि से पुरुष की आश्रिता नहीं रहती और श्रम के क्षेत्र में समान अधिकार रखती है। यहां पर हम गत युग के कवि की नारी-भावना और इस युग के कवि की नारी-भावना

---

[1] वही.

[2] पशुओं के मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय कोकिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र ले सुन्दर
सुभग रूज, लिपस्टिक, प्लास्टिक पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग क्यूटैक्स अलक्तक से बन नखशिख शोभित,
सागर तल से ले मुक्ताफल खानों से मणि उज्ज्वल,
शत स्वर्णों से अंकित तुम फिरती अप्सरि-सी चंचल।
शिक्षित तुम संस्कृत, युग के सत्याभासों में पोषित,
समकक्षिणी नरों की तुम, निज द्रव्य मूल्य पर गर्वित।
नारी की सौन्दर्य मधुरिमा औ महिमा से मंडित,
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वंचित,
प्रेम, दया, सहृदयता, शील, क्षमा, पर-दुःख-कातरता,
तुममें तप, संयम, सहिष्णुता नहीं त्याग तत्परता।
लहरी-सी तुम चपल लालसा श्वास आयु से नर्तित
तितली-सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधुकण हित।
मार्जारी तुम नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण,
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन-पद-मद, आत्म-प्रदर्शन
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी मार्जारी,
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी।
(युगवाणी—आधुनिका, पृ० ८३)

के अंतर को समझ सकते। गत युग के कवि ने नारी को अनन्त विभूति संपन्ना देवी माना और उसके रूप और शक्ति की पूजा की। ऐसा करता हुआ वह आदर्शीकरण की ओर अधिक झुक गया और नारी को प्रतिमा ही बना बैठा। साथ ही नारी के गौरव को स्वीकार करता हुआ भी वह नारी स्वातन्त्र्य और समानाधिकार की भावना से आशंकित ही रहा था और पतिव्रत धर्म, एकान्त प्रेम, त्याग और सतीत्व का ही प्रतिपादन करता रहा था। उसने नारी को सुकुमारी (अबला) कुलवधू के ही रूप में देखने का साहस किया था और कार्यक्षेत्र गृह ही माना था। किन्तु इस युग का कवि नारी को मानवी के रूप में देखता है—मुक्त, स्वतन्त्र, स्वस्थ, स्वावलम्बिनी, श्रमशीला सहचरी। युगों से पुरुष ने नारी के इस रूप को विकसित होने से रोक रखा है, उसे मानवी न मानकर योनिमात्र की स्थिति दे रही है, अपने भोग, विलास, क्रीड़ा और मनोरंजन का साधन बना लिया है; और इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नारी के लिए विविध नियम बना दिए हैं, जो नारी के स्वाभाविक जीवन-प्रवाह में बाधक तो हैं ही, साथ ही उसे परावलम्बी पशु की भांति भी बना देते हैं। आधुनिक कवि का उद्देश्य नारी को मुक्त करके उल्लिखित मानवी रूप का ही विकास करना है। इस उद्देश्य की सिद्धि में तत्पर वह गत युग के कवि के विश्वासों और आशंकाओं से मुक्ति पा चुका है। इसका अर्थ यह नहीं है कि समाजवादी कवि के हृदय में नारी के प्रति आदर भाव नहीं है। आदर भाव तो है ही और इसीलिए वह उसके अधिकारों और स्वत्वों के लिए क्रांति कर रहा है, अन्तर केवल इतना है कि वह नारी को 'देवी' (जिसकी पूजा में विभोर होकर भक्त कल्पना के पंख लगाकर आकाश में उड़ता है) नहीं, 'मानवी' (समाज की स्थूल व्यक्ति) के रूप में देखता है।

अस्तु, 'मानवी' तो समाजवादी कवि की आदर्श नारी भावना कही जा सकती है, जैसा कि गतयुग में हम "सत् रूप" के संबन्ध में कह सकते थे। इस रूप के विपर्यय हैं 'शोषिता' और 'वर्गनारी' (वर्गनारी भी शोषिता के अंतर्गत आ सकती है)। इनको 'मानवी' रूप में परिवर्तित करने का अधिकांश उत्तरदायित्व बूर्ज्वा समाज या पुरुष पर है। हम देख चुके हैं कि गत युग में नारी का 'सत्' या 'असत्' होने की कोई जिम्मेदारी समाज की नहीं थी और न असत् के सत् में परिवर्तन होने में ही पुरुष का प्रयत्न वांछनीय था।

हम समझ सकते हैं कि गत युग के कवि की नारी भावना नारी के हृदय पक्ष और स्वभावज गुणों को लेकर चली थी, किन्तु इस युग के कवि का दृष्टिकोण नारी की वर्तमान सामाजिक और आर्थिक दशा पर आश्रित है।

२. क्रांतिवादी नारी भावना :

क्रांति की भावना इस युग के काव्य की महत्व पूर्ण विशेषता है। आर्थिक, सामाजिक—विशेष रूप से नैतिक—और राजनैतिक व्यवस्था के प्रति जो क्षोभ और असंतोष कवि के हृदय में है उससे यह उद्भूत है। क्रान्ति के भाव को उत्तेजित और उग्रतर करने के लिए आग में घी के समान आया द्वितीय महायुद्ध (१९३९-४५), तथा

१९४२ का राष्ट्रीय आंदोलन। हमें देखना है कि विद्रोह और क्रांति की इस भावना के बीच आधुनिक कवि के मस्तिष्क में नारी की क्या स्थिति है।

मूलतः क्रान्तिवादी नारी भावना गत युग की "शक्ति भावना" का ही विकास है। गत युग में, जैसा कि हम देख चुके हैं, नारी को एक प्रेरणामयी, अनंत विभूति संपन्नाशक्ति के रूप में माना गया, और सृजन तथा प्रलय की सामर्थ्य का भी आरोप उस पर किया गया। उस युग का कवि 'शक्ति' के सृजनात्मक पक्ष और प्रेम युक्त प्रेरणा-पक्ष की ओर अधिक आकृष्ट रहा, क्योंकि उसकी दृष्टि स्वप्न सुख पर अधिक जमी थी। इस युग के कवि ने शक्ति के प्रलय पक्ष को अपनाया है और उसे प्रथम स्थान दिया है, क्योंकि वह समाज और शासन की तत्कालीन व्यवस्था में तत्काल परिवर्तन—क्रांति पूर्ण परिवर्तन—चाहता है। फलतः इस युग के कवि की "शक्ति भावना" प्रशान्त और सृजनात्मक न रह कर ज्वालामयी और ध्वंसकारी हो गई है।

वास्तव में कवि, या व्यापक रूप से पुरुष, अपनी आकांक्षाओं के अनुसार नारी की रचना या कल्पना कर लेता है। जब वह भक्तिभाव में लीन वैरागी था तो उसने नारी से भी काम का दमन चाहा, जब वह कामरत विलासी बना तो उसने नारी को भी परकीया और अभिसारिका बना लिया, जब वह पलायनवादी स्वप्नद्रष्टा बना तो नारी को उसने "सपने की प्रतिमा" बना लिया, और आज जब वह क्रांति का संदेश वाहक है तो स्वभावतः नारी को भी क्रान्ति की दूतिका के रूप में देखता है। कवि की आंखों में आज के पुरुष का जब यह रूप है :—

"मैं भूकम्प प्रलय जल प्लावन में नवीन युग का धाता हूं।
वर्तमान का मैं वर वाहन भूत भविष्यत् का ज्ञाता हूं।
रण विद्रोह क्रान्ति का उद्गम यौवन धन जीवन दाता हूं।
हिल उठता है लोक लोक जब मुस्काता मैं अगड़ाता हूं।[1]

तो स्वाभाविक है कि नारी यह कहती हुई उसके सम्मुख आये :—

"एक विप्लव वादिनी,
हुंकारित हो जाय अरि-जय-नाद से जग ध्वंस जब,
कर प्रकंपित, शिथिल साहस, हो विमूर्छित शक्ति सब।
अग्रदूती बन बढ़ूं युत रण-मरण शृंगार लेकर,
प्राण में उन्मादिनी।"[2]

जब कवि स्वयं ज्वाला बनने को तैयार है तो नारी से अग्निपरी बनने के लिए कहना स्वाभाविक है,[3] जब ऊँच नीच, सेवक राजा के भेद के काले धब्बे मिटाने के लिए पुरुष

[1]आरसी प्रसाद सिंह—संचयिता, पृ० ८८, ११८.
[2]वही, पृ० ११२, १४९.
[3]बनो कुमारी अग्नि परी, मैं
मूर्तिमान बन जाऊँ ज्वाला। (हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान, पृ० ७९)

रुद्र का रूप धारण करता है तो नारी काली बन कर आती ही है।[1] सुधीन्द्र ने 'प्रलय वीणा'' में युग पुरुष की भैरवी और क्रांति के नूपुरों का समन्वय[2] करके इस भाव की मार्मिक व्यंजना की है।

अस्तु, आज का कवि युग की आवश्यकता के अनुसार नारी को उग्र और विध्वंसकारी शक्ति के रूप में देखता है। जगती में मचे हुए हाहाकार को सुनता हुआ, देश विदेश में सुलगी हुई आग को देखता हुआ नव युग का क्रांति संदेश सँभाले हुए, आज के "तूफानी" कवि को नटराज और शिवा (कपालिका) की कल्पना अत्यन्त आकर्षक है। आरसीप्रसाद सिंह दुष्ट दलन हेतु शिवा के कठोर और कराल रूप का आह्वान करते हुए घर-घर में विप्लव की वह्नि सुलगाने को, वसुधा पर शौर्य का प्रवाह करने को, भेल के स्थान पर क्रांति की रूप रेखा खींचने को कहते हैं।[3] इस कवि के लिए नारी का सुकुमार्ग

---

[1]'पुरुष रुद्र बन कर आ जावे, नारी काली बन कर आवे,
युग युग से जो रिक्त पड़ा है वसुधा का खप्पर भर जावे।'
(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान : नवनिर्माण, पृ० १८.)

[2]"बजी है भैरवी वह युग पुरुष की लो
उठे हैं छम छमा वे क्रान्ति के नूपुर"
(सुधीन्द्र—प्रलय वीणा : संगीत, पृ० १०)

[3]उष्ण उष्ण रक्त आज दुष्ट दुराचारियों के
पी पी के पिपासिते, न प्यास क्यों बुझाती री?
अपने कुलिश से कलेजे से तू लगा लगा
शिवे, आज शवों से जुड़ाती क्यों न छाती री?
प्रकट हुए हैं देख, कितने महिष रक्त,
मार मार इन्हें क्यों न हिए हुलसाती री?
मचा है करुण हाहाकार शोर चारों ओर
सुन के पुकार दीन दौड़ क्यों न आती री?
आरी आज शंकरी, निशंकरी, परशुपाणी,
क्रूर करवाल ले कराल कर वर में।
नेरे जा समुद्र लांघ झील तात हाट बाट:
सुलगा दे विप्लव की वह्नि घर घर में
तेरी ध्वंस मूर्ति देख कायरता भाग जाय,
जाग जाय रुद्र स्फूर्ति गौन स्फोट स्वर में।
"क्रांति चिरजीवी हो" नगारा ये बुलंद होवे
वन वन, ग्राम ग्राम, नगर-नगर में।
हर ले हमारी सारी शावलता शोषित की,
निर्बल मनों में बल पौरुषता भर दे!

रूप और प्रेमी रूप न्यूनतम आकर्षण का विषय है।[1] वह जागृति के इस युग के अनुसार ही नारी को भी जाग्रत देखना चाहता है:—

साहस अटूट दे, न फलने दे बैर फूट
लोचनों में काल कूट सा भर जहर दे।
विश्व विजयिनी शक्ति बाहुओं में, मानस में
जननी की भक्ति पूत भावना अमर दे
सिन्धु सी तरंग दे, तरंग सा अमोघ लक्ष्य,
अंग अंग में उमंग यौवन को भर दे।
चल मदमत्त केसरी की पीठ पर चढ़,
कुंजों में चुन मत कुसुम बन बालिका।
तेरे पद भार से पहाड़ पाप डोल उठें,
थरथराय शक्ति वह सृष्टि-सूत्र-चालिका।
लक्ष लक्ष प्राणों के दीप बाल मंगलमयि
मातृ मूर्ति मंदिर में सजा दीप मालिका।
भर भर नर-रक्तधार से कपालिको को
बोल हर-हर-हर एरी क्रूर कालिका।

\+ \+ \+

लहरा दे शौर्य का समुद्र क्षुद्र वसुधा में,
गौरव सुमेरु को फहरा दे पताका-सी
तीर बन पैठ जा कृतान्त के शरीर में तू,
चीर दे अमा की रात्रि ज्योतिमयी राका-सी।
लेकर अखंड न्याय दंड दंड-धारियों के
छत्र औ सिंहासन पै हल जा शलाका-सी।
शूल बन किसी के, फूल धूल को बना दे आज,
भूल जा समूल मेल, खींच क्रांति खाका-सी।

(संचयिता : कपालिका, पृ० १२७—१२८)

देखिए—'वीणा' फरवरी १९३८, किरण—"तज सुमन सेज उठ जाग जननि" :
"री चंद्र चूड़ की........ मच जाय प्रलय।"

[1] प्राण प्रेम का खेल हो चुका अब आकर्षणहीन पुरना।
व्रज की वंशी छोड़ हमें अब कुरुक्षेत्र का शंख बजाना।
मेरी राधे प्रेम पंथ पर छोड़ो अब अभिसार रचाना।
तुमको असुरों की दुनिया में है दुर्गा का रूप दिखाना।

(हरिकृष्ण प्रेमी—अग्निगान : नव निर्माण पृ० १४)

देखिए—आदर्श—'समरगीत' : युवकों से, पृ० ८७.

नारि नारि, सुकुमारि नहीं यह उचित न, व्रज कुमारि,
प्रोषितपतिका बन यों कब तक बरसाओगी वारि
बहुत दिवस हो गए बहाते नयनों से जलधार
अब भी तो कुछ कर दिखलाओ इस युग के अनुसार।
ये जागृति का युग नवीन ले आया मंत्र विशेष,
महिलाओं पाखंडवाद का कर दो अब तो शेष
तुम न खिलौने हो पुरुषों के, सेजों के शृंगार
धता बता दो कामुकता, लंपटता को दुत्कार।[1]

और "प्रेमी" भी अपनी प्रेयसी को प्रलय सहेली के रूप में देखना चाहते हैं—

तुम भी प्रेयसि वीणा छोड़ो, हाथों में तलवार उठाओ।
तारों की झंकार नहीं, अब खड्गों की खनकार सुनाओ।
मेरे प्याले में अब मदिरा नहीं रक्त भर भर कर लाओ!
अधरों को ही नहीं देह को भी लोहू में स्नान कराओ।
रंग रास की रजनी बीती,
अब रण की दोपहरी आई
दिशा दिशा से हमको देता
है तांडव का तोड़ सुनाई
अब फूलों की सेज जला दो, शूलों की शैया अपनाओ
नव वसंत का उत्सव त्यागो, अमर मरणत्यौहार मनाओ।
प्रिये प्रजापति के आसन पर महाकाल को अब बैठाओ।
सृष्टि मरे, विध्वंस जिये, सखि महा प्रलय के प्राण जगाओ।
अपनी घनी और जहरीली
वेणी को खोलो अलबेली।
नभ में बादल से फैलाती
आओ मेरी प्रलय सहेली।[2]

हम देखते हैं इस युग के कवि के लिए स्त्री की "वेणी का जहर" पुरुष के "प्रेमपाश" पर प्रभाव डालने वाली वस्तु नहीं है, और प्रणय तो बंधन ही है।[3] क्रान्ति के युग में यह न केवल नारी का बंधन है वरन् पुरुष के भी पैर की बेड़ी है। इस भावना का विकास उत्तेजना और आवेश के कवि अंचल में विशेष रूप से हुआ है। अपनी पूर्वकृतियों में अंचल

---

[1] आरसी प्रसाद सिंह—संचयिता : अग्रदूत, पृ० १७६.

[2] हरिकृष्ण प्रेमी—अग्नि गान : नवनिर्माण, पृ० १३.

[3] "केश पाश अपना बिखरा दो बन जाओ तुम आज भवानी
क्रांति कादम्बिनी प्रणय के बंधन तोड़ फेंक दो रानी।"
(सुधीन्द्र—प्रलय वीणा : क्रांति का शंखनाद, पृ० १०८)

की जो प्रवृत्ति उग्र वासनापूर्ण त्तयी रोमांस का रूप लेकर आई थी वही "किरण वेला" "करील" और "लाल चूनर में" "मरघट की महाकाली" और "युद्ध की करालिका" की सृष्टि करती है। नारी संबंधी अंचल की मांसल भावना कुछ विकृत तो अवश्य है किन्तु उनके विद्रोही युवक को हमारे सम्मुख स्पष्ट कर देती है। 'करील' में कवि नारी को विद्रोहियों के कैंप में बुलाता हुआ भी, जीवन संग्राम में सहयोगिनी बन कर जूझने को कहता हुआ भी उसके जीवन के दोनों पक्षों—प्रेम पक्ष और क्रांति पक्ष को सामने रखता है:—

कंधे से कंधा मिला छाती से छाती सटा,
रात को बनी थीं तुम गीली और रंगीली,
किन्तु दिन में बनो अखंड युद्ध की करालिका[1]।

आगे चल कर "लाल चूनर" में इस क्रांति के कवि के मस्तिष्क में प्रणय और प्रणयिनी के प्रति जो वितृष्णा दिखाई पड़ती है वह कुछ ही अंशों में तुलसी आदि की घृणात्मक भावना से भिन्न है। किन्तु इस वितृष्णा का मूल कारण "युद्ध काल" है भक्ति-मार्ग नहीं। यह कवि आज के समय प्रणय के "नशीले चोंचलों" का स्वागत नहीं करता, अब नारी से उसकी माँग दूसरी ही है :—

चाहता मैं एक नूतन देश का संवाद तुमसे,
चाहता मैं अब न बीती प्रियतमा की याद तुमसे,
चाहता मैं आज जलती आग, केवल आग तुमसे,
चाहता मैं अब न प्याली में सुरा का झाग तुमसे।[2]

'नवयुग के तरुण त्योहार द्रोही पर्व' के दिन नारी के प्यार मार्ग से पुरुष की तुष्टि नहीं होती, तब वह नारी से कुछ और ही चाहता है। वह चाहता है कि नारी आज अपने रागमय स्वर में क्रांति की प्रेरणा भर ले, और प्रेमाभिनय—"जादूगरी"—को त्याग दे। नारी पुरुष को तूफानों की सामना करने का शौर्य प्रदान करे, और स्वयं भी अग्निमय रूप धारण करले—यह कवि की प्रबल आकांक्षा है। इस लक्ष्य की सिद्धि में कवि ऐन्द्रिक सुख का सर्वथा बहिष्कार कर देना चाहता है। अपने साथ नारी के स्वभाव को भी बदल कर वह आज उपभोग के स्थान पर युद्ध की प्रेरणा माँगता है :—

देख कर तुमको बिछौने की गुलाबी सुधि न आये ;
युद्ध में बढ़ते चलें छाती फुला मस्तक उठाये।
रूप बिंबित हो इन्हीं संग्राम लपटों में तुम्हारा ;
मृत्यु की छाया न निष्प्रभ कर सके तव मधु तुम्हारा।"[3]

स्वाभाविक है कि संग्राम की लपटों में नारी के रूप को देखना चाहने वाले कवि के लिए नारी के प्रेमिका रूप में, जो अपने साथ-साथ पुरुष के भी व्यक्तित्व को अंतर्मुखी बना

---

[1]रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—करील.
[2]रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—लाल चूनर : नारी, पृ० २६.
[3]वही—नारी, पृ० ३८-३९.

देता है, घृणा हो जाय। इस भावना से प्रेरित होकर वह कह उठता है :—

"किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ.
तुम प्रणय की होखिलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।"[1]

किन्तु इन शब्दों में 'क्रांति भावना' के अतिरिक्त, जो कवि की व्यक्तिगत दुर्बलता की स्वीकृति है, जो आगे के शब्दों में और भी स्पष्ट होगी, उसे शायद ही कोई अस्वीकार करेगा। यह हमारे अगले अध्याय का विषय हो जाता है।

क्रांति की भावना ने इब्सन की सी सहचरी नारी (Comrade woman) की सृष्टि की है जो प्रतिभा संपन्न है और रक्त की स्वभावज प्रेरणाओं से मुक्त है। नेपाली एक सैनिक वातावरण को लेकर उपस्थित होते हैं जहां युयुत्सु सैनिक को प्रेमालाप की फुर्सत नहीं, यौवन की ओर दृष्टिपात करने का अवकाश नहीं। तब यौवन की प्रेरणाओं का कुछ मूल्य नहीं रह जाता है :—

"अवसर कहता है श्रमजीवी सम्हल, सम्हल फिर मोह न कर
सब कुछ त्याग कमर की अपनी असि से आज विद्रोह न कर।[2]

तब नर नारी केवल विप्लव के दो दूत हैं, क्रांति मार्ग के सहयोगी हैं :—

"विप्लव के दो दूत चल पड़े
पथ में नर है, नारी है।"[3]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग के प्रत्यूष काल में 'नवीन' ने जिस "अनल गान" को 'वीणा' में झंकृत किया था[4] उसकी प्रतिध्वनि युग के अधिकांश कवियों के स्वरों में पाई जाती है। तब निर्माण और नव सृजन से पूर्व इस युग का कवि क्रांति, ध्वंसमय परिवर्तन, को अनिवार्य समझता है और प्रचलित व्यवस्थाओं, रूढ़ियों, अत्याचारों के विरुद्ध प्रत्येक प्राणी—किसान, मजदूर, पुरुष, नारी—को उत्तेजित करता है। फलतः वह नारी को (माता, प्रेयसी, भगिनी) इस परिवर्तन में प्रमुख भाग लेने वाली क्रांतिदूतिका के रूप में देखता है। गत युग के कवि ने अधिकांशतः राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर नारी के शक्ति रूप का आवाहन किया था। किन्तु इस युग के कवि की क्रांति दूतिका का प्रमुख लक्ष्य वर्गभेद को मिटाना, रूढ़ियों को तोड़ने और आर्थिक समस्या को सुलझाने में पुरुष के ध्वंसमय रूप का सहयोग देना तथा समाज में नारी-स्वातन्त्र्य अर्जित करना है। क्रांतिवादी कवि नारी के हिमोज्ज्वल शीतल मृदु रूप की अवतारणा नहीं करते वरन् रौद्र, भयंकर और वीभत्स रूप में देखना चाहते हैं। इस रौद्र भावना की

[1] वही, पृ० २४.

[2] गोपाल सिंह नेपाली—नीलिमा : यौवन तथा भूलों की आँधी, पृ० ४७.

[3] वही.

[4] बालकृष्ण शर्मा नवीन—"अनल गान", "वीणा", जुलाई, १९२७.

पूर्व सूचना तो हमें श्री गुलाबरत्न वाजपेयी कृत 'वीरांगना'[1] (१६२६) में मिल जाती है, किन्तु इसका विशेष विकास इस युग में होता है। जब एक ओर राष्ट्रीय संघर्ष उत्तप्त था, दूसरी ओर कम्यूनिज़म प्रज्वलित भावनाओं से उद्वेलित था और तीसरी ओर एक्सिस और एलाइज़ पृथ्वी को रक्त रंजित कर रहे थे, तब कवि का मानसिक निर्माण ऐसा हो कि वह चारों ओर रक्त और विध्वंस देखना चाहे तो आश्चर्य की बात नहीं। अस्तु, ऐसी ही मानसिक परिस्थिति में इस उग्र और रुद्र 'क्रांति भ्रान्ति' का निर्माण हुआ। इसमें विशेष रूप से सहायक हुए हरिकृष्ण प्रेमी, आरसीप्रसाद सिंह, सुधीन्द्र और अंचल। अंचल एक प्रकार से इस भावना का चरम शिखर हैं, क्योंकि उनकी भावना की चरमता में ही एक दूसरी भावना का प्रारम्भ हो जाता है।

———

[1]तान ले उलंगिनी कमान, तीर खींचो तुम,
खून से भरी कटार खोंस लो कमर में,
रक्त सरिता में तैर शोणित उछालो खूब,
लपटें उठाओ द्रुत आग सी नज़र में।... (लतिका, पृ० ९६)

अध्याय १२

प्रगतियुग में मनोविश्लेषणवादी तथा क्षयो रोमांसवादी नारी-भावना

१. मनोविश्लेषणवादी नारी भावना

यह कहना असत्य होगा कि इस प्रकार की भावना को उपस्थित करने वाले कवि मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हैं या वे एक मात्र मनोविज्ञान से ही प्रभावित रहे हैं। फिर भी मनोविज्ञान ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रीति से इस युग के कवियों के भावधारा को प्रभावित किया है। यह प्रभाव दो रूपों में देखा जाता है:—आत्मगत तथा परगत। प्रथम के फलस्वरूप कवि अपनी असफलतायें, अपनी दुर्बलतायें, अपनी मानसिक दशा, द्वंद्व तथा विचार-विकास को निस्संकोच हमारे सामने रखने लगा है। छायावादी युग में जो एक कुंठा का भाव था जिसके कारण कवि व्यक्तिगत अनेक तथ्यों तथा भावों को छिपा लेता था, वह अब दूर होने लगा; क्योंकि अचेतन की विशेषताओं से परिचित होकर कवि गोपन की व्यर्थता को समझने लगा है। मनोविज्ञान का दूसरा प्रभाव यह है कि कवि नारी की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं, उसकी प्रकृति, तन्निहित विधायकतत्व (Positiveness) जीवन शक्ति (Life force) तथा तज्जन्य दुर्बलताओं के प्रति अत्यन्त सजग है। अज्ञेय को छोड़ कर अभी अधिकांश कवियों की इस प्रकार की भावना में परिष्कार की कमी है। वे संतुलन को खो कर घृणात्मक दृष्टिकोण का ही निर्माण कर सके हैं। सम्यक् दृष्टि से इस वर्ग के कवि, उक्त नवीन विज्ञान के प्रभाव से, यौन चेतना से प्रेरित हैं और उसके सम्बन्ध में किसी प्रकार के गोपन की आवश्यकता नहीं समझते। यौन संघर्ष तथा स्त्री-पुरुष के आकर्षण विकर्षण की शाश्वत कथा इनकी विचारधारा के केन्द्र हैं। फलतः अधिकतर, नारी का ऐन्द्रिक रूप ही इन कवियों की दृष्टि के सम्मुख रहा है। ये कवि नारी को केवल नारी, जीव-शास्त्रीय अर्थ (biological sense) में नारी, के रूप में देखते हैं। नारी उनके सम्मुख अपने विविध संबंधों—माता, भगिनी, कन्या, पत्नी—आदि को लेकर कम ही आती है। पुरुष को केवल पुरुष और नारी को केवल नारी ही समझा जाता है। अस्तु, छायावादी कवियों की नारी विषयक अरूप उपासना को छोड़ कर इस युग के कवि मांसल भूमि पर आ गए हैं। अधिकांश कवि निराश, विद्रोही, अशांति के उपासक, वासनाओं के मुक्त प्रचार, विकट तृष्णाकुल, भोगवादी भावनाओं के आश्रय हैं।

मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण विज्ञान के प्रभाव ने आधुनिक हिन्दी काव्य में कई प्रकार की नारी भावना का सृजन किया है।

प्रमुखतः हम चार नाम रख सकते हैं :—

(क) विरोध या विद्वेषमयी

(ख) अतीव वासनात्मक

(ग) संतुलित यथार्थवादी

(घ) प्रकृतिवादी उदासीन

क. प्रथम प्रकार की भावना की अभिव्यक्ति करने वाले कवि नारी को एक अनिवार्य आकर्षण के रूप में देखते हैं तथा उसमें काम-प्रेरणा की प्रबलता पाते हैं। इन समूह के कवियों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है : (अ) वे जिनका 'नारी' से संघर्ष व्यक्तिगत प्रवृत्तियों को लेकर है, (आ) वे जिनका नारी से संघर्ष पुरुष के कार्य क्षेत्र को लेकर है।

(अ)[1] वर्ग की नारी-भावना के प्रातः हैं बच्चन और मध्याह्न आरसी-प्रसाद सिंह। बच्चन अनिश्चित ही हैं कि आकर्षणमयी नारी जीवनज्योति है अथवा मृगतृष्णा, क्योंकि वे कभी तो यह कहते सुने जाते हैं :—

ले प्रलय की नींद सोया जिन दृगों में था अँधेरा,
आज उनमें ज्योति बन कर आ रही हो तुम सवेरा।[2]

और कभी यह :—

जानता मैं हूं कि मृगभ्रम,
तुम, नहीं हो धार जल की[3]।

किन्तु आरसी प्रसाद सिंह की दृढ़ धारणा है कि नारी एक मात्र तृष्णा हैं :—

नारी तुम एक पिपासा हो
तुम एक पिपासा हो केवल[4]।

इस वर्ग के कवि ने 'नागिन' रूप में नारी की कल्पना की है। बच्चन की दृष्टि यहाँ अपेक्षाकृत अधिक उदार और अनुराग रंजित रही है। बच्चन की नागिन नागयोनि सर्पिणी न होकर वह विश्व-विमोहक 'माया' है, जिसके आकर्षण, जिसकी प्रेरणा तथा जिसकी अजेय शक्ति से संसार अनंत काल से परिचालित होता रहा है।[5] कवि ने

[1]यहाँ "बच्चन" की 'सतरंगिनी' तथा आरसीप्रसाद सिंह की 'नई दिशा' पर ही विशेष ध्यान रखा गया है।

[2]हरिवंश राय "बच्चन"—सतरंगिन : कौन तुम हो, पृ० १३१, १.

[3]वही : मृगतृष्णा, पृ० ११७, ३.

[4]आरसीप्रसाद सिंह—आरसी, पृ० ६२, ५८.

[5]"तू नाग योनि नागिनी नहीं,
तू विश्वविमोहक वह माया
जिसके इंगित पर युग युग से
वह निखिल विश्व नचता आया" (सतरंगिनी : नागिन, पृ० ३९, ४.)

उसमें द्विधा व्यक्तित्व पाया है। उसकी अंगद्युति में प्रलयान्धकार और नवल उषा का योग है, उसके उभय नेत्रों में स्वर्ग और नरक के द्वार है और भ्रुवों में क्रोध और करुणा की समष्टि। वह विष और मधु का समन्वय है। रंभा की मनोमोहकता, रति के रूप, उर्वशी के आकर्षण, इन्द्राणी के गर्व, जगदंबा की दया के साथ-साथ मृत्यु की कटुता, क्रूरता और निष्ठुरता तथा कालिका की संहार बुद्धि तथा रुद्राणी की भयंकरता का भी संयोग उसमें है।[1] इस प्रकार—

"अपने प्रतिकूल गुणों की सब
माया तू संग दिखाती है।"[2]

उसके मन के परिवर्तन में देर नहीं लगती।[3] उसके इस रूप को देखकर 'भ्रम, भय, संशय संदेहों से काया विजड़ित हो जाती है' और कवि कह उठता है :—

"तू प्रीति भीति, आसक्ति, घृणा,
की एक विषम संज्ञा बनकर,
परिवर्तित होने को आई,
मेरे आगे क्षण प्रति क्षण।"[4]

'नागिनी' रूपिणी नारी यौवन और जीवन का साकार रूप है।[5] उसकी शक्ति और सामर्थ्य अपरिमेय तथा अजेय है। वह भूत, भविष्य तथा वर्तमान का मूलाधार है,[6] किन्तु स्वयं स्वेच्छाचारिणी है।[7] धूर्जटि ने अपने तपोबल से उसे व्याली की काया देकर बांधने का प्रयत्न किया था :—

"पर मदन कदन कर महायतन भी तुझे न सब दिन बांध सके,
तू फिर स्वतंत्र बन फिरती है सबके लोचन में, तन मन में"[8]

वह अमृत से मृत्यु और गरल से अमरत्व का प्रभाव उत्पन्न करने में समर्थ है।[9] नागिन रूपिणी नारी की इस विचित्र छलना के सम्मुख कवि की बुद्धि गतिहीन हो जाती है[10],

---

[1]वही : पृ० ३६-३९, १२; पृ० ४१, ६; पृ० ४३, पृ० ८; पृ० ४४, ६; पृ० ४६, ११.
[2]वही, पृ० ४८, १३.
[3]लगती है कुछ देर नहीं
तेरे मन के परिवतन में। (वही, पृ० ४०, ५)
[4]वही, पृ० ३७, २.
[5]वही, पृ० ४२, ७.
[6]वही, पृ० ४१, १०.
[7]वही, पृ० ४७, १२.
[8]वही, पृ० ३९, ४.
[9]तू मार अमृत से सकती है अमरत्व गरल से दे सकती है (वही, पृ० ४८, १३)
[10]मेरी मति सब सुधबुध भूली
तेरे भ्रममामय आशय में, (वही)

क्रियायें विपरीत हो जाती हैं। आकर्षण के कारण भयभीत होता हुआ भी, अनिच्छा से भी, वह उसी ओर खिंच जाता है, और मुक्ति की इच्छा रखता हुआ नारी से बन्धन दान लेता है, शान्ति के स्थान पर दुःख और सुख के स्थान पर जलन और उत्पीड़न से प्रेम करने लगता है।[1] अपनी शक्तियों को वह नारी के सम्मुख दुर्बल, असमर्थ और पराजित देखता है। नारी को दूर करने के, अथवा उससे दूर रहने के, कवि के समस्त प्रयत्न निष्फल होते हैं।[2] वह असाध्य ही रही, निर्बन्ध ही रही और अनायास विजयिनी हुई। फलतः अन्त में कवि को पूर्ण आत्म-समर्पण के लिए उस 'अनिवारिणी' के सम्मुख प्रस्तुत होना ही पड़ता है।[3] कवि नारी की इस अनिवार्यता पर आश्चर्यान्वित और क्षुब्ध तो अवश्य है, किन्तु आत्म-समर्पण के औचित्य को सिद्ध करता हुआ-सा वह कहता है :—

"यह इशारे हैं कि जिन पर
काल ने भी चाल छोड़ी,
लौट मैं आया, अगर तो
कौन-सी सौगन्ध तोड़ी
सुन जिसे रुकना असंभव
यदि नहीं आह्वान तुम हो
कौन तुम हो।"[4]

---

[1]विपरीत क्रियायें सब मेरी भी
अब होती हैं तेरे आगे,
पग तेरे पास चले आये
जब वे तेरे भय से भागे,
मायाविनि, क्या कर देती है
सीधा उलटा हो जाता है। आदि, (वही, पृ० ४९, १४)

[2]तूने आंखों .....तनको—(वही, पृ० ५०, १५)
तुझ पर.. ... ..बंधन में—(वही, पृ ५१, १६)
सब साम......भाग सका—(वही, पृ० ५२, १७)

[3]अनिवारिणी करने को अंतिम
निश्चय ले मैं तैयार हुआ
अब शान्ति, अशान्ति, मरण जीवन
या इनसे भी कुछ भिन्न अगर
सब तेरे विषमय चुंबन में
सब तेरे मधुमय दंशन में।" (वही, पृ० ५२, १७)

[4]सतरंगिनी : कौन तुम हो, (पृ० १२५, ६)

बच्चन की 'नागिन' 'प्रेमी' की 'जादूगरनी' के बहुत समीप दिखाई पड़ती है। परन्तु वास्तव में दोनों में प्रचुर अंतर है। जादूगरनी अनुरागमय, पूजात्मक, कौतूहल-पूर्ण आदर्शवादी दृष्टि से प्रसूत है, वहाँ नारी के कल्याणीरूप पर बल दिया गया है, प्रेमी ने नारी के एक विराट् रूप की कल्पना की है। इसके विपरीत 'नागिन' 'पुरुष' की पराजय के क्षोभ और तज्जनित कटुता में अपनी मूल रखती है। बच्चन का नारी संबन्धी दृष्टिकोण अनुरागमय रहा है, पर वह मानसिक संघर्ष—नारी के आकर्षण से युद्ध करने के प्रयत्न से विक्षिप्त हो गया है, और इसलिए कवि ने कविता का शीर्षक रखा 'नागिन'। गत युग का आदर्शवादी कवि सर्पिणी, जो परंपरा से अपने साथ बहुत-सी अनिष्ट और विषमयी भावनायें जोड़े हुए है, को नारी के प्रतीक रूप में कदापि ग्रहण नहीं कर सकता था। किन्तु आज का यथार्थवादी कवि मनोविज्ञान से प्रभावित होकर नारी के द्वैत रूप (duality) को सामने रखने में संकुचित नहीं होता, और नारी के प्रति अनुराग लिए हुए भी उसके भयंकर पक्ष को भूलने में असमर्थ है। इसके अतिरिक्त नारी के आकर्षण से जिस व्यक्तिगत संघर्ष का भाव इन पंक्तियों में है :—

"मैं तुझे कीलने चला मगर कीला तूने मेरे तन को"[1]

तथा जिस पौरुष प्रदर्शन का अहंकारपूर्ण प्रयत्न और निरपेक्ष भाव (unconcern) की ध्वनि इन पंक्तियों में है :—

"नर्तन कर नर्तन कर नागिन मेरे जीवन के आंगन में।"[2]

वह गत युगीय कवि के लिए असंभव थी।

'नागिन' भावना को आरसीप्रसाद सिंह ने कई पग आगे बढ़ा दिया है। आरसीप्रसाद सिंह की नारी भावना तीव्र विद्वेषमयी और विकृत-सी है तथा कवि की असाधारण मानसिक परिस्थिति की परिचायक है। स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि निजी कामवासना से युद्ध करता हुआ इच्छित के प्रतिकूल भाव व्यक्त कर रहा है। कवि विकल-सा अपना पौरुष सिद्ध करने में प्रयत्न शील है। 'मैं करूं क्या क्रोध तुम पर" और "जब जब मैं हूं कुछ भी बोला"[3] नामक कविताओं में कवि ने अपने जिस सबल पौरुष का ढिंढोरा पीटा है, उसी के 'अहं' से प्रेरित होकर वह कहता है :—

"इतना कौन प्यार का प्यासा तुमसे प्यार मांगता कौन ?"[4]

नारी से प्रेम करना वह मानो अपनी इज्जत का लुटना[5] और पौरुष की पग-

---

[1]सतरंगिनी, नागिन, पृ० ५०, १'.

[2]वही,

[3]"नई दिशा" पृ० ६० तथा पृ० ६२.

[4]नई दिशा : तुमसे प्यार मांगता कौन, पृ० ६३.

[5]जो खुद राजा है, जिसकी भृकुटि पर दुनिया चलती;
क्या उसकी इज्जत बाजारों में यों ही लुटती चलती ?
(नई दिशा : तुम से प्यार मांगता कौन, पृ० ६३)

जय[1] समझता है। इसलिए वह इस प्यार को स्पष्ट और कठोर शब्दों में अस्वीकार करता है:—

"किसने कहा कि सुंदरि, तुमको करता हूं मैं प्यार ?
किसने कहा कि हम दोनों में गोपनीय व्यवहार ?
तुम सुंदर हो, मैंने जाना,
आकर्षण है यह भी माना।
लेकिन तुमसे प्रेम और मैं,
करूँ ! असत्य, असंभव ना ना !"[2]

इन भावों से प्रेरित कवि सोचता है :—

"कितना अच्छा होता वह दिन जब तू मेरे पास न होता।"[3]

और वह अपने विचार को कार्य रूप में परिणत करने को तत्पर है—'निश्चय तुझे करूंगा मैं अपनी आंखों से दूर"[4]। दर्शन ही नहीं वह उसके प्रभाव को भी दूर करना चाहता है:—

'एक चोट में मन को दूंगा दूंगा एक अभाव।
और मिटा मैं दूंगा जीवन पर जो प्रबल प्रभाव।"[5]

कवि नारी को मोहमयी, पुरुष को अपनी ओर आकर्षित करने में निरंतर प्रयत्नशील[6] पुरुष के जीवन में आग लगाने वाली[7] तथा पुरुष का भक्षण करने वाली के रूप में देखता है। बर्नार्ड शा ने नारी और पुरुष के भक्षक-भक्ष्य संबंध की भावना से प्रेरित होकर नारी को चीता माना था, आरसीप्रसाद सिंह, बच्चन द्वारा प्रारंभ की हुई भावना का विकास करके बर्नार्ड शा की सीमाओं का स्पर्श करते हैं। वे नारी को द्विजिह्वा काली नागिन तथा भूखी मायाविनी बाघिन के रूप में देखते हैं।[8] बच्चन ने 'नागिन' के सम्मुख विवश

---

[1]तुमने क्या समझ लिया मुझको इतना कमजोर
(नई दिशा : किसने कहा कि सुंदरि तुमको, पृ० ८)

[2]वही, पृ० ७.

[3]नई दिशा : कितना अच्छा होता वह दिन, पृ० ३५.

[4]नई दिशा : निश्चय तुझे करूंगा अपनी, पृ० १०.

[5]वही, पृ० ११.

[6]मोहमयी तुम बार बार यों मेरी ओर न घूरो
(नई दिशा : निश्चय तुझे करूंगा अपनी, पृ० ११)

[7]आग लगा दे तू जिसमें ऐसा संसार मांगता कौन।
(नई दिशा : तुझसे प्यार मांगता कौन, पृ० ६२)

[8]आओ मेरे आगे बैठो।
जैसे बैठी होती काली, नागिन, दो जिह्वावाली,
एक हाथ धरती से ऊपर, ऐंठ गई हो जो बल खाकर,
मार कुंडली फन फुत्कारे, अब काटे अब ठोकर मारे,
देखो निर्निमेष तुम मुझको, देख सको जब तक, यों अपलक,

आत्म-समर्पण किया था किन्तु आरसीप्रसाद सिंह के लिए आत्म-समर्पण आत्मघात है तथा प्रेम घृणा है। कवि एक ओर तो अपने अहं और पौरुष की रक्षा में अत्यन्त सजग है और दूसरी ओर, मनोविज्ञान की भाषा में, प्रेम में घृणा का तथा स्नेह में विद्वेष का समन्वय देखता हुआ नारी पर विश्वास खो बैठा है। नारी की लीला संलग्न आकृतियाँ उसे भयंकर लगती है और उसके प्रेम व्यापार एक षड्यंत्र। फलतः वह उसकी ओर उपेक्षा दिखाता है।[1] इस कवि ने अपना पौरुष और अश्लेष भाव दिखाने का प्रचुर प्रयत्न किया है। नारी को ही उसने क्रियाशील (Active) देखा है, जैसा निशा का सिद्धान्त था। किन्तु वास्तविकता तो यह है कि दुर्बलता कवि में ही अप्रच्छन्न होती है जब वह कहता है :—

"ये आँखें जो तुझे देखने को प्रतिक्षण अकुलाती हैं।
एक घड़ी भी तुझे न पाकर जो अधीर हो जाती हैं।"[2]

या,

"यह दिल, जो तुझको पाकर फूला न समाया रहता है।
जो तेरी चितवन के जादू से भरमाया रहता है।"[3]

या,

"जब तू रहती मेरे आगे, अथवा मेरे अगल-बगल में,
मैं हो जाता जैसे मछली छटपट करती खौले जल में।"[4]

इससे कवि का मानसिक संघर्ष स्पष्ट हो जाता है। वह हीन भाव (Inferiority complex) को महत् भाव (Superiority Complex) में बदलने का प्रयत्न कर रहा है तथा काम विकृति जन्य परपीड़न (Sadism) को आश्रय दे रहा है। परपीड़न का एक कारण है निष्फलता (Frustration), जो कवि को नारी रूप की क्षणिकता के कारण निजी वासना के अपूर्ण रह जाने में मिलती है, दिखाई पड़ती है। निष्फलता

मेरे आंखों पर गालों पर, अपनी जलती सांसें छोड़ो ?
मुझसे अपनी आंख मिलाओ, मेरे दिल में विष बरसाओ,
उगलो जहर, होंठ पर रख दो रख दो कहता हूँ मैं
जीभ खून की प्यासी अपनी ! आओ बैठो मेरे आगे
जैसे बैठी होती बाघिन, बहुत दिनों की भूखी बाघिन,
लाल आंख सूरत भयावनी, जैसे हो प्रत्यक्ष मृत्यु,
लगता हो अब झपटे, मानों अब निगले। (नई दिशा : आओ मेरे बैठो, पृ० ६८-६९)

[1] फिर देखो, तुम मेरी हालत में क्या करता हूँ तत्क्षण,
मैं तुम्हें देखता रह जाता हूँ और जरा सा हंस देता हूं। (वही, पृ० ६९)

[2] नई दिशा : निश्चय तुम्हें करूँगा अपनी, पृ० १०.

[3] वही, पृ० ११.

[4] नई दिशा : कितना अच्छा होता वह दिन, पृ० २५.

(Frustration) आक्रमण (aggression) में परिवर्तित हो जाती है। आरसी-प्रसाद की यह मानसिक दशा 'पूनो'[1] और "माघ शुक्ला त्रयोदशी" नामक कविताओं में पूर्णतया स्पष्ट होती है। ये कवितायें एक संपूर्ण भावना के दो खंड प्रतीत होते हैं, जो एक दूसरे के पूरक हैं। 'पूनो' में कवि कहता है :—

"आज कितनी शान्ति जीवन में मनोरम शान्ति !
रश्मि बन बिखरी पड़ी मेरी प्रिया की कान्ति ॥
चांदनी में आज सहसा खुल पड़े हैं !
प्राण के जल जात,
क्यों न यों ही चांदनी मुझको करेगी प्यार ?
चल न सकता आयु भर क्या यह अथक अभिसार
सोचता हूँ मैं यही फिर बारबार;
इस विजय के अन्त में क्या बच रहेगी हार
आह कितना क्षुद्र हूं मैं क्षुद्र यह संसार।
मृत्यु की मेरी अमा मुझको रही ललकार
चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात।
आयेगी अंधेरी रात।
इस तरह तैयार जाने के लिये क्यों हो गयी तू।
× × ×
क्या न इतना भी तुझे मेरे लिए अवकाश
क्या बुझा सकती न मेरी एक छोटी प्यास।"[2]

और "माघ शुक्ला त्रयोदशी" में अपूर्त इच्छा के क्रोध को प्रकट करता है :—

"एक क्षण चौबीस घटों में अगर मैं
प्यार कर लेता किसी को,
कौन-सा अपराध करता बोल तो,
जिंदगी के एक क्षण में
एक क्षण याद कर लेता किसी को,
क्या बिगड़ जाता कहीं ? जो
तू नशीली रात रानी,
हे रसीली ! रूप गर्वीली हुई है !
जिस जवानी पर तुझे यों नाज है
जानता हूं, राज जो दिल के सभी,
जो मधुर सौंदर्य तेरा आज है,

---

[1] नई दिशा : पृ० १८, तथा पृ० ३१.
[2] वही, पृ० १८—१९.

आज ही ढल जायगा
ढल जायगी तेरी जवानी,
जिस तरह बरसात की यह
झूमती जाती रवानी।
बाढ़ का मुँहजोर पानी।

× × ×

हाथ धोकर क्यों किसी की जान लेने
मौत-सी तू आज पीछे पड़ गई है!

× × ×

लोग कहते, तू भली है!
ज्यों चमेली की कली है!
और मैं तो देखता हूँ तू भयानक
नाग, सिनकोना मिली
सुकुमार मिसरी की डली है।[1]

प्रथम प्रकार की भावना व्यक्त करने वाले कवियों का (आ) वर्ग, जिसमें केदारनाथ अग्रवाल, गिरिजाकुमार, अंचल के नाम अग्रगण्य हैं, नारी को केवल काम की दासी के रूप में पाता है। जैसा फ्रायड ने कहा था, इस वर्ग की धारणा है कि नारी का एक मात्र विचार-केन्द्र काम है। वह नारी भर है, योनिमात्र है। इसका यह रूप कवि के सम्मुख कामकाजी पुरुष के कार्य की बाधा बन कर आता है। फलतः वह नारी को पापाचार-लिप्त गंदा पाता है, और उसे देवी के आसन से हटा देना चाहता है।[2] वह उससे कहता है :—

"आओ मत आंखों में कोहरे के परदे-सी,
जाने दो पुरुष को
जीवन के कार्य-क्षेत्र में।"[3]

उसका विचार है कि जब तक कवि—पुरुष—भोला था, जब तक उसने नारी रूप को न देखा था, वह संतुष्ट और सुखी था। किन्तु नारी मायाविन है, वह 'जीवन संग्राम' के सैनिक पुरुष को न जाने कैसे मदहोश बना देती है, चक्रव्यूह में बांध लेती है। कवि नारी रूप को सत्य नहीं मानता, वह एक निष्ठुर षड्यंत्र है।[4] नारी के प्रेम व्यापार में

---

[1]वही, पृ० ३१—३२.

[2]केदारनाथ अग्रवाल—नारी से, हंस, दिसंबर १९४२.

[3]गिरिजाकुमार माथुर—मंजीर : "प्रेम से पहले", पृ० ६०, ६२.

[4]अरे यह रूप राशि, इतना सौंदर्य कोष
केवल है निष्ठुरता जिसमें है सत्य की पड़ी परछांईं भी नहीं।

+ + +

भी वह छल ही देखता है। 'प्रणय की खेलाड़िन' के 'नशीले चोचलों' के थोथेपन से वह प्रचुर परिचित दिखाई पड़ता है।[1] इसीलिए कुछ-कुछ भक्तिकालीन कवियों के समान वह कहता है :—

"रूप सुधा तुम खूब पिलातीं बन फूलों की राजकुमारी;
यौवन रस की विषमय प्याली सदा रही है सुन्दर नारी।
पर छवि का वरदान हाय अभिशाप बन गया इस जीवन का,
कौन भांप पाया है अब तक सब रहस्य नारी के मन का।"[2]

(ख) द्वितीय प्रकार की भावना में कवि व्यक्तिगत कामवासना का मुक्त प्रकाशन करता है और नारी को उसकी पूर्ति का साधन बना लेता है। इस भावना की अभिव्यक्ति करने वाले अकेले अंचल हैं।

यहां अंचल की नारीभावना का अध्ययन करते समय हमारे ध्यान का केन्द्र विशेष रूप से उनकी 'मधूलिका' और 'अपराजिता' रहेंगी। बाद की रचनाओं में कवि ने प्रयत्नतः समाजवादी झुकाव दिखाया है और अपनी नारी-भावना को परिवर्तित करने का प्रयास किया है, किन्तु जैसा कि हम देखेंगे, अंचल की यह मूल नारी-भावना बाद में भी बनी ही रही है। स्वयं कवि ने, यद्यपि सन् १९४१ में लिखा है—"प्रगतिशील कविता उन क्लीबों के लिए एक आग भरी हाहाकार है जो नारी को योनिमात्र या एक 'बायोलॉजिक' आवश्यकता भर समझते हैं और इससे अधिक इसका सामाजिक और माननीय मूल्य ही नहीं आँकते"। किन्तु इन्हीं शब्दों में स्वयं "अंचल" के ही प्रति कितना व्यंग भरा है, लिखने से पूर्व कवि ने न सोचा होगा।

श्री नंददुलारे वाजपेयी के शब्दों में 'रामेश्वर शुक्ल "अंचल" नवीन हिन्दी का एक क्रांतिदूत है।......क्रांति उसने की है, छायावाद की मानवीय किन्तु अधिकांश अशरीरी कल्पना के स्थान पर अपनी मांसल कल्पना द्वारा। इस क्रांतिदूत का संदेश है तृष्णा,

---

और यह नारी रूप
छल का दूसरा है सुंदर सा नाम एक
जिसने युगों से नर को छकाया खूब (वही, पृ० ६३)

[1] किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रलय की हो खेलाड़िन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।
+ + +
तुम वही हो जो जगाती है हृदय की कोपलों को
जानता हूं मैं तुम्हारे इन नशीले चोंचलों को।
तुम दिखा देतीं बिना आंसू रुलाई के नजारे,
पर न होते शेष चल पड़ते अगर आंसू तुम्हारे।
रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—लाल चूनर : नारी, पृ० २४.

[2] गिरिजा कुमार माथुर—मंजीर—जौहर की ज्वाला, पृ० ४४.

लालसा, प्यास, तृष्णा सौंदर्य की, लालसा रूप की, प्यास प्रेम की। सौंदर्य नारी का, रूप व्यक्त, प्रेम विनाशी या जो विनष्ट हो चुका है।"[1] अंचल उद्भ्रान्त यौवन के ज्वलनशील विद्रोही कवि हैं। प्रो० विनयमोहन "शर्मा" बताते हैं कि "अंचल" का विद्रोह वैयक्तिक जीवन की निराशाओं (Frustration) का फल है।"[2] असफलता ने "अंचल" को उच्छृंखल, असंयमशील भोगवादी तथा पापपुण्य की सीमाओं के प्रति अत्यंत असहिष्णु बना दिया है। वह तो यौवन, केवल यौवन के प्रति जाग्रत है। उसका प्रबल यौनोत्पीड़न (Sex-obsession) कवि की असाधारणता का तो परिचायक है ही, साथ ही एक निराले प्रकार के काव्य में एक निराली नारी-भावना की सृष्टि करता है।

'अंचल' का काव्य तृष्णा और वासना का काव्य है, उसके उद्गार ज्वाला और लालसा को ही लेकर चलते हैं। कवि स्वयं ही पुकार-पुकार कर अपनी तृष्णा की तीव्रता को बताता हुआ अपनी परिभाषा इस प्रकार देता है :—

"मैं इच्छा के मरुपथ का यात्री चंचल
प्रज्वलित पिपासा से मेरा अंतस्तल
मैं अर्थ बताता द्रोह भरे यौवन का
मैं नग्नवासना की गीता उच्छृंखल।"[3]

अस्तु, 'प्रज्ज्वलित पिपासा' और 'नग्नवासना' की पृष्ठभूमि में "अंचल" नारी के यौन-संबंध के अतिरिक्त कोई अन्य सामाजिक संबंध स्थापित नहीं कर पाये हैं। उनकी कल्पना में नारी एक ओर तो उनकी पुरुष की—तृष्णा की उत्तेजना और वासनापूर्ति का साधन है और दूसरी ओर अपने निजी रूप में स्वतः वासनादीप्त है। हम आगे दोनों पक्षों को देखेंगे।

जब प्रकृति में यौवन का विलास मुखरित हो उठता है तब कवि के एकाकी हृदय में स्त्री के अभाव की भावना प्रखर प्यास को जाग्रत कर देती है।[4] यह प्यार की तृष्णा

---

[1]रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—अपराजिता : प्रवेश.

[2]रामेश्वर शुक्ल "अंचल"—मधूलिका : आरम्भ.

[3]मधूलिका : उच्छ्वास; तथा—

मैं नवयुग की हलचल लाया मस्ती लाया, यौवन लाया
मेरा ज्वाला सा वक्षस्थल उन्माद भरा उच्छृंखल
किसकी मृदु पगध्वनि का पागल मैं दुर्दिन का गायक आया।

(अपराजिता : झलक, पृ० ८८)

[4]उधर नीप छाया कुंजों में स्वर्ण मेघ घिर आये
इधर नीड़ में नग्न-माधुरी लग्न पर्णों अकुलाये
तब यह चिरवंचित प्राणों को बेसुध-सा उन्मत्त-सा
विकल-विकल मैं खोज रहा कल्पित मधुओं का प्यासा।

(मधूलिका : तृष्णा, पृ० ४)

यौवनातप से झंकृत है।[1] "अचल" का 'अपावन प्रेम' सौंदर्य का दास है।[2] फलतः नारी का एक पल का दर्शन, एक क्षणिक नैकट्य, एक सूनी-सी दृष्टि, एक पगध्वनि, स्पर्श का लघुगीत कवि के अंगों में विकट ज्वाला जाग्रत कर देता है;[3] स्त्री की वेणीमात्र कवि को प्रमत्त बनाने के लिए प्रचुर उत्तेजना है :—

"ज्यों मद्यप मदिरा को लख हो जाते हैं मतवाले,
वैसे आज सरस वेणी पर पागल हूं मैं बाले।"[4]

यद्यपि कवि स्वयं यह नहीं जानता कि इन यौवन की परियों को देख कर उसके तृष्णा से बेसुध प्राण क्यों उन्मन हो जाते हैं;[5] किन्तु इतना निश्चित है कि 'रूप निशा में विसुध पड़ी' "शीतल विद्युत-सी ज्वलंत सौंदर्यमयी सुकुमारी" कवि को अतृप्त लालसा से उद्भ्रान्त कर देती है और उसके हृदय में प्रखर दुर्दांत अंतर्पिपासा भर कर हूक जलती है। एक तो कवि यों ही "अनियंत्रित सत्ता से लथपथ ध्यानी" है और जब स्मृति पट पर कुसुम परी छा जाती है तब तो वह धू-धू कर जल उठता है![6] नारी से उसका संबंध इतना ही है :—

---

[1]झंकृत है आतुर वक्षस्थल, हैं कितना आतप यौवन में
मैं तुमको कितना प्यार करूँ कितनी तृष्णा मेरे मन में।
(वही : अंतर्गीत, पृ० २)

[2]दास है सौंदर्य का यह प्रेम मेरा तो अपावन। (वही, पृ० १२)

[3]एक पल ही के दरस में जग उठी तृष्णा अधर में
एक पल की ही निकटता लालसा उमड़ी प्रलय-सी,
एक सूनी-सी नजर उफना उठी ज्वाला हृदय की,
एक पगध्वनि ने मुझे उन्मत्त रूपाकुल बनाया—
स्पर्श के लघुगीत ने कितना अनल मंडल सजाया,
गीत की सागर, तुम्हारा स्वप्न सा मधु स्पर्श नारी।
जल रहा परितप्त अंगों में पिपासाकुल पुजारी
है तृषा कितनी विपुल, कितना बनूँगा अब विकल मैं!
एक पल ही के दरस में जग उठी तृष्णा अतल में। (वही, पृ० ९)

[4]वही : वेणी, पृ० १९.

[5]किस तृष्णा से बेसुध हो करते प्राणों के अलि गुंजन
क्यों इन यौवन की परियों को लख हो जाते हैं उन्मन (वही—??! पृ० ६)

[6]पर आह न पूछो जब उनकी सुधि आती
वह मधु ज्वाला मालंच जलाती आती
सच कहता हूँ मैं धू धू कर जल उठता
जब हुलती उर में कुसुम परी छा जाती" (वही : उच्छ्वास, पृ० ४५)

"मैं रूप शशी लावण्य पुष्प पुंजों की
मैं चिर मद्यप सा देखो फिर मदमाता।"[१]

इस प्रकार नारी का रूप अंचल की "सीमाहीन पिपासा" का उद्दीपक है।[२] अंचल उस को केवल रूप उपभोग के दृष्टिकोण से देखते हैं।[३] नारी उनकी दृष्टि के सम्मुख "नग्न मुखर मधुधारा" के रूप में आती है, अधरों की मदिरा दान करने वाले साकी[४] के रूप में आती है। वह नारी से अधरों में महासागर भर कर उसकी उफनाती हुई प्यास को शान्त करने की ही प्रार्थना कर सके हैं।[५] अंचल की इस तृप्तिहीन पिपासा में यौवन का आग्रह विशेष है, इसलिए वे भविष्य से भयभीत 'आज' के ही प्रेमी हैं;[६] इस भावना ने कवि को और भी अधीर बना दिया है और वह नारी को बड़े प्रयत्न से मनाता हुआ दिखाई पड़ता है :—

"पल भर का संकोच न पूछो कितना वेदनमय सजनी।
गंध अंध दक्षिण बतास से बनी मंजरी यह रजनी।

\+ \+ \+

यह मुहूर्त शुभ पर्व पड़ा है इसे मना लें आज सखी।
तब सरि की कैसी लाज सखी।"[७]

इस भावना की वीभत्सता की चरम सीमा वहाँ देखी जाती है जहाँ कवि निरंकुश भावना के प्रवाह में मातृत्व की भी उपेक्षा कर बैठता है।[८] कवि नारी से "खुली उगर

---

[१]वही,

[२]कौन सलोनी परी मुझे कर देती है पागल-सा
कौन अनंगवती रग रग में भरती प्रबल पिपासा (वही : आत्मप्रलय)

[३]तुम मेरी बस, विश्व विमोहन यह सौंदर्य तुम्हारा,
पी पी मोह लुटा मैं जाता तुम मेरी ध्रुवतारा।" (वही : मैं तो सदा तुम्हारा)

[४]मधूलिका : मेरे भोले साकी।

[५]भर लो आज महासागर अधरों में ओ सपनों वाली
उफनाती है प्यास न जाने कब से मेरी मतवाली (अपराजिता, पृ० ५२)

[६]आज आज के दौर चलें अब, कल की अभिलाषा कैसी।
कल आयेगा यह क्या निश्चय, यह कल की आशा कैसी॥
(मधूलिका : मग्गी, पृ० ८४, तथा
"निर्मल ......मदभरी जवानी" (वही: रूपवती, पृ० ७)

[७]मधूलिका : मग्गी, पृ० ८४.

[८]आज निरंकुश नग्न खेल में यहाँ लगन की लो देखा
माना कटि प्रदेश में तुरत पर हुई यह उपदेश
(अपराजिता : मुहूर्त, पृ० ४०)

पर पी की मर्म पुकार" करने को कहता है, शृंगार न संभाल कर मग में अर्धनग्न लहरने को कहता है, घोर तपिश के दिन में रूप लुटाने को कहता है।[1]

"किरण वेला","करील" और "लाल चूनर" में समाजवाद की ओर झुकाव दिखा कर अंचल ने वासनापूर्ण नारी भावना को परिवर्तित करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न केवल प्रयत्न है, मूलतः कवि में विशेष अंतर नहीं दिखाई पड़ता। कवि विवश-सा स्वयं स्वीकार करता है :—

"किसी के रूप की आसक्ति जीवन से नहीं जाती।"[2]

"किरण वेला" में भी कवि ने नारी को देख कर अंगों में गहन व्यथा का अनुभव किया है,[3] और "लालचूनर" में भी उसे "रूप की एक मोहक खान" कहा है।[4] अंचल जब शोषण के बीच पली मजदूरिन या भिखारिन को देखते हैं तो नारी के जननी रूप के प्रति घृणा ही प्रकट करते हैं, उसकी बेडौल आकृति उन्हें भद्दी लगती है,[5] "क्योंकि उन्मुक्त रोमांस की कल्पना की नारी सदैव अप्सरा जैसी सुन्दरी और यौवन मदमाती होती है।"

यहीं पर हम नारी भावना के दूसरे पक्ष—नारी पक्ष—पर पहुँच जाते हैं। कवि ने अपने दृष्टिकोण से ही प्रेरित होकर नारी को भी तीव्र वासनामयी के रूप में देखा है। वह भी शून्य मंदिर की पिपासिन पुजारिन के रूप में अवतरित होती है, यौवन की निष्फलता के बाद "वन्या नग्न तृष्णा-सी विकल" दृष्टिगोचर होती है।[6] "मनुहार" में वह चंचल और कामातुर दिखाई पड़ती है।[7] उसकी तृष्णा स्वयं कवि की तृष्णा के समान तृप्तिहीन दिखाई पड़ती है। फल यह होता है कि वह सोचती है—

---

[1] वही, पृ० ४०—४३.

[2] लालचूनर—मनुहार, पृ० १०.

[3] जिसके जीवन के तरु की तुम निस्संगिनि रंगरेली
इस अभाव पूजक की पलकें भरने चलीं अकेली
और अवश अंगों में कैसी गहन व्यथा भर आती
जग में अंतहीन अनियम में केवल, प्यास न जाती
(किरणवेला : पुकार, पृ० २६)

[4] लालचूनर—तुम ! पृ० ५—६.

[5] क. पेट में भरा एक दूसरा मांस पिंड हड्डियों का निचोड़
(किरणवेला : दानव, पृ० ६३)

ख. उलटा टंगा है अति पीड़क झुकावन
काल का कठोर अत्याचार इसकी कमर में।
(किरणवेला : दानव, पृ० ६९)

[6] अपराजिता—अंतर्गीत, पृ० ६५.

[7] मधूलिका।

"आज सोहाग हरूँ मैं किसका लूटूँ किसका यौवन
किस परदेशी को बंदी कर सफल करूँ यह वेदन"[1]

आगे चल कर जब कवि का ध्यान समाज की यथार्थताओं पर आकृष्ट हो गया है वहाँ भी कवि ने वासनोन्मद रूप को उपस्थित किया है।[2] वहाँ कवि की इच्छा की तृप्ति तो है ही किन्तु साथ में एक गहरा सामाजिक व्यंग भी है जो पूर्ववर्ती उद्धरणों में नहीं है।

इस प्रकार अंचल ने नारी के साथ अनियंत्रित निर्बंध और उद्दाम यौन संबंध का आदर्श रखा है। वह कवि के किसी अन्य कार्य में सहयोग देती नहीं दीखती। नारी योनि मात्र है। वह पुरुष वासना की उत्तेजना और वासना की पूर्ति का साधन है। स्वयं में भी वह वासना पूर्ण है। उसका कोई सामाजिक व्यक्तित्व नहीं है। प्रायः नारी का शरीर पक्ष ही कवि के मस्तिष्क में रहा है। वह चाहता है कि नारी उसकी वासना के उमड़ते हुए समुद्र में छोटी-सी नौका की भाँति उछलती फिरे। वह उसके सौंदर्य पर अपने मन के भावों की तरंगों से अविराम आघात करता रहे। यही कारण है कि आगे चल कर अंचल की नारी भावना में एक प्रतिक्रिया हुई है, जो ऐसी परिस्थितियों में स्वाभाविक है। नारी के मादक, मोहक और आकर्षक रूप का वर्णन करते करते वह उसमें भ्रमात्मकता और छलपूर्णता भी देखने लगता है। उसे सुन्दर तथा प्रिया की जोत-सी मानते हुए भी वह कहता है :—

"किन्तु नारी, सिर्फ नारी हो तुम्हें मैं जानता हूँ,
तुम प्रणय की हो खेलादिन मैं तुम्हें पहचानता हूँ।
× × ×
तुम वही हो गा जगाती जो हृदय की कोपनों को,
जानता हूँ मैं तुम्हारे इन नशीले चोचलों को।"[3]

अब वह नारी के आँसुओं में छल, उनके प्रेम में प्रवंचना, पुरुष को आकर्षित करने में उसकी शक्तियों का प्रयोग देख कर क्रुद्ध होता है। अब उसे नारी पर विश्वास नहीं है,

---

[1]मधूलिका : 'आज तो'......;
देखिए—किरण बेला—"तुम्हें न जाने दूँगी" पृ० ६५.

[2]कल ! कल की कल से है
पर मैं आज न जाने दूँगी।
मोह रही कैसी मादकता
आज तुम्हें हर लूँगी।
× × ×
अमित तृषा सी भटक रही मैं
तृषा दग्ध चाहों में
अब तो बस लो प्यास ! मुझे,
अपनी गोरी बाँहों में। (वही)

[3]लालचूनर—नारी, पृ० २८.

वह नारी को बंधनों की पिटारी के रूप में पाता है। किन्तु जो स्वयं कवि की ही "प्यास का प्रतिबिंब बन कर रह गई" है वह किस प्रकार नवयुग का संदेश दे सकेगी। नारी के "नशीले चोचलो" का वर्णन करता हुआ कवि अपनी ही नारी-भावना की दुर्बलता को अनावृत कर रहा है।

(ग) तृतीय प्रकार की भावना में कवि पुरुष के ही नहीं नारी के भी दृष्टिकोण से नारी के मनोविज्ञान को परखता है। यह संतुलित यथार्थवादी दृष्टिकोण हम अज्ञेय में पाते हैं। अज्ञेय नवीन मनोविश्लेषण-विज्ञान से कितने अधिक प्रभावित हैं यह तो उनके उपन्यास "शेखर एक जीवनी" से ही स्पष्ट है। "चिन्ता" काव्य में भी उनका "उद्दिष्ट यही रहा है कि क्षेत्र विशेष में मानव के अंतर्भावों का यथासंभव स्वाभाविक और निराडंबर प्रतिचित्रण कर दिया जाय।" चिन्ता की भूमिका में उन्होंने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट किया है—"पुरुष और स्त्री का संबन्ध पति और पत्नी का नहीं, चिरन्तन पुरुष और चिरन्तन स्त्री का सम्बन्ध, अनिर्वायतः एक गतिशील (डाइनैमिक) संबन्ध है ।........पुरुष और स्त्री की परस्पर अवस्थिति एक कर्षण की अवस्था है। वह शक्ति आकर्षण का रूप ले ले अथवा विकर्षण का, अथवा आकर्षण विकर्षण की विभिन्न प्रवृत्तियों के सन्तुलन द्वारा एक ऐसी अवस्था प्राप्त करले, जिसमें वाह्यरूप से कोई गति प्रेरणा नहीं है, किन्तु किसी न किसी प्रकार आंतरिक खिंचाव बना रहना अनिवार्य है। नाटकीय भाषा में हम इसे पुरुष और स्त्री का चिरंतन संघर्ष कह सकते है।"[1] इससे स्पष्ट है कि कवि का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण मनोविज्ञान के सिद्धान्तो को लेकर निर्मित है। कवि अपना व्यक्तिगत निर्णय देने में विश्वास नहीं करता है। नारी की जो सहज प्रवृत्तियाँ हैं, वे अच्छी हैं या बुरी, उनसे युक्त नारी सत् है या असत् पूजापात्र है या घृणास्पद यह कवि नहीं स्पष्ट करता है। पुरुष के संपर्क में उसका क्या स्वरूप है इसे भली भाँति अभिव्यक्ति करता है।

"चिन्ता" में नारी सम्बन्धी दो कोण दिखाई पड़ते हैं : एक तो पुरुष की नारी संबधी विचारधारा जो उसकी प्रेरणाओं और आकांक्षाओं से निश्चित हुई है। यह पुस्तक के प्रथम भाग "विश्वप्रिया" में मिलती है। और दूसरी स्वयं नारी की निजी भावधाराएं जो उसके स्वभाव को सामने लाती हैं—यह पुस्तक के द्वितीय भाग "एकायन" में प्राप्त है।

"विश्वप्रिया" की भावनायें वर्तमान युगीय कवियो की भावना से बहुत मिलती जुलतीं हैं; ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'पुरुष' आधुनिक कवियो का मनोविश्लेषण है।

अस्तु, पुरुष सामाजिक व्यवधानो के कारण सहचरी स्त्री के भलीभांति समीप नहीं पहुँच पाता, किन्तु उसके हृदय में जिज्ञासा है, भूख है। उसका एकाकी रिक्त अंतर इस अपरिचित को प्यार करना चाहता है, किन्तु उसके प्यार में अपनाव नहीं, दान है। वह प्यार का बंधन रूप नहीं बनाना चाहता क्योंकि :—

---

[1] अज्ञेय—चिता : भूमिका, पृ० ५.

"प्रेमी प्रिय का तो संबंध
स्वयं है अपना विच्छेदी-
भरी हुई अंजलि में हूँ तुम
विश्व देवता की वेदी।"[1]

स्वप्निल जाग्रति में जब वह नारी की ओर आकृष्ट हो जाता है तो नारी को अबला असहाय समझ कर अपना कर बढ़ा देता है।[2] वह अपने सामर्थ्य दर्प से उन्मत्त रहता है किन्तु नारी की दीप्ति, रूप और सम्मोहन के आगे वह हतसंज्ञ और नतशिर हो जाता है। तभी उसे अनुभव होता है।

"मुझको बांधे ये कैसे अस्पृश्य किन्तु दृढ़ बंधन"[3]

उसे आश्चर्य होता है कि :—

"तेरी आंखों में क्या मद है जिसको पीने आता हूँ
जिसको पीकर प्रणय पाश में तेरे मैं बंध जाता हूँ
तेरे उर में क्या सुवर्ण है जिसको लेने आता हूँ
जिसको लेते हृदय द्वार की राह भूल मैं जाता हूँ
तेरी काया में क्या गुण है जिसको लखने आता हूँ
जिसको लख कर तेरे आगे हाथ जोड़ रह जाता हूँ"[4]

आकर्षण और आकांक्षा तीव्रतर होती जाती है, उसे प्रतीत होता है कि यह प्रणय व्यापार जीवन की सीमाओं के परे है, नारी उसकी अनंत प्रणयिनी है। नारी अपना रूप दिखाकर उसे आकर्षित करती है, किन्तु अप्राप्य निधि बनी रहती है। इस प्रकार पुरुष जन्म जन्मान्तर की अपूर्ण तृष्णा है और नारी उसकी असंभव पूर्ति। नारी पुरुष के अंतर की दुर्जेयता और अभिमान को नत करने में समर्थ है, पुरुष उसके सम्मुख दीन याचक की भांति रह जाता है।[5] पुरुष नारी की उपासना में तल्लीन होता है, उसे देवी रूप में पुकारता है[6] और वरदान की आकांक्षा करता है :—

"सुमुखि मुझको शक्ति दे वरदान तेरा सह सकूं मैं।"[7]

किन्तु वह पुरुष है; उसकी "तनी हुई शिराएँ इससे कहीं अधिक मादक अनुभूति की इच्छुक है। उसकी चेतना को इससे कहीं अधिक अशान्तिमय उफान की आवश्यकता है।"

---

[1] चिंता : विश्व प्रिया, पृ० १६, ३.
[2] मैंने सहसा यह जाना तू है अबला असहाया।
तेरी सहायता के हित अपने को तत्पर पाया। (वही, पृ० २०, ४)
[3] वही, पृ० २१, ४.
[4] वही, पृ० २१-२२, ६.
[5] वही, पृ० २३, २१.
[6] वही, पृ० २६, २६.
[7] वही, पृ० ४०, ३१.

वह आत्माभिमानी है। वह जानता है कि जो वस्तु प्रारंभ हुई है उसका अंत भी होगा, और वह यह भी जानता है कि नारी "वह तेजोराशि वह ज्योतिर्माला" है, जो अप्राप्य है उसे अपने नीड़ से दूर ले जाने वाला किन्तु कभी न प्राप्त होने वाला आकर्षण है। उसका अभिमान जाग्रत होकर कह उठता है :

"दूर रहने की हृदय में ठानती क्या हो।
तुम पुरुष की वासना को जानती क्या हो।
मत हँसो नारी, मुझे अपना वशीकृत जान।
तोड़ दूँगा मैं तुम्हारा आज यह अभिमान।"[1]

इस अपनी शक्ति को बांधने में वह तत्पर होता है। किन्तु वह देखता है कि नारी वह तितली है जो सुंदर है, किन्तु चंचल और अस्थिर है, "जिसकी रसना एक ही रस के पान से तृप्त नहीं होती" 'जिसके लिए एक व्रत असंभव है। किन्तु पुरुष भी अभिमानी है। वह समझता है कि वह स्वयं ही नारी के जीवन का सूर्य है, नारी उसकी रोशनी में इठलाती फिरती है। पुरुष का नारी के प्रति प्रेम सामर्थ्यपूर्ण दया भाव मात्र है, इसलिए वह नारी के उल्लसित स्वतंत्र रूप से स्नेह नहीं करता वरन् उसे दीन दुःखी और तिरस्कृत रूप में देखना चाहता है। नारी से प्यार करता हुआ वह अपने अस्तित्व को प्यार करता है।[2] अब वह जानता है कि नारी देवी नहीं है, और पुरुष उसका आराधक नहीं है। दोनों निरीह पथिक हैं जो काल चक्र से गतिशील हैं। फिर भी पुरुष नारी में एक ऐसा तत्व पाता है, क्रूर और कठोर तत्व, जिससे वह घृणा करता है। वह उसे "निर्दय लालसाओं की एक संहत राशि" कहता है। अब वह मानो सत्य पर पहुँच गया है। अब वह जान पाता है कि "मैं तुम्हारी बलि हूँ।" पुरुष और नारी "दोनों एक दूसरे के आखेट हैं और अनिवार्य, अटल मनोनियोग से एक दूसरे का पीछा कर रहे हैं।"[3] प्रेम का खोखलापन उसे स्पष्ट हो जाता है।[4] वह अब जान पाता है कि उसने वज्र खंड के सम्मुख मस्तक झुकाया था,[5] आज नारी उसके लिए पुंजीभूता तड़पन है, "पुष्पवृन्त तुल्य रम्य लौह-शृंखला" है। इस निराशा और आघात के बाद वह चाहता है कि नारी उसके जीवन में से चली जाय। किन्तु एकाकीपन के कारण दूसरे ही क्षण पछताता है :—

[1]वही, पृ० ४७, ३४.

[2]तेरी विरह जलन के पीछे सोई थी जो मेरी छाया,
आड़ उसी की लेकर मैंने अपना आप भुलाया,
अपने से अपना था प्रणय मिलन
किया था किसका मैंने चुम्बन,
(वही, पृ० २१, ४०)

[3]वही, पृ० ५४, ३४, ३.

[4]वही, पृ० ५६, ४८.

[5]वही, पृ० ५७, १०, १.

"बाहर रूठ चला मैं आया अब जाना धोखा था खाया।
अब, जब एक असीम रिक्तता प्राणों के मंदिर में खटकी।"[1]

फिर भी इस असफलता के बाद भी पुरुष के हृदय में एक शून्यता छा जाती है, वह निर्विकार और निर्लिप्त हो जाता है।[2]

किन्तु प्रकृति में मधुमास लौट आया "तरुपर कुहुक उठी पंकुलिया" और सहसा अनजाने नारी का स्नेह दान पाकर पुरुष कृतार्थ हो उठता है :—

"छोड़ने भव को चला था लौट घर परिणीत आया।"[3]

और नारी के संपर्क से उसमें पुनः परिवर्तन होता है; उसके जीवन में पुनः सरसता छा जाती है :—

"यह तुम्हारा स्पर्श या संजीवनी मैं पा गया हूँ—
असह प्राणोन्मेष से व्याकुल हुई यह जीर्ण काया
होठ सूखे थे, तभी था घुमड़ता अवसाद मन में,
पर तुम्हारे परस ने प्रिय, भर दिया आह्लाद मन में।
टिमटिमाने में धुआँ जो दीप मेरा दे रहा था
उमड़ उसके तृषित उर में स्नेह पारावार आया।
मैं अनाथ भटक रहा हूँ किन्तु आज सनाथ आया।"[4]

किन्तु प्रणय के कोहरे में छिपी है नारी की कठोरता। वह निर्भीक होकर पुरुष की अवहेलना करती है। वह इतनी प्रभावशालिनी है कि पुरुष को पीड़ित कर सकती है, और पुरुष उसे "वह मृगामयी" प्रतिमा कहता है। किन्तु उसका रूप उसका 'जीवन' चिरंतन है, और पुराना है उस रूप और जीवन के प्रति पुरुष का आकर्षण।" नारी पुरुष के

---

[1]वही, पृ० ६१, ५३.

[2]नहीं कांपता है अब अंतर।

नहीं कसकती अब अवहेला, नहीं खलता मौन निरंतर।
तुमसे आंख मिलाता हूं अब तो भी नहीं दुलमता है डर।
किन्तु साथ ही कभी राग की टेर नहीं आता हूं आतुर।
नहीं चाहता अब परिचय तेरे पर कुछ अधिकार दिखाना।
नहीं चाहता तेरा होना, यह प्रतिदान दया का पाना।
देख तुम्हें पर, पूर्व प्रणय की प्रतिक्रिया से होकर विचलित।
नहीं कभी मैं रुक जाता हूं पीड़ा से अब होकर स्तंभित;
(वही, पृ० ८०, ८१)

[3]वही, पृ० ८६, ८०.

[4] वही, पृ० ८८, ८०.

[5]जब तक तुममें यौवन है तुम में उमड़ा आकर्षण,
तब तक तू रूप [illegible] में विहस रहा [illegible]। (वही, पृ० ६१, ८७.)

"जीवन आकाश में मँडराता हुआ एक छोटा-सा मेघ पुञ्ज है"। वह सुख का साधन है।

किन्तु धीरे-धीरे पुरुष की विचारधारा सात्विक होती जाती है, लालसाएं स्थिर होती हैं, और तब वह नारी के सत्य स्वरूप को देखता है। अब वह नारी को "उर की आलोक किरण" के रूप में पहचानता है, जो उसे वासना के गर्त में गिरने से बचाती रही है।[१] अब वह जानता है कि नारी के अनेक रूप हैं, जिनकी उपासना जगत् करता है किन्तु जो वास्तविक रूप है, अस्तित्व का सार है, उसे कोई देखता या जानता नहीं। "जो तुम्हारे उस रूप को पहचान सकता है, उसके तुम सम्पूर्णतः वश हो जाओगी। जो तुम्हारे उस नाम का उच्चारण कर सकता है, वह तुम्हारा सखा, पति, राजा, देवता और ईश्वर है।"[२] इसीलिये पुरुष अंत में यही कह पाता है :—

"इस अपूर्ण जग में कब किसने प्रिय, तेरा रहस्य पहचाना।"[3]

नारी पुरुष की दृष्टि में चाहे जो कुछ भी रही हो, उसका निजी रूप तो "एकायन"—एक ही मार्ग, एक ही आसक्ति में ही मुखरित होता है। पुरुष की दृष्टि में तथा नारी के वास्तविक रूप में बहुत अंतर है। साथ ही पुरुष और नारी में प्रेम संबंधी दृष्टिकोण में भेद है। नारी निष्क्रिय है, उसके पास एक ही द्वार है। उस द्वार को पुरुष खटखटाता है। नारी अतिथि पुरुष का स्वागत करती है और उसे बंदी बना कर रखना चाहती है, किन्तु स्वतंत्र पुरुष मुक्त पक्षी की भांति उड़ जाता है, और नारी रह जाती है अपनी स्मृतियाँ, व्यथायें और अनंत उपासना लिए हुए।

नारी में जब प्रेम जाग्रत होता है तो पूजा के रूप में और वह अनजान (अननोटिस्ड) रूप से ही अपना अर्घ्यदान करना चाहती है।[४] उसके आत्म-समर्पण में दंभ नहीं है और प्रेम की अनुभूति पूर्ण है। उसके जीवन में प्रेम की अनुभूति है सबसे अधिक मूल्यवान है। उसे अपने सुदीर्घ जीवन में प्रणय संयोग की दो घटनाओं प्रथम मिलन और परस्पर आत्म समर्पण के अतिरिक्त कुछ भी याद नहीं रहता।[५] उसके

---

[१]वहीं, पृ० ९८, ९८.

[२]वही, पृ० ९९, ९९, २.

[3]वही, पृ० १००, १००.

[४]ध्यान मत दो तुम मेरी ओर न पूछो क्या लाई हूं साथ।
गान से भरा हुआ यह हृदय अर्घ्य को चिर तत्पर ये हाथ। (पृ० १११, ७)

[५]मेरे इस लंबे जीवन में
दो स्मृतियां हैं, प्राण तुम्हारी :
उनसे पहले, उनसे आगे
एक निविड़ रजनी है सारी
—एक जब कि पहले पहले हो
सहसा चौंक मुझे लखते ही
मानो बुझ कर मानो जल कर
अपने ही में सिमट संभल कर

आत्म समर्पण में कहीं रिक्त स्थान नहीं रहता ; वह अपनी गति, अपनी क्षमतायें, अपना विश्वास, हृदय की तृष्णा, अपना अभिमान, और अपने को भी प्रिय के चरणों में समर्पित कर देती है।[1] साथ ही उसे प्रतिदान की आकांक्षा नहीं, "भेंट का साफल्य उसे दे देने में ही है, उसकी स्वीकृति में नहीं।" पुरुष अपनी विजय लालसा में यदि नारी की भेंट को ठुकराता है तो उसे क्षोभ स्पर्श नहीं करता।[2] नारी जानती है, या अपने पूर्ण प्रेम के कारण स्वीकार करती है, कि उसके गीतों का भाव जगाने वाला, उसकी गति का संचालक, उसकी वीणा में सजीवन ध्वनि उपजाने वाला पुरुष है। इतना ही नहीं :—

"तुहिन बिन्दु मैं किन्तु किरण तू
उसको चमकाने वाला—
मैं प्रेरणा तू जीवनदाता
मैं प्रतिमा, निर्माता तू।"[3]

उसकी प्रणय-कल्पना युगों की सीमाओं में जाती है, और अनंत आराधना में लय होती है।[4] उसके प्रेम में एक निष्ठा है, उसकी हृदय परिधि में प्रिय का अटल आसन है। उसके प्रेम में वैयक्तिक पार्थक्य के लुप्त होने की आकांक्षा है,[5] जिसे पुरुष ने असंभव पाया था। नारी में कल्पना की तीव्रता है और इसलिए वह सोचती है :—

"क्यों न हमारा प्रणय रहेगा स्वप्निल
छायाओं का शुभ्र चिरंतन दर्पण।"[6]

बैठ रहे थे तुम नीरव, नत मस्तक।
मैं हां में, भी बोल नहीं पाई थी कब तक!
—और दूसरी जब मैंने कौशल से
छिपे छिपे आ निकट तुम्हारे, छलसे
ये दो वाक्य सुने जाने किसके प्रति उच्चारित
किन्तु जिन्हें सुन मेरा कण कण हुआ कंटकित पुलकित।
मैं तेरा हूँ—तू मेरा है
कैसा यह प्रेम घनेरा है, (वही, पृ० ११७, ११८ १०)

[1]वही, पृ० ११६, १३.

[2]वही, पृ० १२०, १४.

[3]वही, पृ० १२३, १६.

[4]प्रणय अंक में सोने में युग युग रहती ही रहती
स्पंदक स्वरों में अनगिन दिन तक वही बात बस कहती रहती।
(वही, पृ० १२४, २०)

[5]फिर अनिमेष, मुग्ध से आँखें मींचे
हम सो जायें, वैयक्तिक पार्थक्य मिटा कर। (वही, पृ० १२८, २१)

[6]वही, पृ० १२८, २१.

समस्त नश्वरताओं को भुला कर, सदेहों को दूर कर वह केवल एक प्रेम प्रवाह की अजस्रता को देखती है, और उसी में परम सुख का अनुभव करती है, मिलन सुख के सम्मुख उसके हृदय में अमरत्व का आकर्षण बहुत ही कम रह जाता है।[1] उसमें एक संतोष की अवस्था है। उसकी दृष्टि में पुरुष-स्त्री का प्रणय सम्बन्ध एक अबाध किन्तु अथक स्नेह से पूर्ण सखा सखी भाव है, जिसमें परस्पर पूजा भाव है, परस्पर आत्मार्पण है और अति नैकट्य है।[2] उसमें प्रेम पात्र को सुख ही देने की आकांक्षा है, व्यक्तिगत दुःख को सामने रखने का उत्साह नहीं है :—

"मेरी पीड़ा मेरी ही है तुम्हें गीत ही मैं दूंगी,
यदि असह्य हो, क्षण भर चुप रह यति में उसे छिपा लूँगी।"[3]

पुरुष का निर्दय आघात भी उसके प्रेम का अंत करने में असमर्थ रहता है। मन आहत होकर भी रोष नहीं करता है :—

"तर्क सुझाता घृणा करूँ, पर यही भाव रहता है घेरे,
तुम इस नयी सृष्टि के स्रष्टा क्रूर, क्रूर, पर प्रणयी मेरे।[4]

नारी पुरुष की सामर्थ्य, शारीरिक शक्ति की उपासना करती है। वह इतना ही चाहती है कि उस सामर्थ्य का अवलंब, और उसकी अभयद छाया पाले :—

"ईश्वर बन कर मंत्र-शक्ति से छू दे मेरा भाल—
दानव होकर चूर चूर कर दे मेरा कंकाल—

---

[1] वही, पृ० १२६-१३०, २८.

[2] मैं तुम क्या ? बस सखी सखा !
तुम होओ जीवन के स्वामी, मुझसे पूजा पाओ —
या मैं ही होऊँ देवी जिस पर तुम अर्घ्य चढ़ाओ,
तुम रवि जिसको तुहिन बिन्दु-सी मैं मिटकर ही जानूँ
या मैं दीपशिखा जिस पर तुम जल कर जीवन पाओ,
क्यों यह विनिमय जब हम दोनों ने अपना कुछ नहीं रखा।
मैं तुम क्या ! बस सखी सखा !
क्यों तुम दूर रहो जैसे संध्या से संध्या-तारा ?
मैं क्यों बद्ध अलग, जैसे वारिधि से अलग किनारा ?
हमें बाँधने का साहस क्यों मधुर नियम भी पाए ?
तुम अबाध मैं भी अबाध हो अनथक स्नेह हमारा !
प्रिय प्रेयसि रहकर किसने उसका सच्चा रूप लखा !
मैं तुम क्या ! बस सखी सखा। (वही, पृ० १३०-१३२, ३१)

[3] वही, पृ० १३३, ३३.

[4] वही, पृ० १३३, ३४.

मात्र पुरुष रह बाँध भुजों से मर्माहत कर डाल!
मुझे सिखा दे सुनना केवल तेरा ही निर्देश—
तेरे अभयद कर की छाया में करना उन्मेष,
अपना रहना अपनेपन को देकर तेरा वेष।,"[1]

केवल प्रेम नारी जीवन की निधि है जिसे लेकर उसे किसी अन्य वस्तु की आकांक्षा नहीं रह जाती। इस एक अकेली ज्योतिकिरण से उसकी काया पुलक उठती है, और राह की विघ्न बाधाएँ नगण्य हो जाती हैं। उसके जीवन में प्रिय मिलन ही जब सब कुछ है तो वियोग में भी वह यही कहती है :—

"आओ प्रियतम, आओ प्रियतम!
पवन तरी है मेरा जीवन,
तुम उसके सौरभ नाविक बन,
दसो दिशा छा जाओ प्रियतम।"[2]

नारी में स्वमहत्वस्थापन (सेल्फ एसर्शन) की मात्रा पुरुष से बहुत कम है। अपनी तुच्छता को स्वीकार करते हुए उसे लज्जा नहीं होती। फिर भी वह इतना जानती है कि वह अपने अस्तित्व के प्राण पुरुष की शक्ति की उद्दीपिका है। नारी का लक्ष्य पुरुष की कृतित्व शक्ति का विकास करना है।[3] किन्तु नारी का जीवन अधिकांश विरह पूर्ण है। जब पुरुष का प्यार उचाट हो जाता है तो नारी का मानो संसार ही नष्ट है :—

"तम ने चारों ओर घेरा,
उचट गया जब प्यार तेरा।
टूटा जीवन दीप मेरा
कुचल दो इसको, धूल में मिला दो।"[4]

किन्तु उसका आक्रोश प्रिय के प्रति नहीं होता (जैसा पुरुष का होता है)। वह नीरव, मौन पीड़ा को सहन करती है। उसमें सहन शक्ति है, अपूर्व अभियोजन शक्ति है।[5] उसके हृदय का उत्ताप छिपा पड़ा रहता है—"मुझ में भी उत्ताप है, मुझमें भी दीप्ति है, मैं भी एक प्रखर ज्वाला हूँ। पर मैं स्त्री भी हूँ, इसलिए नियमित हूँ तुम्हारी सहचरी हूँ, इसलिए

---

[1]वही, पृ० १३४, ३५.

[2]वही, पृ० १४३, ४५.

[3]वही, पृ० १४६—७, ५३.

[4]वही, पृ० १५०, ५८.

[5]रहने दे इनको निर्जन ये प्यासी ही जी लेंगी,
युग युग से स्नेह-आच्छादित पर पीड़ा भी पी लेंगी। आदि।

(वही, पृ० १५५,६१)

तुम्हारी मुखापेक्षी हूँ, तुम्हारी प्रणयिनी हूँ इसलिए तुम्हारे स्पर्श के आगे विनम्र और कोमल हूँ।"[1] उसके एकनिष्ठ प्रेम पर संसार की रौरवता भी अपना प्रभाव डालने में असमर्थ रहती है,[2] किन्तु "इस सब उपासना और प्रेम का अंतिम लक्ष्य पुरुष नहीं"; उस प्रेम व्रत के सम्यक् उद्यापन की कामना में निरत मेरी उग्र शक्ति ही है।" पुरुष ने प्रेम को नश्वर कहा था, किन्तु नारी उसे अनश्वर मानती है, और उसे दिव्य बनाने में प्रयत्नशील रहती है। उसके प्रयत्न में आशा है, और उसकी भावना की चरम परिणति यही है :—

"आशा, मधुद्वार प्रणय का इससे आगे क्या गाऊं।
आशा के उठते स्वर पर मैं मौन, प्राण, रह जाऊं।"[3]

इस प्रकार अज्ञेय ने पुरुष-प्रकृति और नारी-प्रकृति के अंतर की रूपरेखायें स्पष्ट करते हुए अपना यथार्थवादी किन्तु पक्षपातहीन दृष्टिकोण उपस्थित कर दिया है। "एकायन" में उन्होंने नारी का जो रूप उपस्थित किया है वह छायावादी कवियों की नारी से मिलता जुलता है। अज्ञेय ने मनोविश्लेपण विज्ञान द्वारा उपस्थित की गई नारी चरित्र की वीभत्सताओं को सामने लाने का प्रयत्न नहीं किया है।

चतुर्थ प्रकार की भावना प्रकृतिवादी उदासीन है। इस भावना के आधार-स्तंभ भगवतीचरण वर्मा हैं। नारी के प्रति निरपेक्ष (उदासीन) दृष्टिकोण के विचार से वर्मा जी अज्ञेय के समकक्ष रखे जा सकते हैं। किन्तु अंतर यह है कि अज्ञेय की विचारधारा मनोविज्ञान पर आधारित है और वर्मा जी की प्रकृतिवाद और परिस्थितिवाद पर। अज्ञेय मनोविज्ञान के सिद्धान्तों के आधार पर संतुलित दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं, किन्तु वर्मा जी नारी-प्रकृति की नग्न यथार्थताओं को लेकर परिस्थिति चक्रों में उनका उद्घाटन करते हैं। वर्मा जी पाप पुण्य, सत् असत् की परिभाषाओं को लेकर नहीं चलते। संसार के संबंध में कवि का दृष्टिकोण यह है :—

"भला बुरा कुछ नहीं यहाँ पर, यह केवल अनुमान।"[4]

कवि की अटल धारणा है कि मनुष्य परिस्थितियों का अनिवार्य दास है, उसकी व्यक्तिगत इच्छायें कुछ भी करने में असमर्थ हैं,[5] और "पतन ही है जीवन का सार"। कवि के मत

---

[1]वही, पृ० १६०, ६६.

[2]पर प्रियतम! जिन प्राणों पर पड़ चुकी कभी भी तेरी छाया
उन्हें खींच लेने की शक्ति कहाँ से लावे उसकी माया।
नीरव उर मंदिर में यह मन तेरा ध्यान किया करता है—
यद्यपि सदा रौरव जग का मेरा आह्वान किया करता है। (वहीं, पृ० १६६, ७६)

[3]वही, पृ० १२६, ८४.

[4]भगवतीचरण वर्मा—मधुकण : संसार, पृ० ५२.

[5]इच्छाएँ हैं प्रबल, किन्तु हैं असफल सकल उपाय,
भटकते हैं हम सब असहाय,

में उच्चाकांक्षायें ढोंग हैं और धर्म भ्रम तथा अप्राकृतिक भाव है।[1] उत्थान और पतन प्रकृति का अटल नियम मानकर कवि ने लिया है।[2]

इस परिस्थिति में कवि नारी को सत् असत् की कसौटी पर नहीं कस सकता। यह कवि नारी के सतीत्व, पतिव्रत, पवित्रता, एकनिष्ठ प्रेम आदि भावों पर तो ध्यान देता ही नहीं, साथ ही, नारी पुरुष के लिए अनिवार्य आकर्षण शक्ति है, तृष्णा उत्तेजक है, गर्त में गिराने वाली है, वासना की साकार मूर्ति है—इन भावनाओं की भी अवहेलना करता है। उसकी दृष्टि में परिस्थितियां ही महत्व रखती हैं, व्यक्तिगत गुण या कर्म नहीं। "तारा" नामक गीतिनाट्य में कवि ने इस भावना का भलीभांति प्रतिपादन किया है।

तारा महर्षि बृहस्पति की पत्नी है। उसके हृदय में तपस्या और साधना के प्रति आशंका उठती है, वह यौवन का उपभोग चाहती है :—

इस उमंग के स्रोत की
किस सुख की आशा से गति अवरुद्ध है[3]

वह वृद्ध बृहस्पति के प्रति भक्ति भाव रख सकती है किन्तु प्रेम नहीं; और उसे :—

"चाह है रस की पावन प्रेम की,
उस विस्मृति की, उस अनंत संगीत की
जिसमें निज ममत्व को सहसा भूल कर
हो जाऊँ मैं मग्न, और कर दे मुझे
प्रबल प्रेरणा प्रथम प्रेम की प्रवाहित
मादकता के विस्तृत तीव्र प्रवाह में।"[4]

बृहस्पति प्रकृति का दमन करने का प्रयत्न करते हैं; संसार की अस्थिरता का ज्ञान कराते हैं,

---

परिस्थितियों की विस्तृत परिधि, प्रेरणाओं का है समुदाय,
गिरे नीचे नीचे दिन रात, क्षणिक हैं सारे सोच उपाय,
(मधुकण: नूरजहां की कब्र पर, पृ० ७८)

[1]"उच्च आकांक्षा का उच्छ्वास,
ढोंग है, यह है आडंबर।" (वहीं: तृष्णा, पृ० १०१)
तथा—
धर्म भ्रम है अप्राकृतिक भाव,
अंधविश्वास पूर्ण अविचार। (वहीं, पृ० १०३)

[2]उठते गिरते ही रहते हैं, राजा हो या रंक।
अमिट हैं ये विधिना के अंक।
(मधुकण : नूरजहां की कब्र पर, पृ० ८७)

[3]मधुकण : तारा, पृ० १०७-१०८.

[4]तारा, पृ० १०८.

वासना के दमन का उपदेश देते हैं। किन्तु तारा का मनोवृत्ति प्रेरित मस्तिष्क चिल्ला उठता है "कर्मक्षेत्र है शुष्क, नर्क भ्रम जाल है।"

दूसरी ओर वृहस्पति का तरुण जिज्ञासु शिष्य चंद्रमा है। उसे भी वृहस्पति वासना जो प्रकृति का अंश है, के दमन का उपदेश देते हैं, वासना को अभिशाप बताते हैं। किन्तु वृहस्पति के उपदेश युवती तारा और युवक चन्द्र की प्रकृति को कुंठित करने में असमर्थ रहते हैं। युवती तारा चन्द्रमा को देखकर आकर्षित हुए बिना नहीं रहती और उसी प्रकार चंद्रमा। इस समय उनका गुरु पत्नी और शिष्य का संबंध कोई मूल्य नहीं रखता, वे रह जाते हैं मात्र नारी और नर। तारा को चंद्रमा का 'माता' संबोधन अभिशाप प्रतीत होता है। तारा पर चंद्रमा के दर्शन से जो प्रभाव हुआ उसका विश्लेषण करने में वह स्वयं असमर्थ है। चंद्रमा को वह अपना परिचय इस प्रकार देती है :—

"नहीं जानती हाय स्वयं मैं कौन हूं, मैं जग के विरोध की भाषा मौन हूँ।
मैं समाज निर्मित समाज की दोप हूं, स्वयं घुला देने वाली मैं रोष हूं।

\+ \+ \+

विकसित यौवन की मैं दबी उमंग हूं।
रूप राशि हूँ रूप राशि की चाह हूँ।
उठे और मिट जाय वही रस रंग हूँ।"[1]

चन्द्रमा के हृदय में तारा का सौंदर्य भीषण उथल-पुथल मचा देता है और वह उसे "झंझा-वात भयानक क्रांति" के रूप में देखता है। किन्तु कवि निष्पक्ष रूप से परिस्थितियों के विकास में संलग्न हैं। वृहस्पति के प्रस्थान के बाद चंद्रमा आश्रम-रक्षा का भार लिए हुए तारा से मिलने का संयोग पाता है। वह संगम प्रस्ताव करता है, और तारा कह उठती है :—

"यदि है धर्म मार्ग पर ही करुणा व्यथा,
तो फिर आओ चलें पतन को ही चलें"[2]

वृहस्पति अवश्य चंद्रमा के साथ तारा को शाप देते हुए पतिता और दुराचारिणी कहते हैं, किन्तु कवि तारा और चंद्रमा के कृत्य को प्रकृति के परिस्थिति सहयुक्त विकास के रूप में ही देखा है। इस घटना को लेकर कवि नारी के संबंध में अपना कोई फैसला नहीं देता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतियुग के कवि मनोविज्ञान तथा मनोविश्लेषण विज्ञान से, कभी अधिक कभी कम, प्रभावित रहे हैं। इस विज्ञान के प्रभाव से कुछ कवियों ने नारी की नग्न प्रकृति का दर्शन करके कुछ घृणात्मक भावना का निर्माण किया, कुछ ने उसमें परिष्कार करते हुए नारी को देखा, कुछ ने निरपेक्ष भाव से नारी चरित्र को उपस्थित कर दिया और कुछ ने अपनी वासनाओं की अभिव्यक्ति को स्वाभाविक मान कर नारी को शारीरिक भूख की तृप्ति का साधन बना लिया। इस प्रकार की विविधता इस बात की

---

[1]वही, पृ० १२०-१२१.
[2]वही, पृ० १२४.

द्योतक है कि आधुनिक कवि का मस्तिष्क अस्थिर और अनिश्चित अवस्था में है। वह अनेक प्रयोग कर रहा है, किंतु किसी एक निष्कर्ष पर पहुँचने में अपने को असमर्थ पा रहा है।

१. क्षयी रोमांसवादी नारी-भावना

परिवर्तन युग में सामाजिक कुंठाओं जनित निराशा ने छायावादी कवियों को काल्पनिक सुख का खोजी, और अतीन्द्रिय सौन्दर्य का प्रेमी बना दिया था, और इस प्रवृत्ति ने रोमांसवादी नारी भावना के मध्य "प्रेयसी" और "प्रणयिनी" की सृष्टि की थी। उस रोमांसवादी भावना का अंत उस युग के साथ नहीं हुआ, समाजवादी और क्रान्ति-वादी प्रवृत्तियाँ भी बहुत समय तक उसके प्रवाह को न रोक सकीं। उसी धारा के मध्य जो नए विकास इस युग (प्रगतियुग) में हुए उन पर हमें दृष्टिपात करना है।

इस युग के कुछ कवि नरेन्द्र, अंचल, बच्चन, निराशावाद जनित रोमांस के कवि हैं। इस युग का निराशावाद गतयुग के निराशावाद से अधिक भीषण है और अपने पार्श्वों में नियतिवाद और भोगवाद को लेकर अधिक कटु हो जाता है। बाह्य और आंतरिक असंतोष के कारण कवि की प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो गई हैं; कवि अपने कल्पना जगत में सुख की खोज करने लगा, अपने आदर्श का निर्माण देखने लगा। फलतः जिस प्रकार गतयुग में रोमांसवादी कवि ने "प्रेयसी" और "प्रणयिनी" की मधुमयी कल्पना करके मानसिक तृप्ति लाभ की थी, उसी प्रकार इस युग के रोमांसवादी कवि ने "पथिक प्रिया" और "मधुबाला" की सरस कल्पना द्वारा सुख प्राप्ति का प्रयत्न किया है। किन्तु दोनों युगों की रोमांसवादी नारी भावना की विभिन्नतायें स्पष्ट हैं। गत युग के कवि की भावना अधिक सूक्ष्म और स्वस्थ थी, किन्तु इस युग का रोमांसवादी कवि क्षयग्रस्त युवक है, उसकी भावना में स्वास्थ्य के लक्षण कम हैं, संभवतः निष्फलता की भीषणता के कारण। और साथ ही वह अधिक मांसल भूमिपर है। गत युग के कवि ने रीतिकालीन अतिशृंगारमयी, वासनापूर्ण, ऊहात्मकता युक्त नारी भावना के प्रति विद्रोह किया था और नारी के भावक्षेत्र का दर्शन सुसंस्कृत रीति से किया था। उसका विशेष ध्यान नारी की कर्तव्यबुद्धि और विशेषरूप से ऐंद्रिक-वासना-हीनता दिखाने की ओर था। सामाजिक कुंठाओं के प्रति हृदय में विद्रोह लिए हुए भी वह प्रायः समाज प्रदत्त समस्याओं के मध्य ही लड़खड़ाते "प्रणयिनी रूप" को देख सका; केवल निराला ने कुछ दूसरे ढंग का प्रयास किया था। इस युग का कवि, संभवतः मनोविज्ञान से प्रभावित होकर या व्यक्तिगत दुर्बलतावश, कुछ अधिक साहसी है; वह मनुष्य की वासना-भावना को एक यथार्थ सत्यता मानता है और उसकी नैसर्गिक भावनाओं को व्यक्त करना दोष नहीं मानता। फलतः वह सूक्ष्म से उतर कर स्थूल मांसल भूमि पर आ गया है। इसके अतिरिक्त वह रोमांस के क्षेत्र में जानबूझ कर समाज को भुला कर अपनी कल्पना के पंखों में बैठा हुआ दिखाई पड़ता है।

अस्तु, इसी रोमांस ने दो नई सृष्टियाँ कीं—१. पथिकप्रिया २. मधुबाला। प्रथम की सृष्टि का श्रेय विशेष रूप से नरेन्द्र को और द्वितीय का बच्चनजी को है। पथिक

प्रिया वह नारी है जो नियति के शाप से बँधे चिर पथिक पुरुष की मध्याओं को साश्रय बना कर उसके हृदय की तृषा को अपने मधुदान से तृप्त कर देती है, और इस घटना से पूर्व उत्सुक कुमारी तथा उसके बाद चिर प्रोषितपतिका बनी रहती है। "ग्राम गीतों में मानव जीवन के उन प्राथमिक चित्रों के दर्शन होते हैं जिनमें मनुष्य साधारणतः अपनी लालसा, वासना, प्रेम, घृणा, उल्लास-विषाद को समाज की मान्य धारणाओं से ऊपर नहीं उठा सका है और अपनी हृदय भावनाओं को प्रकट करने में शिष्टाचार के प्रतिबन्ध भी नहीं मानता है।" ग्रामगीतों में नारी प्रायः विदेशगत प्रिय की विरहोत्कंठिता नवयौवना प्रिया के रूप में अवतरित होती है जो कभी भौंरे, कभी मेघ, कभी पवन आदि के द्वारा फागुन या पावस के आगमन की सूचना के साथ पूर्ण संदेश प्रिय को भेजती देखी जाती है। नरेन्द्र की "कामिनी" का भी उत्तरार्ध में कुछ कुछ यही रूप है।

अस्तु, पथिक प्रिया मिलन की लालसा लिए विह्वल प्रगल्भ नायिका है और विरह की आकुल प्रोषितपतिका। जिस कामुकता और प्रगल्भता की कल्पना भी गतयुग के कवि अपनी नारी में नहीं करना चाहते थे उसके दर्शन इस युग के कवि ने पथिक प्रिया में किये हैं। चंचल यौवन के सार्थक उपयोग के संबंध में वह बहुत चिंतित दिखाई पड़ती है।[1] जब कवि स्वयं प्यासे यौवन में कल से विनिमय करने के पक्ष में नहीं है[2] तो उसकी नारी का यह रूप अस्वाभाविक नहीं। "विह्वल तन, पागल मन लेकर"[3] वह प्रिया की आशा में प्रतीक्षाकुल दिखाई पड़ती है, और मिलन रात्रि के प्राप्त होने पर अत्यन्त मुखर हो उठती है :—

"बांध रेशमी डोरियों में मैं तुम्हें सब दिन
रखूँगी पास, निश दिन पा, अपने पास।"[4]

मादक लालसाओं की पूर्ति का साधन बटोही को पाकर वह अत्यन्त चंचल और वासनाकुल हो उठती है :—

"नाच रहीं सागर की लहरें उष्ण रक्त से मेरे,
डोल रही उर में अरण्य की व्याकुलता अति घेरे।

---

[1]उड़ न जाय यह चंचल यौवन !
छू दो अपने कोमल कर से सजग मंजरित हो तंद्रिल तन,
स्नेह परस से जाग पुलक दल पल भर को कम लें नवयौवन।
(नरेन्द्र — कर्णफूल, पृ० ४०) तथा
देखिए—अंचल—किरण वेला : तुम्हें न जाने दूँगी, पृ० ६५.

[2]आज करूँ क्यों कल से विनिमय !
कल जाने कैसी होगी कल
कल कैसी प्यासे यौवन में (नरेन्द्र— कर्णफूल, पृ० ८७)

[3]वही, अनंत प्रतीक्षा, पृ० ११.

[4]नरेन्द्र—कामिनी : अतिथि, ५ पृ० २४

आज जलेगी जब तक मेरे इस यौवन की ज्वाला।
कुसुम मुकुल सा पूर्ण सुखातुर अंध हृदय मतवाला।"[1]

उसकी वासनायें पूर्ण तृप्ति चाहती हुई निद्रा के व्यवधान को भी सहन करने में असमर्थ है।[2]

किन्तु पुरुष, इन कवियों की दृष्टि में, अंततः बटोही या पथिक ही है। (इस युग के कवि की यह भी पुरुष संबन्धी एक नई ही भावना है)। नरेन्द्र ने अपने 'स्वच्छन्द गीत' में इस परिस्थिति को समझाने का प्रयत्न किया है :—

"नित्य नूतन नयन प्याले किन्तु आसव एक सा है,
नित्य नूतन नयन प्यालों से जिसे मन पी रहा है,
सब दिन, कहो कैसे लुभाएँ, एक दिन के फूलप्याले की
सजीली मोह माया !
बाले ! मुझे तो प्रेम का प्रिय-पंथ भाया !!
प्रेम का प्रिय पंथ मेरा पंथ है तो पंथ में चलना सदा है।
विश्राम कैसे लूँ, प्रिये, जब भाग्य में ही भूलना;
फिर खोजते रहना सदा है ?"[3]

इस परिस्थिति में नारी के जीवन की रूप रेखायें यह हो जाती हैं :—

"जब दूर दूर वे, मैं उदास फिर वे उदास जब मैं न पास,
जो रहें पास तो रस विलास, ओझल होते ही विरह त्रास।"[4]

नरेन्द्र ने 'कामिनी' में इन निखरे सिद्धान्तों का एक पूर्ण चित्र उपस्थित कर दिया है। पथिक पुरुष की दृष्टि में नारी-पुरुष "प्यासे मन को बुझाने को पत्थर मधुपात्र" भर है, और वह दिन भर की थकान के बाद संध्या समय को कामिनी की स्नेह छाया में विश्राम और सुख पाता है, किन्तु स्थिर रहना उसका स्वभाव नहीं है। फलतः सूर्य की किरण कामिनी के लिए चिर वियोग का संदेश लेकर आती है। नारी के जीवन में "दो घड़ी का मिलन फिर आजन्म विरह विछोह" ही है। वियोग काल की कामिनी की मूर्ति गतयुग के कवि की अला, या गोपी या अनारकली में अपना साम्य नहीं पाती, इसका कारण दोनों की प्रेमानुभूति का अन्तर न होकर प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति का अन्तर है, और अभिव्यक्ति का आधार कवि की भावना है। नरेन्द्र की नारी भावना ग्राम-गीतों के भावों का संग्रह कर अधिक नैसर्गिक और सामाजिक चेतना से अश्लिष्ट हो गई है। कवि का दृष्टिकोण स्त्री-पुरुष के प्रकृत संबंध के मध्य नारी के पार्ट को देखना रहा है। इसलिए जहाँ मिलन में उसने प्रकृत-प्रेरणाओं पर ही ध्यान दिया है वहाँ वियोग में भी कवि नारी को

---

[1] अंचल—किरण वेला : तुम्हें न जाने दूँगी, पृ० ६४.
[2] नरेन्द्र—कर्णफूल : आज न सोने दूँगी बालम, पृ० ७६-८२.
[3] वहीं : पृ० ५४-५६.
[4] वहीं : निष्ठुर मेरे, मैं निष्ठुर की, पृ० ५२

"घायल हिरनी सी घबराती", "बिछुड़े सारस सी डकराती",[1] "पटविजना सी आस" का संबल लिए दर्शन की अभिलाषा में दुःखी दिन व्यतीत करती, खंजन और हंस के साथ नेत्रों और प्राणों को भेज कर मनभावन की खोज करना चाहती,[2] चौबारे पर चौमुख दिवला बार कर अपने राजकुमार की प्रतीक्षा करती[3] ही देख सका है। उसके सम्मुख नारी सुकुमार भोले स्नेहमय रूप में आती है। नारी का विश्वास और पूर्ण आत्मसमर्पण तथा एकनिष्ठ प्रेम उसमें है। किन्तु इन विशेषताओं के अतिरिक्त जिन अन्य गुणों को गतयुग के कवि ने अपनी नारी में देखा था, उन्हें इस युग के कवि ने अपनी "पथिकप्रिया" में खोजने का प्रयत्न नहीं किया है।

"पथिक प्रिया" की भावना परिवर्तन युगीय कवियों की "प्रणयिनी भावना" से अधिक वासनापूर्ण है, किन्तु रीतिकालीन कवियों की नारी भावना से कम विलासमय है। एक और भी विशेषता रीतिकालीन नारी भावना से इसका अन्तर स्पष्ट करती है। कवि ने स्त्री--पुरुष को "प्यास मन की बुझाने को परस्पर मधुपात्र" अवश्य कहा है, नारी के वासना-कुल रूप को अवश्य सामने रखा है, किन्तु साथ ही उसने "प्रेयसी से उच्च मां का स्थान" माना है। स्त्री-पुरुष के प्रकृत आकर्षण के फल की उपेक्षा उसने नहीं की है। मिलन रात्रि ऐन्द्रिक सुख की तृप्ति अवश्य थी किन्तु—

"नियत क्षण का पराभव जिससे नई उत्पत्ति,
तत्व दो मिल डूबते होती प्रकट नव शक्ति।"[4]

इस तथ्य को कवि ने नहीं भुलाया है। यद्यपि कामिनी यौवनमद से उन्मत्त दिखाई पड़ती है किन्तु प्रातः काल आदितेजस् सूर्य भगवान की प्रार्थना में नत होकर वह यही वरदान माँगती हुई दीखती है :—

"मञ्जरी मुरझी लगा जब डाल पर फल आम,
क्या न सार्थक हुई मैं भी दे उन्हें मधुदान
सफल हूँ, फलवती हूँ मैं, दो मुझे वरदान,
सूर्य तेजस्वी ! अहे, चर अचर के भगवान।"[5]

यद्यपि उसके विरहगीतों में गत प्रिय का ही ध्यान विशेष है, भावी शिशु के स्वप्न (श्रद्धा के समान) नहीं है, किन्तु कवि यह कहना नहीं भूला है :—

"भार कितना मधुर सुखमय मधुर कितना भार।
और कुछ दिन, मिलेगा जब मातृपद अधिकार।"[6]

---

[1] नरेन्द्र—कामिनी—निशिवासर, ६ पृ० ५१.
[2] वही, ७, पृ० ५३.
[3] वही, १५, पृ० ६१.
[4] वही ,पृ० ४३.
[5] वही—फूल और पत्र पृ० ३३.
[6] वही, पृ० ६०.

और पुस्तक का अवसान कामिनी की गोद में नवेन्दु के उदय होने के साथ ही होता है।

इस युग के नयी रोमांसवादी कवियों ने नारी को कामोन्मत्त विलासिनी रूप में देखा है। किन्तु उनके इस दृष्टिकोण में वितृष्णा का भाव उदय नहीं हुआ है। हाँ, कुछ कवियों में, जैसे अंचल, वासनामयी नारी भावना के कारण ही, उनकी नींव पर घृणात्मक नारी भावना उठ खड़ी होती है। ऐसा होना मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अस्वाभाविक नहीं है। नरेन्द्र ने भी आगे चल कर रोमांसवादी नारी भावना का परित्याग कर दिया है, यद्यपि वितृष्णा भाव का उदय हम उनमें नहीं पाते।

नयी रोमांस की दूसरी सृष्टि है "मधुशाला"। निराशा और विद्रोह का द्वंद्व इस भावना की मूल है। बाह्य जीवन की निष्फलताओं से प्रताड़ित कवि ने अपने दुःख को डुबाने के लिए, सुख की खोज में, हाला और मधुबाला से युक्त मधुशाला की सृष्टि की है:—

"दुनिया भर की ठोकर खा कर पाई मैंने मधुशाला।"[1]

मधुशाला का निर्माण करने वाले कवि की विक्षिप्त मानसिक अवस्था "मधुशाला" के प्रलाप में स्पष्ट है। कवि ने समझा था कि जीवन पूर्ण है, किन्तु उसने पग पग पर पाई कठिनाइयाँ, पीड़ायें, दुःख और दोष। "जल गईं उंगलियाँ, जल गया शरीर और जल गया हृदय। जान लिया उसने कि जग और जीवन अपूर्ण है। पर उसने इस अपूर्णता के सामने शीश न झुकाया। मन में यौवन था, तन में यौवन था, रोम रोम में यौवन था। जलते हुए हृदय की ज्वालाओं से भी विश्व के अंधकार में यदि कोई मार्ग दिखाई पड़े तो वह उसकी ओर पग बढ़ाने को तैयार था। उसके दग्ध हृदय के प्रकाश में सोने की मधुशाला चमक उठी, उसने मधु घट से प्यालों में गिरती मदिरा की कल-कल छल-छल, सुनी, उसने मधु वितरण करने वाली मधुबाला के पग पायलों की रुन-झुन रुन-झुन सुनी।......उसने अपने चारों ओर कल्पना का विस्तृत संसार बसा लिया। सुषमा ने अनेक मधुबालाओं के रूप में मूर्तिमान होकर उसे घेर लिया।"[3] चाहते हुए भी जीवन की वास्तविकताओं के प्रेम न कर सकने वाले, "असम्भव स्वप्नों से विक्षिप्त" कवि ने अपने मानसिक जगत में "मिट्टी की देह धारण करने वाली स्त्री" का प्रतिरूप

---

[1]मधुशाला, ६२.

[2]हरिवंश राय "बच्चन"—कृत.

[3]बच्चन—मधुशाला : प्रलाप पृ० ५.

इसी भाव को "बच्चन" ने बुलबुल नामक कविता में भी व्यक्त किया है:—

"हमारा सुन्दर सुखों का स्वप्न, जगत का, पर, विपरीत विधान,
हमारी इच्छा के प्रतिकूल पड़ा है था हम पर अनजान।
झुकाकर इसके आगे शीश नहीं मानव ने मानी हार।
मिटा सकने में यदि असमर्थ भुला सकने हम यह संसार।

(मधुशाला, पृ० ५९)

मधुबाला में देख कर तृप्ति पाई है। जिस प्रकार निराशाग्रस्त, पलायन प्रिय, छायावादी कवियों ने "प्रेयसी" का चित्र आँका था उसी प्रकार "हालावादी" कवियों ने जीवन की यथार्थताओं से पीड़ित हो, उन्हें भुलाने के लिए, "मधुबाला" की सृष्टि की है। जब कवि को "अपूर्ण संसार नहीं भाता और वह स्वप्नों का संसार लिए फिरता है",[1] और जब उसका "ध्येय विसुधि विस्मृति ही है",[2] तो मदिरा सुख शांति का केन्द्र है और मधुबाला इच्छित स्वर्गों की साकार प्रतिमा हो जाती है।[3] मधु और मधुबाला का संयोग प्राप्त करके कवि के मन में "उस पार" का विशेष आकर्षण नहीं रह गया है, बल्कि भय ही है, क्योंकि :—

"तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का उपचार न जाने क्या होगा।
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा।"[4]

अस्तु, "भावुकता की हरियाली" में सरस कल्पना के सुमनों को बिखरा कर कवि ने जग जीवन को भुलाने के लिए जिस मादक जगत मधुशाला की सृष्टि की है उसका केन्द्र है मधुबाला। मधुबाला के बिना मधुशाला निर्जीव थी, संसार में अंधकार था, भय था, भ्रम था, शोक और दुःख था। मधुबाला ऊषा की ज्योति लेकर उदित हुई, जग के अणु-अणु में जीवन का संचार हुआ।[5] मधुबाला जीवन का प्रमुख आकर्षण है। वह मादक है उसकी चितवन और वाणी में मधु है, उसमें मदमत्त और पागल बनाने की शक्ति है।[6] इसीलिए :—

"मेरा रुख देखा करती है मधुप्यासे नयनों की माला।"[7]

उसके नीले अंचल की छाया में "जगज्वाला का झुलसाया" व्यक्ति शीतलता पाता है, हृदय के व्रणों को वहाँ मधु मरहम मिलता है।[8] उसकी नूपुर ध्वनि में जग का क्रन्दन लय हो जाता है, और मानव जीवन मादक सुख की प्राप्ति करता है।[9]

---

[1]मधुबाला : आत्मपरिचय, पृ० ८५.

[2]वही, पांचपुकार, पृ० ७१.

[3]सुख शांति जगत की सारी छनकर मदिरा में आई,
इच्छित स्वर्गों की प्रतिमा साकार हुई सखि, तुम हो,
(मधुबाला : पांचपुकार, पृ० ७५)

[4]मधुबाला : "इस पार", पृ० ६७.

[5]वही, "मधुबाला", ५-८, पृ० ३-४.

[6]वही : ४ और १०, पृ० २ और ४.

[7]वही : १ पृ० १.

[8]वही : २, पृ० २.

[9]वही : ३, पृ० २.

इस प्रकार "मधुशाला" भावना का मूलाधार रोमांस है। यद्यपि कवि ने उसे प्रतीकों में ढंकने का प्रयत्न किया है;[1] किन्तु वास्तव में मधुशाला प्रणय की है, जिसमें प्रेयसी साकीबाला है, यौवन मधुरस हाला है और अधरों का प्याला है।[2] कवि का विश्व विधान से असंतोष, जग की "क्रूर कारा" को भूलने के लिए प्रेयसी के चुंबन की आकांक्षा तथा छायावादी कवियों की सी पलायन प्रवृत्ति "निशा निमंत्रण" के इस गीत में स्पष्टतः दिखाई पड़ती है :—

"हो मधुर सपना तुम्हारा।
पलक पर यह स्नेह चुंबन।
पोंछ दे सब अश्रु के कण।
नींद की मदिरा पिलाकर दे भुला जग क्रूर कारा।
हो मधुर सपना तुम्हारा।
दे दिखाई विश्व ऐसा,
है रचा विधि ने न जैसा,
दूर जिससे हो गया है बाहर् अंतर्द्वंद्व सारा।"[3]

"बच्चन" ने निराशाओं और निष्फलताओं के मध्य नारी के जिस मादक रूप के दर्शन किये हैं वह मौलिक नहीं है, उसे उन्होंने फ़ारस के कवि उमर ख़ैय्याम से पाया है। उमर ख़ैय्याम के काव्य में हम निराशावाद, भाग्यवाद और भोगवाद का योग पाते हैं। निराशावाद का भोगवाद में परिवर्तित हो जाना, मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कोई आश्चर्य की बात नहीं है। श्री रोपफील्ड के कथनानुसार "मनुष्य सदैव अवसाद और निराशा को लिए बैठा नहीं रह सकता। उसके सम्मुख सदैव ही ऐन्द्रिक सुखों का एक आकर्षण रहता है, उनका तत्काल उपभोग इस प्रकार जीवन का पूर्ण रूप से लाभ उठाना ही ठीक है। इस प्रकार निराशावाद भोगवाद की सीमाओं में पहुंच जाता है।"[4] निराश मनुष्य जिस सुखातिरेक के नशे में अपने द्वंद्वों को तथा संसार को जो व्यक्ति की स्वच्छन्दताओं में सदैव ही बाधक रह कर दुःख मूल रहता है, भूलना चाहता है। उसके प्रमुख साधन रहे हैं स्त्री और मद्य। हम भूलें न कि नशेमात्र की दशा को प्राप्त करने के लिए, भौतिक संसार से दूर किसी आध्यात्मिक जगत का निर्माण करने वाले, प्रवृत्तिमार्गी महायान और शाक्त सम्प्रदायों ने तथा निर्गुणमार्गी संतों ने—रूपक रूप में—इन दोनों साधनों को अपनाया था। उमर ख़ैय्याम तथा उनके अनुयायी बच्चन ने निराशाओं के मध्य सुख का साधन, हाला और मधुबाला या साकीबाला में पा लिया है। यह निराशायें कम से कम बच्चन के क्षेत्र में, अधिकांशतः रोमांस जनित है।

---

[1]मधुशाला : १४, ७६.
[2]"लाल सुरा की......मधुशाला"—(मधुशाला, ५३)
[3]हरिवंश राय "बच्चन"—निशा निमंत्रण, पृ० २६, २७.
[4]प्रो० रोपफील्ड—उमर ख़ैय्याम एंड हिज़ एज, पृ० ८०-८१.

इस प्रकार बच्चन ने नारी को एक मादक आकर्षण के रूप में देखा है, जो जग-ज्वाला से दग्ध मनुष्यों के दुःखों को प्रणय के मधुदान से शांत कर देती है। संसार तो विषपूर्ण घट के समान है, किन्तु पुरुष इसका अनुभव करता हुआ भी नारी रूपी मधु के ही कारण उसे नष्ट भ्रष्ट नहीं करता। इस मधु के लालच में वह हलाहल को भी पी जाता है।[1] बच्चन की नारी संबन्धी मधुशाला भावना कई विशेषताओं में छायावादी कवियों की प्रेयसी भावना का स्पर्श करती है किन्तु अपनी मादकता और मांसलता में वह द्वितीय से भिन्न है।



[1]जगत घट को विष से कर पूर्ण किया जिन हाथों ने तैयार,
लगाया उसके मुख पर, नारि, तुम्हारे अधरों का मधुसार।
नहीं तो कब का देता तोड़ पुरुष यह विषघट ठोकर मार
इसी मधु का लेने को स्वाद हलाहल पी जाता संसार॥
(बच्चन—हलाहल, १)

उपसंहार

बीसवीं शताब्दी के प्रथम ४५ वर्षों के हिन्दी काव्य का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उसमें नारी भावना का विकास गत्यात्मक रहा है। इससे पूर्व वह स्थिर ढंग का था। वीरगाथाओं के समय से १९ वीं शताब्दी तक—लगभग ७ शताब्दियों तक एक ही सी नारी भावना काव्य में अभिव्यक्त होती रही थी। धार्मिक और काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों के आधार पर कवियों ने निश्चित आदर्शों को बना कर नारी को देखा था, व्यक्ति या समाज की इकाई के रूप में नहीं। भारतेन्दु काल में समाज सुधार के दृष्टिकोण से कुछ ऐसा काव्य रचा गया जो मध्ययुगीय काव्य से भिन्न प्रकार का था, उसमें हमें २० वीं शताब्दी होने वाले नारी भावना सम्बन्धी परिवर्तन की पूर्व सूचना मिलती है। परिवर्तन की वास्तविक रूप रेखायें तो बीसवीं शताब्दी में ही स्पष्ट हुईं, और इसके पैंतालीस वर्षों में नारी भावना ने कई करवटें बदल लीं। इस गतिशीलता का मूलकारण देश की राजनैतिक परिस्थितियों की गतिशीलता के साथ ही होने वाला देश का मानसिक विकास है। मानसिक विकास में प्रमुख रूप से सहायक हुई पाश्चात्य शिक्षा और विविध देशों के संपर्क से ज्ञान का प्रसार। शिक्षा और ज्ञान-प्रसार ने वैज्ञानिक और उदार दृष्टिकोण को जन्म दिया। इसके फल स्वरूप भारतीय नवयुवक परम्परागत सिद्धान्तों और रूढ़िगत नियमों के प्रति विद्रोही हो उठे, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह विद्रोह प्रतिलक्षित हुआ। राजनैतिक क्षेत्र में राष्ट्रीय आंदोलन आदि हुआ, सामाजिक क्षेत्र में समाज सुधार संबंधी आंदोलन हुए, धार्मिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। इन सब के फल स्वरूप काव्य में भाव और शैली दोनों में परिवर्तन हुए। फलतः कवि ने नारी को वैराग्य मार्ग की बाधा या "नायिका" के रूप में देखना छोड़ कर जीवन की सहचरी, समाज की इकाई, सृष्टि की अनिवार्यता आदि के रूप में देखना प्रारम्भ किया।

गत पैंतालीस वर्षों में होने वाला नारी भावना सम्बन्धी विकास विचित्र रहा है। प्रारम्भ में तो कवि अंग्रेजी रोमांटिक काव्य की कौतूहल आश्चर्य और महान् कल्पना की प्रवृत्तियों से बहुत प्रभावित हुए और नारी को अलौकिक देवी के रूप में देखने लगे, किन्तु कुछ समय पश्चात् मार्क्स तथा मनोविश्लेषण विज्ञान ने उनकी इस प्रकार की भावना को चूर कर दिया। प्रतिक्रिया ने एक अन्य प्रकार की नारी को उपस्थित किया जो हिन्दी-साहित्य के लिए सर्वथा नवीन थी।

नवीनता के पथ में, नारी भावना के दृष्टिकोण से, प्रथम पग था संक्रांतिकालीन आदर्शवादी भावना जिसके अंतर्गत नारी को राष्ट्रीय आवश्यकताओं की दृष्टि से देखा गया। इस काल में उपयोगितावाद और इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता रही, भावुकता का अभाव-सा रहा। इसके पश्चात्—परिवर्तनकालीन स्वच्छंदतावाद—ने इस कमी की पूर्ति की। प्रकृति के साथ नारी का सामंजस्य करके, सौंदर्य दृष्टि को सूक्ष्मता और निश्छलता प्रदान करके छायावादी कवियों ने नारी भावना को स्वच्छन्द बना दिया, "यहाँ तक कि जीवन

की यथार्थ सीमारेखायें धुँधली और अस्पष्ट हो गई।" कवियों ने नारी को मानवी से देवी बना दिया। तृतीय चरण प्रगतिकालीन यथार्थवाद ने इस भावना के विरुद्ध प्रतिक्रिया की। उन्होंने एक ओर तो समाजवाद से प्रभावित होते हुए नारी को योनिमात्र समझी जाने की प्रथा का अंत करना चाहते हुए शोषिता के चित्रों को उपस्थित किया, दूसरी ओर व्यक्तिगत नग्न वासना की अभिव्यक्ति करते हुए उसे वासना का साधन बनाया और मनोविज्ञान से प्रभावित हो नारी को "नागिन" और "बाघिन" के रूप में देखा। "यथार्थ-वादी नारी भावना में समष्टिगत चेतना और संवेदनीय अनुभूति की न्यूनता है। सिद्धान्तों के आधार पर बनी यह नारी भावना हृदय पक्ष से हीन है। परिवर्तन-युग की नारी भावना यदि विश्वास की भूमि पर निर्मित है तो प्रगतियुग की कोरी बौद्धिक भूमि पर।"

पूर्ण विकास और सुव्यवस्थित निर्माण की दृष्टि से यदि देखें तो परिवर्तनयुगीय नारी भावना का स्थान सर्वप्रथम होगा। प्रगतिकालीन नारी भावना अपनी रूप रेखायें ठीक-ठीक निश्चित नहीं कर पाई है। उसके अंतर्गत समाजवादी भावना तो निश्चित मार्ग पर किसी सीमा तक है भी, किन्तु अन्य प्रकार की भावनायें अपना पथ निश्चित नहीं कर पाई हैं। वास्तव में कवि का मस्तिष्क एक डांवाडोल परिस्थिति में है, कभी तो वह नव निर्माण की आकांक्षा से प्रेरित होकर नवीन सिद्धान्तों में आकर्षण पाता है, कभी नारी का मनोविश्लेषण करके उसके फ्रायडादि कथित दुर्गुणों में घृणा करने लगता है, किन्तु अगले ही क्षण उसके आकर्षण की अनिवार्यता पा पुनः रोमांस में लीन हो जाता है और छायावादी कवियों की भाँति स्वप्नों में लीन हो जाता है। इस प्रकार की अस्थिर और अस्वस्थ मनोदशा का कारण जीवन की द्वितीय महायुद्धकालीन अव्यवस्था और विशृंखलता, अथवा भारत का चारित्रिक पतन हो सकता है।

किन्तु ऐसी परिस्थिति अब बहुत दिन तक नहीं रह सकती। युद्ध का अंत हो चुका है और सर्वोपरि बात यह है कि अब भारत स्वतन्त्र है। स्वतंत्र होने पर देशवासियों को अपनी जिम्मेदारियों का अनुभव अधिक तीव्रता से होता है, उनके कार्य राष्ट्रनिर्माण की ओर लक्ष्य करते हैं। अपवाद नहीं यदि भारत में भी स्वतन्त्र होने के बाद एक चेतना और उत्तरदायित्व का ख्याल पैदा हो गया हो। इसलिए अपने काव्य में हम देखते हैं कि नारी को वासना का साधन मानने वाली भावना का लोप हो रहा है। कवि शरीर की वासनाओं के ऊपर समाज को प्रतिष्ठित करना चाहता है। जिस भावना का बीजारोपण छायावाद काल में हुआ था उन्हें ही अधिक परिष्कृत करके, अर्थात् क्षयी रोमांस का परित्याग करके, कवि अपना रहे हैं। भविष्य में, प्रतीत होता है दो भाव धारायें साथ-साथ विकसित होंगी—एक तो समाजवादी नारी भावना की जिसमें अभी बहुत परिष्कार होना है—और दूसरी रचनात्मक आदर्शवाद (यूटोपियन आइडियलिज्म) से प्रेरित नारी भावना का।

———

संदर्भ ग्रंथ

१—खोज काल का काव्य

संक्रान्ति युग (१९००—१९२०)

१. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—(क) काव्योपवन (प्र० सं० १९०९);
(ख) प्रिय प्रवास (च० सं०)
२. अमीर अली 'मीर'—बूढ़े का ब्याह (तृ० सं०—१९२१)
३. ईश्वरी प्रसाद शर्मा 'ईश्वर'—मातृवंदना (प्र० सं०—१९१९)
४. गदाधर शुक्ल—उषा-चरित (१९०१)
५. गयाप्रसाद शुक्ल 'त्रिशूल'—त्रिशूल तरंग (तृ० सं०—१९२१)
६. जयशंकर 'प्रसाद'—चित्राधार (द्वि० सं०—१९२८)
७. द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र'—आत्मार्पण (१९१८)
८. नाथूराम शंकर 'शंकर'—(क) गर्भ रंडा रहस्य (प्र० सं० १९१९);
(ख) अनुराग रत्न (प्र० सं० १९१३); (ग) उषा चरित (१९०४)
९. पं० द्विज बलदेव प्रसाद—प्रेम तरंग (प्र० सं० १९०२)
१०. बाबू छेदी लाल—अबलोन्नति पद्यमाला (प्र० सं० १९१५)
११. बलदेव प्रसाद मिश्र—शृंगार शतक (प्र० सं०)
१२. भारती वीणा—पहली झंकार (प्र० सं० १९१९)
१३. माधव शुक्ल—भारत गीताञ्जलि (प्र० सं० १९४७)
१४. मिश्र बन्धु—भारत विनय (प्र० सं० १९१६)
१५. मैथिलीशरण गुप्त—भारत भारती (प्र० सं० १९१०)
१६. राम चरित उपाध्याय—राम चरित चिंतामणि (प्र० सं० १९१०);
(ख) सूक्ति मुक्तावली (प्र० सं० १९१५)
१७. राम नरेश त्रिपाठी—(क) मिलन (प्र० सं० १९२८); (ख) स्वप्न (प्र० सं० १९२८); (ग) पथिक (तृ० सं० १९३८)
१८. ललन मिश्र—(क) ललन कवितावली (प्र० सं० १९१५); (ख) ललन ललिता (प्र० सं० १९०२) (ग) ललन प्रमोदिनी (प्र० सं० १९१५)
१९. लाला भगवानदीन 'दीन'—(क) वीर क्षत्राणी (प्र० सं० १९१४);
(ख) वीर पंचरत्न (द्वि० सं० १९२१)
२०. श्रीधर पाठक—भारत गीत (प्र० सं० १९२८)

(परिवर्तन युग १९२०—१९३७)

१. अनूप शर्मा—सिद्धार्थ (प्र० सं० १९३७)
२. अमर नाथ झा—मधुदूत (१९४१)

३. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'—(क) चुभते चौपदे (प्र० सं० १६२४); (ख) चोखे चौपदे (प्र० सं० १६२४); (ग) कल्पलता (प्र० सं० १६३७); (घ) वैदेही वनवास (द्वि० सं० १६४६); (च) पद्य प्रसून (प्र० सं० १६२५); (छ) रस-कलस (द्वि० सं० १६३१)

४. आनंदी प्रसाद श्रीवास्तव—झाँकी (प्र० सं० १६३०)

५. आरसी प्रसाद सिंह कलापी (प्र० सं० १६३८)

६. इलाचंद्र जोशी—विजनवती (१६३७)

७. उमा शंकर वाजपेयी—व्रज भारती (१६३६)

८. गयाप्रसाद 'त्रिशूल'—(क) राष्ट्रीय वीणा-भाग १ (च० सं० १६२१); भाग २ (प्र० सं० १६२२); (ख) राष्ट्रीय मंत्र (प्र० सं० १६२१)

६. गुलाब रत्न वाजपेयी—लतिका (प्र० सं० १६२६)

१०. गुरुभक्त सिंह 'भक्त'—(क) नूरजहाँ (च० सं०) (ख) कुसुम कुंज (प्र० सं० १६२६); (ग) मरम सुमन (प्र० सं० १६२६)

१२. गोपाल सिंह 'नेपाली'—(क) पंछी (प्र० सं० १६३५); (ख) उमंग (प्र० सं० १६३४); (ग) नीलिमा (१६४४)

१३. गोपाल शरण सिंह—(क) मानवी (१६३८), (ख) माधवी (१६३८); (ग) संचिता (१६३६), (घ) सागरिका (प्र० सं० १६४४) (च) कादंबिनी (१६३७)

१४. चंद्रभानु सिंह—अर्चना (प्र० सं० १६३६)

१५. जयशंकर प्रसाद—(क) आँसू (प्र० सं० १६३५), (ख) झरना (द्वि० सं० १६२७), (ग) लहर (प्र० सं० १६३५), (घ) कामायनी (च० सं० १६४३)

१६. जनार्दन द्विज—अनुभूति (प्र० सं० १६३३)

१७. जीतमल लूणियां (द्वारा संपादित)—स्वतंत्रा की झंकार (द्वि० सं० १६२१)

१८. तारा पांडेय—(क) शुक पिक (१६३७), (ख) वेणुकी (१६२६)

१६. तोरन देवी लली—जागृति (१६३६)

२०. द्वारका प्रसाद 'रसिकेन्द्र'—सती सारंधा (प्र० सं० १६२४)

२१, दुलारे लाल भार्गव—दुलारे दोहावली (तृ० सं० १६३४)

२२. नगेन्द्र—वनबाला (प्र० सं० १६३८)

२३. नरेन्द्र शर्मा—(क) शूल फूल (प्र० सं० १६३३) (ख) मिट्टी और फूल (प्र० सं०-६६४१); (ग) कर्ण फूल (प्र० सं०-१६३६), (घ) प्रवासी के गीत (तृ० सं० १६४५) (च) पलाशवन (प्र० सं० १६४०)

२४. ठाकुर भगवत सिंह—वीरांगना वीरा (प्र० सं०)

२५. पद्मकान्त मालवीया—त्रिवेनी (प्र० सं० १६२६)

२६. प्रताप नारायण 'कविरत्न'—नल नरेश (प्र० सं० १६३३)

२७. बालकृष्ण राव—(क) आभास (१६३५) (ख) कौमुदी (१६३१)

२८. बलदेव प्रसाद मिश्र—साकेत संत (प्र० सं० १६४६)

२९. भगवती चरण वर्मा—प्रेम संगीत (१९३७)

३०. भवानी प्रसाद गुप्त (द्वारा संपादित)—स्वतंत्रता की पुकार (प्र० सं० १९२३)

३१. महादेवी वर्मा—(क) नीरजा (प्र० सं० १९३४); (ख) नीहार (द्वि० सं० १९३०); (ग) रश्मि (१९३२); (घ) दीप शिखा (द्वि० सं० १९४६); (च) सांध्यगीत (१९३६)

३२. माखनलाल चतुर्वेदी—हिमकिरीटिनी (प्र० सं० १९४१)

३३. मैथिलीशरण गुप्त—(क) साकेत (प्र० सं० १९३१); (ख) यशोधरा (द्वि० सं० (१९३५); (ग) द्वापर (प्र० सं० १९३६); (घ) झंकार (प्र० सं० १९२९); (च) कुणाल गीत (प्र० सं० १९४२); (छ) अर्जन और विसर्जन (प्र० सं० १९४१); (ज) काबा और कर्बला (प्र० सं० १९४१); (झ) शक्ति (प्र० सं० १९२७); (ट) त्रिपथगा (प्र० सं० १९२७); (ठ) स्वदेश संगीत (प्र० सं० १९३५); (ड) हिन्दू (द्वि० सं० १९३८) (ढ) मंगलघट (प्र० सं०); (त) अनघ (प्र० सं० १९३५); (थ) सिद्धराज (प्र० सं० १९३८); (द) पंचवटी (प्र० सं० १९३३)

३४. मोहनलाल महतो 'वियोगी'—निर्माल्य (प्र० सं० १९२५)

३५. रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'—राष्ट्रीय संदेश (प्र० सं० १९३५)

३६. रामचरित उपाध्याय—राष्ट्र भारती (प्र० सं० १९२१)

३७. रामकुमार वर्मा—(क) चित्तौड़ की चिता (प्र० सं० १९२९); (ख) जौहर (प्र० सं० १९२९); (ग) वीर हमीर (प्र० सं० १९२३); (घ) निशीथ (प्र० सं० १९३३); (च) रूपराशि (प्र० सं० १९३३); (छ) चित्ररेखा (प्र० सं० १९३५); (ज) अभिशाप (प्र० सं०)

३८. रामेश्वरी देवी 'चकोरी'—किंजल्क (प्र० सं० १९३३)

३९. रामचन्द्र शुक्ल—बुद्ध चरित (१९२२)

४०. रामधारी सिंह 'दिनकर'—(क) रसवन्ती (द्वि० सं० १९४४) (ख) रेणुका (१९३५)

४१. श्री रामनाथ 'सुमन'—विपंची (प्र० सं० १९२६)

४२. रामाधार शुक्ल—विधवा (प्र० सं० १९२४)

४३. राजेश्वर गुरु 'मानव'—शेफाली (प्र० सं० १९३८)

४४. रायकृष्णदास—भावुक (प्र० सं० १९३८)

४५. रूपनारायण पाण्डेय—पराग (प्र० सं० १९२४)

४६. लक्ष्मणसिंह चौहान (द्वारा संपादित)—त्रिधारा (प्र० सं० १९३५)

४७. [illegible] विद्यालंकार—[illegible] (प्र० सं० १९३७)

४८. शम्भूनाथ सिंह—रूपरश्मि (प्र० सं० १९४१)

४९. शान्तिप्रिय द्विवेदी—हिमानी (१९३४)

५०. श्यामनारायण पाण्डेय—[illegible] (प्र० सं० १९४५)

५१. सियारामशरण गुप्त—मौर्य विजय (प्र० सं० १९२१)

५२. शिव रत्न शुक्ल—भगत भक्ति (प्र० सं० १६३२)

५३. श्रीनाथ सिंह—सती पद्मिनी (प्र० सं० १६२५)

५४. सर्वदानन्द वर्मा—अर्घ्यदान

५५. सुरेन्द्रनाथ तिवारी—वीरांगना तारा (प्र० सं० १६२४)

५६. सोहनलाल द्विवेदी—(क) भैरवी (द्वि० सं० १६४२); (ख) पूजा गीत (१६४६); (ग) वासवदत्ता (१६४२); (घ) चित्रा (१६४२);

५७. सुभद्रा कुमारी चौहान—मुकुल (च० सं०)

५८. सियारामशरण गुप्त—(क) अनाथ (प्र० सं० १६२१); (ख) दूर्वादल (प्र० सं० १६१६); (ग) विषाद (प्र० सं० १६२३); (घ) आत्मोत्सर्ग (प्र० सं० १६३३); (च) मृण्मयी (प्र० सं० १६३६); (छ) आर्द्रा (प्र० सं० १६३७)

५९. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—(क) अनामिका (प्र० स० १६३८); (ख) परिमल (प्र० सं० १६२६); (ग) गीतिका (प्र० स० १६३८); (घ) तुलसीदास (प्र० सं० १६३८)

६०. सुमित्रानन्दन पंत—(क) ग्रंथि (१६२६); (ख) वीणा (प्र० स० १६२७); (ग) पल्लव (प्र० स० १६२६); (घ) गुन्जन (प्र० स० १६३२); (च) ज्योत्स्ना (द्वि० सं० १६३६)

६१. हरिकृष्ण प्रेमी—(क) अनंत के पथ पर; (ख) जादूगरनी (प्र० स० १६३२); (ग) स्वर्ण विहान; (घ) आँखों में (प्र० सं० १६२८);

६२. हरिप्रसाद द्विवेदी 'वियोगी हरि'—वीर सतसई (प्र० सं० १६२७)

प्रगति युग (१९३७—१९४५)

१. आरसीप्रसाद सिंह—(क) संचयिता (प्र० स० १६४२); (ख) आरसी (प्र० सं० १६४२); (ग) नई दिशा (प्र० स० १६४४)

२. उदयशंकर भट्ट—विसर्जन (प्र० स० १६३८)

३. गिरजाकुमार माथुर—मंजीर (१६४१)

४. जगन्नाथ प्रसाद 'मिलिंद'—नव युग के गान (प्र० स० १६४२)

५. नरेन्द्र शर्मा—कामिनी (प्र० सं० १६४३)

६. भगवतीचरण वर्मा—(क) मधुकण (प्र० सं० १६३२); (ख) मानव (प्र० सं० १६४८)

७. मंगल मोहन—नई धारा (प्र० सं० १६३६)

८. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'—(क) मधूलिका (प्र० सं० १६३८); (ख) अपराजिता (प्र० सं० १६३६); (ग) किरण वेला (प्र० सं० १६४१); (घ) लालचूनर (प्र० सं १६४४)

९. शिवमंगल सिंह 'सुमन'—(क) प्रलय सृजन (१६४४); (ख) जीवन के गान (१६४०)

१०. सुधीन्द्र—प्रलय वीणा (१६४१)

११. स्वयंभू—रमणी निर्माण (१६३७)

१२. सच्चिदानन्द हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'—(क) इत्यलम् (प्र० सं० १९४६); (ख) चिन्ता (द्वि० सं० १९४६)

१३. सुमित्रानन्दन पंत—(क) युगान्त (प्र० सं० १९३६); (ख) युगवाणी (प्र० सं० १९३९); (ग) ग्राम्या (द्वि० सं० १९४२)

१४. हरिवंशराय 'बच्चन'—(क) मधुशाला (च० सं० १९४०); (ख) मधुबाला (तृ० सं० १९४०); (ग) मधुकलश (द्वि० सं० १९३९); (घ) निशा-निमंत्रण (द्वि० सं० १९४०); (च) सतरंगिनी (द्वि० सं० १९४८); (छ) हलाहल (प्र० सं० १९४६)

१५. हरिकृष्ण प्रेमी—अग्नि गान (१९४१)

२—अन्य पुस्तकें

१. अज्ञेय—आधुनिक हिंदी साहित्य
२. अल्टेकर—पोजीशन आव विमन इन हिन्दू सिविलीजेशन
३. अन्डरहिल—मिस्टिसिज़्म
४. आर० डब्ल्यू० फ्रेज़र—इंडियन थॉट
५. इंडियन कल्चर, ८ वीं पोथी
६. ई० आर० ग्रूव्स—दी फैमिली एंड इट्स सोशल फंक्शंस
७. उपाध्याय—विमन इन ऋग्वेद
८. उमेश मिश्र—विश्वकवि रवीन्द्रनाथ
९. ए० लुडोविसि—वुमन, ए विंडीकेशन
१०. एस० जानसन—ओरियंटल रेलिजंस एंड देयर रिलेशन टू यूनिवर्सल रेलिजन, प्रथम पोथी
११. ए० युसुफ अली—ए कल्चरल हिस्ट्री आव इंडिया
१२. एन० सी० ई० ज़ाकारियाज़—रिनासेंट इंडिया
१३. ओस्वाल्ड स्पेंगलर—दि डिक्लाइन आव दि वेस्ट
१४. कल्चरल हेरिटेज आव इंडिया, तीसरी पोथी
१५. के० एस० रामास्वामी शास्त्री—दि एवोल्यूशन आव इंडियन मिस्टिसिज़्म
१६. काउंट एच कीसर्लिंग—दि बुक आव मैरिज
१७. क्लेरिसे बेडर—वुमन इन एन्शियंट इंडिया
१८. कालिदास (क) कुमारसंभव
(ख) अभिज्ञान शाकुंतल
१९. गुरुमुख निहालसिंह—लैंडमार्क्स इन इंडियन कांस्टीट्यूशनल एंड नेशनल डेवलपमेंट
२०. गंगाप्रसाद उपाध्याय—दि ओरिजिन, स्कोप एंड मिशन आव दि आर्य-समाज
२१. [illegible]

२२. चंदबरदायी—पृथ्वीराज रासो ; विवाह समयो
२३. जे० सी० ओमैन—दि मिस्टिक्स, एसेटिक्स, एंड सेन्ट्स ऑव इंडिया
२४. जी० मैक्ग्रिगर—एस्थैटिक एक्सपीरियंस इन रैलीजन
२५. जौज़ेफ वारेन बीच—दि कंसेप्ट आव नेचर इन नाइटींथ सैंचुरी इंग्लिश पोयट्री
२६. जायसी—पद्मावत (जायसी ग्रन्थावली, ना० प्र० स० मं०)
२७. टाल्सटाय—हाट इज आर्ट एंड एसेज आन आर्ट
२८. ड्यूश—दि साइकोलोजी आव विमन, प्रथम पोथी
२९. डी० एन० राय—दि स्पिरिट आव इंडियन सिविलीजेशन
३०. डेविस—ए शार्ट हिस्ट्री आव वुमन
३१. तुलसीदास—रामचरित मानस (तुलसी ग्रंथावली, प्रथम खंड, ना० प्र० स० सं०)
३२. दास—शक्ति दि डिवाइन पावर
३३. दत्त और सरकार—ए टैक्स्ट बुक आव मार्डन इंडियन हिस्ट्री, पोथी २, भाग २,
३४. धूर्जटीप्रसाद मुकर्जी—मार्डन इंडियन कल्चर
३५. नरपति नाल्ह—बीसलदेव रासो (संपादक, सत्यजीवन वर्मा; ना० प्र० स० सं०)
३६ नगेन्द्र—(क) विचार और अनुभूति; (ख) आधुनिक हिन्दी साहित्य
३७ प्रसाद—(क) चन्द्रगुप्त; (ख) अजात शत्रु; (ग) ध्रुवस्वामिनी; (घ) स्कंद गुप्त; (च) कामना; (छ) राज्यश्री
३८. पट्टाभि सीतारमैया—कांग्रेस का इतिहास (१८८५—१९३५)
३९. पी० आर० देसाइ—सोशयल बैकग्राउंड आव इंडियन नेशनैलिजम
४०. पी० टामस—विमन एंड मैरिज इन इंडिया
४१. बर्नर्ड शा—(क) प्रिफेसेज़ (होम लाइब्रेरी क्लब सीरीज)
(ख) मैन एंड सुपरमैन
४२. वेनीप्रसाद—हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता
४३. बटरंड रसैल—मैरिज एंड मोरल्स
४४. बड़थ्वाल—निर्गुण स्कूल आव हिन्दी पोयट्री
४५. भंडारकर—वैष्णविज़म एंड शैविज़म एंड अदर माइनर सैक्ट्स
४६. भूषण ग्रंथावली (संपादक, पं० राजनारायण शर्मा)
४७. महादेवी वर्मा—शृंखला की कड़ियां
४८. मेयर—सैक्सुअल लाइफ इन एंसियंट इंडिया, प्रथम और द्वितीय पोथियाँ
४९. मार्गरेट ई० कजिन्स—इंडियन वुमनहुड टुडे
५०. मोहनदास कर्मचंद गांधी—स्त्रियों की समस्यायें
५१. मतिराम ग्रंथावली (संपादक, कृष्णबिहारी मिश्र)

५२. यशपाल—मार्क्सवाद
५३. रवीन्द्रनाथ ठाकुर—(क) संचयिता; (ख) विचित्र प्रबन्ध; (ग) पर्सनैलिटी
५४. राधाकृष्णन्—रिलिजन इन ट्रांजिशन
५५. रामचंद्र शुक्ल—काव्य में रहस्यवाद
५६. रहीम रत्नावली (संपादक, पं० मायाशंकर याज्ञिक; साहित्य सेवा सदन)
५७. लिगाइ एंड काजामिया—ए हिस्ट्री आव इंगलिश लिटरेचर
५८. वायला क्लीन—फैमिनिन कैरेक्टर
५९. वैलेन्टाइन—दि न्यू साइकोलोजी
६०. विनयकुमार सरकार—क्रियेटिव इंडिया
६१. वाइ० एम० रेग—विदर वुमन ?
६२. बिहारी रत्नाकर (संपादक; जगन्नाथ दास रत्नाकर)
६३. शचिन सेन—पोलिटिकल फिलासफी आव रवीन्द्रनाथ
६४. श्यामकुमारी नेहरू—आवर काज़
६५. शरत् साहित्य—११ वां भाग
६६. शंकराचार्य—सौन्दर्य लहरी (शांकर ग्रंथावली, पोथी १७)
६७. श्यामसुन्दरदास—कबीर ग्रन्थावली (ना० प्र० स० सं०)
६८. शिवदान सिंह चौहान—प्रगतिवाद
६९. शिवचन्द्र—प्रगतिवाद की रूप रेखा
७०. शिवस्वामी ऐयर—इवोल्यूशन आव हिन्दू मोरल आइडियल्स
७१. सर जान वुडरोफ—इज इंडिया सिविलाइज्ड्
७२. सी० एस० श्री निवासाचारी—सोशल एंड रिलिजस मूवमेंट्स इन दि नाइंटीथ सेंचुरी।
७३. सिजमंड—(क) इंट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोएनालिसिस; (ख) सिविलीज़ेशन एंड इट्स डिस्कंटेंट्स
७४. सी० वाइ० चिन्तामणि—भारतीय राजनीति के अस्सी वर्ष
७५. सूरदास—(क) सूरसागर (ना० प्र० स० सं०) (ख) सूर-सुधा [संपादक—मिश्रबंधु, मनोरंजन पुस्तक माला ४०)
७६. संतबानी संग्रह, भाग १ और २, (संपादित—बेल्वेडियर प्रेस)
७७. सुधांशु—जीवन के तत्त्व और काव्य के सिद्धांत
७८. सुमित्रानंदन पंत—(क) स्वर्ण धूलि; (ख) स्वर्ण किरण
७९. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'—(क) चाबुक; (ख) प्रबन्ध पद्म; (ग) नए पत्ते; (घ) बेला
८०. [illegible]

पत्रिकायें

१. गृह लक्ष्मी, सन् १९१८—१९२८
२. चाँद, सन् १९३७—१९४५
३. वीणा, सन् १९३७—१९४८
४. विशाल भारत, सन् १९३७—१९४५
५. विश्वमित्र, सन् १९३८—१९४६
६. सरस्वती, सन् १९१०—१९३० ; १९३९- १९४७
७. साहित्य संदेश, सन् १९३८—१९४७
८. हंस—सन् १९३४—१९४७

———

पुस्तक में कांग्रेस का इतिहास, नागरी प्रचारिणी सभा संस्करण तथा संतबानी संग्रह के लिये क्रमशः कां० का इ, ना० प्र० स० सं० तथा सं० बा० सं०, का प्रयोग हुआ है। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ तथा पंचम संस्करणों के लिये प्रथमाक्षरों से संकेत किया गया है।

———